'शिवानी' के उपन्यासों में जीवन-मूल्य

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

में हिन्दी साहित्य विषय से

वाचस्पति उपाधि (पी- एच० डी०)

हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध
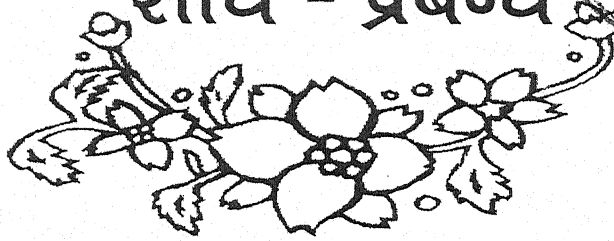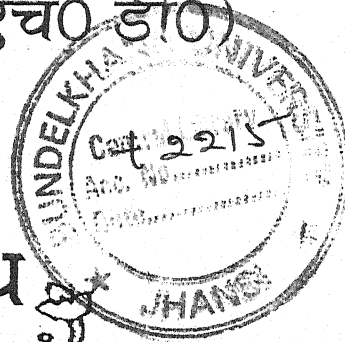
२००५
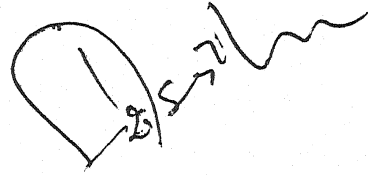
शोध-निर्देशक
डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गाँधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

अनुसंधित्सु
कु० अर्चना श्रीवास
२३१०, राजेन्द्र नगर,
उरई, जालौन

प्रमाण-पत्र

मुझे प्रमाणित करते हुए हर्ष है कि कु० अर्चना श्रीवास ने 'शिवानी के उपन्यासों में जीवन-मूल्य' विषय पर शोधकार्य के उपक्रम में निरन्तर मेरे सम्पर्क में रहकर अनुसंधान कार्य सम्पन्न कर लिया है। यह उनका सर्वथा मौलिक कार्य है, अनुसंधित्सु ने उपजीव्य एवं उपस्कारक ग्रन्थों की सामग्री का सउल्लेख सदुपयोग किया है। कु० अर्चना श्रीवास ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी की शोध-परिनियमावली के समस्त उपखण्डों में निर्धारित नियमों का पालन किया है। मैं अनुसंधित्सु के मंगलमय भविष्य की कामना करता हूँ तथा इस अनुसंधान कार्य को विषय विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करने की अनुशंसा करता हूँ।

डॉ० दिनेश चन्द्र द्विवेदी
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गांधी महाविद्यालय, उरई

अनुसंधित्सु का आत्मनिवेदन

मैं कु० अर्चना श्रीवास 'शिवानी के उपन्यासों में जीवन मूल्य' विषयक शोध प्रबन्ध मेरे द्वारा सम्पन्न मौलिक कार्य है। इससे पूर्व किसी विश्वविद्यालय से इस विषय पर शोध कार्य नहीं हुआ है। इस प्रक्रिया में जिन उपस्कारक ग्रन्थों पत्र-पत्रिकाओं एवं शोध सामग्री का उपयोग मैंने किया, उसका कृतज्ञतायुक्त उल्लेख अपने शोध प्रबन्ध में किया है।

अनुसंधित्सु :
अर्चना श्रीवास
कु० अर्चना श्रीवास

स्वस्ति

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी द्वारा शोध के लिए स्वीकृत विषय - 'शिवानी के उपन्यासों में जीवन-मूल्य' पर अनुसंधान के लिए 'शिवानी' के जीवन के बहिरंग तथा अंतरंग सन्दर्भों में साक्षात्कार करने के लिए उपजीव्य तथा उपस्कारक ग्रन्थों के अतिरिक्त उनके जीवन तथा रचनाधर्मिता को निकट से देख सके लोगों से मिलकर अनुसंधानात्मक यथार्थ की आत्मा को पहचानने की ईमानदार चेष्टा ने मुझे शिवानी के अतिशय निकट पहुंचा दिया। मेरा प्रयासमूलक उपक्रम कब नैष्ठिक अनुष्ठान बन गया - इसका बोध शाश्वत की पूर्ण आहूति के पश्चात ही हो सका। जीवन मूल्यों के अनन्त व्यापी क्षितिज में आत्मलीन होकर मेरी निजशिवी सत्ता शिव निष्ठ जीवन मूल्यों में समाहित हो गयी। अनुसंधानकालीन तल्लीनता में मूल्यबोध की पीठिका में आसीन होकर मानव कल्याण के सृजन संकल्पों से सराबोर हो गयी, मेरी अन्तसचेतना का पोर-पोर मूल्यपरक अवधारणाओं के परिबोध से भीगकर मूल्यमय हो उठा।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय 'जीवन मूल्य का तात्विक विवेचन' के अन्तर्गत जीवन मूल्य का अर्थ, जीवन मूल्य का स्वरूप, जीवन मूल्य का वर्गीकरण तथा पराजैविक मूल्यों का स्वरूप निर्धारित किया गया है।

द्वितीय अध्याय में शिवानी का जीवन परिचय, शिवानी के कृतित्व का सांकेतिक परिचय निरूपित करने के अतिरिक्त युगीन परिवेश में शिवानी की रचनाधर्मिता की मीमांसा की गयी है।

तृतीय अध्याय में साहित्य और युगीन संदर्भ तथा उपन्यास और जीवन मूल्यों की पारस्परिक परिबद्धता विवेचित हुई है।

चतुर्थ अध्याय में जैविक तथा पराजैविक मूल्यों की दृष्टि से शिवानी के उपन्यास साहित्य का अनुसंधानपरक परिशीलन किया गया है।

पंचम अध्याय में शोध प्रबन्ध का निष्कर्षपरक प्रस्तुतीकरण तथा इस गवेषणा की उपलब्धियों पर परिचर्चा सम्पन्न है।

अन्त में परिशिष्ठ के अन्तर्गत उपजीव्य ग्रन्थों, उपस्कारक ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं की सूची प्रस्तुत की गयी है।

इस शोध यात्रा में विषय प्रतिपादन रूपरेखा तथा अनुसंधान के ध्रुवान्त तक पहुंच सकने में मेरे श्रृद्धास्पद गुरूदेव डॉ० दिनेशचन्द्र द्विवेदी के शुभाशीष के प्रति आभार प्रदर्शन करना उनके प्रति मेरी आत्मीय श्रद्धा का अगम्भीर प्रदर्शन होगा। मैं अपनी मातश्री श्रीमती त्रिवेणीदेवी के प्रति श्रद्धावनत हूँ उन्होंने न केवल मेरा उत्साहवर्धन किया है बल्कि शोधकार्य के लिए शोध सामग्री की उपलब्धि तथा अनुसंधान के दुरूह क्षणों में उत्साहवर्धन करके मुझे मेरे लक्ष्य तक पहुंचाने में अप्रतिम सहयोग दिया है। मैं अपने अग्रज नितिन चौधरी तथा अनुज अरुण कुमार को भी इस समय कृतज्ञतापूर्वक याद करना आवश्यक समझ रही हूँ इन बन्धुओं ने मेरी प्रत्येक अनुसंधान सम्बन्धी आवश्यकताओं की सम्पूर्ति में तन-मन से सहयोग दिया है। मैं रमाशंकर सिंह को भी स्मरण करना अपना कर्तव्य समझती हूँ

जिन्होंने उपजीव्य ग्रन्थों को उपलब्ध कराकर अनुसंधान कार्य के सागर को पार करने के लिए सेतु का कार्य किया।

मैं विभिन्न विख्यात, अल्पख्यात और अख्यात विद्वज्जनों के प्रति भी हृदय से आभार प्रकट करती हूँ, जिनके उपजीव्य तथा उपस्कारक गन्थों की सामग्री का मैंने अपने शोध कार्य का उपयोग किया है। मैं उन विभूतियों के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने परामर्श उत्साहवर्धन तथा आशीर्वाद के द्वारा मुझे इस दुरुह लक्ष्य तक पहुंचने में ज्ञात अथवा अज्ञात सहयोग दिया।

इस शोध प्रबन्ध को टंकित करने वाले राजाराम एण्ड सन्स के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझती हूँ, जिन्होंने टंकण कार्य में अनेक दुरुहताओं को पार करते हुए उसे वर्तमान रूप तक लाने का अविस्मरणीय सहयोग दिया है।

अन्त में यह शोध प्रबन्ध अपनी जन्मदात्री श्रीमती त्रिवेणी देवी के चरणों में सादर समर्पित करती हूँ।

अर्चना श्रीवास्त

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

जीवन मूल्य का तात्त्विक विवेचन

(क) जीवन मूल्य का अर्थ

(ख) जीवन मूल्य का स्वरूप

(ग) जीवन मूल्य का वर्गीकरण

(घ) जैविक मूल्य

(च) पराजैविक मूल्य

जीवन मूल्य : सैद्धान्तिक विवेचन

मूल्य का अर्थ एवं समानार्थी शब्द -

'मूल्य' बीसवीं शताब्दी का कदाचित बहुचर्चित शब्द है। आज के क्रान्तिकारी और तीव्रगामी परिवर्तनशील वैचारिक युग में 'मूल्य' शब्द भी अपने मूल व्युत्पत्ति मूलक अर्थ के अतिरिक्त अलग-२ शास्त्रों और विषय विशेषों में अलग-२ अर्थों में प्रयुक्त होकर अतयन्त विवादास्पद विषय बन चुका है। वैसे सामान्यत: 'मूल्य' शब्द के अर्थ की बात सोचते ही तत्काल जो ध्वनि प्रतिबिम्बित होती है, उसका सीधा सम्बन्ध किसी वस्तु के दाम या कीमत से होता है। यह कारण आज अर्थ केन्द्रित सोच के (युग) परिणाम है कि दाम कीमत की चर्चा दैनिक जीवन क्रियाओं में महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य स्थान प्राप्त कर चुकी है। इसीलिए 'मूल्य' सामान्यत: आर्थिक अर्थ में ही अधिक प्रचलित तथा परिचित शब्द है। इसके अतिरिक्त उपयोगिता एवं महत्व के अर्थ में भी 'मूल्य' का प्रचार देखा जाता है।

(अ) मूल्य का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ -'हिन्दी में प्रयुक्त 'मूल्य' शब्द संस्कृत की 'मूल' धातु के साथ 'यत' प्रत्यय संयुक्त कर देने से बना है, जिसका अर्थ कीमत मजदूरी से होता है।[१] 'मूलेन आनाभ्यते अभिभूयते मूलेन समं वा इति मूल'' (नो वयो धर्मेत्यादिना) अर्थात् किसी वस्तु के बदले में मिलने वाली धन, कीमत।''[२] किन्तु हमारा अभिप्रेत 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के 'VALUE' शब्द का समानार्थी है जो कि लेटिन भाषा के से 'VALUE' से बना है और जिसका अर्थ अच्छा, सुन्दर होता है। अर्थात 'मूल्य' शब्द के अर्थ में शिवं और सुन्दर सन्निहित रहते हैं। आर०के० मुकर्जी ने 'मूल्य' को इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''जो कुछ भी इच्छित, वांछित है वही मूल्य है।''[३] इसलिए कदाचित कुछ विद्वानों ने 'VALUE' शब्द के लिए संस्कृत के 'इष्ट' शब्द को समानार्थी रूप में प्रयुक्त करना चाहते हैं।''[४] एक अन्य मान्यता यह है कि 'मूल्य' शब्द वस्तुत: नीतिशास्त्र 'VALUE' का पर्यायवाची है।[५]

(आ) मूल्य या जीवन मूल्य :-

मानव-जीवन को सम्यक् और सुचारु रूप से परिचालित करने के उद्देश्य से विद्वानों ने जीवन के कुछ मापदण्डों का निर्धारण किया है और उन्हीं के आधार पर मूल्य की अवधारणा अस्तित्त्व में आई। इस दृष्टि से मूल्य का अर्थ मानव जीवन के सन्दर्भ में महत्व रखता है। जीवन के अभाव में मूल्य चिन्तन तो दूर की बात है मूल्य शब्द का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है। अतः मूल्य शब्द का आशय मूलतः जीवन मूल्य अर्थात् जीवन के मापदण्ड से ही होता है, जैसा कि पहले स्वीकारा जा चुका है कि हमारा अभिप्रेत 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के 'VALUE' शब्द का समानार्थी होकर अच्छा अर्थात् शिव और सुन्दर के अर्थ में ही लिया गया है। वह दृष्टिकोण (सत्य) जो शिवं और सुन्दरम्-संयुक्त है 'मूल्य' है। सत्य शिवं और सुन्दरम से मुक्त इच्छित या वांछित ही मूल्यवान हो जाता है। डा० देवराज ने कहा है कि ''मूल्य किसे कहते हैं? इस प्रश्न के उत्तर इस दूसरे प्रश्न के उत्तर से सम्बन्धित है कि मनुष्य किन चीजों को मूल्यवान समझते हैं। अन्ततः मूल्यवान वस्तु वह है जिसकी मनुष्य कामना करता है।''[६] अर्बन के अनुसार ''किसी भी इच्छा या आवश्यकता के पूरक ही मूल्य है।''[७] मूल्य सम्बन्धी अपनी मान्यता को श्री डब्ल्यू एम० अर्बन ने अधिक विस्तार और पूर्णतः के साथ इस प्रकार स्पष्ट किया है कि ''वही वस्तु अन्तिम रूप से स्वलक्ष्य दृष्टि से मूल्यवान है जो कि व्यक्तियों को आत्म-विकास अथवा आत्मानुभूति की ओर ले जाती है।''[८] अर्थात् चरम मूल्य वही होते हैं जो व्यक्ति को उसके पूर्ण विकास की ओर गतिशील करें। इसके लिए व्यक्ति को अपने जीवन के प्रति कुछ निश्चित लक्ष्य या दृष्टिकोण भी निर्धारित कर लेने चाहिए।

रोहित मेहता ने बड़े ही सरल और रोचक ढंग से 'मूल्य' को इस प्रकार परिभाषित किया है कि ''मूल्य न तो किसी मशीन द्वारा उत्पादित वस्तु है और न ही यह किसी सरकार द्वारा निर्मित कानून है। मूल्य तो जीवन के प्रति एक गुण है, एक अन्तर्दृष्टि है, एक अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है।''[९] प्रो० मैकेन्जी के अनुसार ''मूल्य से हमारा आशय उस विचार से है जो एक विचारशील प्राणी के चिन्तन का परिणाम है।''[१०] अर्थात् 'मूल्य' जीवन के प्रति

एक वैचारिक इकाई है, एक दृष्टिकोण है जो कि विवेकशील मानव के चिन्तन का परिणाम है। कुमार विमल भी 'मूल्य' का अर्थ इसी रूप में स्वीकार करते हैं - ''वैसे समग्रत: मानविकी के सन्दर्भ में 'मूल्य' का अर्थ है जीवन-दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई जिसे हम सक्रिय 'नॉर्म' भी कह सकते हैं।''[११]

जीवन-मूल्य सम्बन्धी उपर्युक्त धारणाओं अथवा परिभाषाओं के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि किसी भी अर्थ या दृष्टिकोण को जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकार होने हेतु उसमें दो विशेषताओं का होना अनिवार्य होता है। एक तो यह कि वह दृष्टिकोण अर्थात् वैचारिक सत्य, सुन्दर शिव से युक्त हो, दूसरे मनुष्य के चिन्तन का, उसकी विचारणा का परिणाम हो। अन्य शब्दों में, जीवन मूल्य चिन्तन के आधार पर जहां नितान्त वैयक्तिक सत्य है, वहीं लक्ष्य की दृष्टि से उसे समाज स्वीकृत, सुन्दर तथा शिव या शुभगामी होना चाहिए।

संक्षेप में, भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम युक्त मानवीय विचारणा या चिन्तना का निचोड़ ही जीवन-मूल्य कहलाता है। इसलिये जीवन-मूल्य जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है, वैचारिक इकाई है - मनुष्य का व्यक्ति, समाज और वस्तु के साथ एक वैचारिक सम्बन्ध है - जिसके निर्माण में मनुष्य की मूल प्रवृत्तियां और उसके समाजीकरण के प्रमुख तत्व अर्थात् आदर्श, नॉर्म, परम्परायें वर्जनायें नैतिकता और तथ्य आदि का योगदान होता है। मूल्य के सम्बन्ध में आदर्श, नॉर्म, परम्परायें वर्जनायें, नैतिकता और तथ्य आदि समानार्थी शब्दों को लेकर किसी प्रकार का भ्रम न हो जाये, इस आशंका के निवारणार्थ जीवन-मूल्य के साथ इनके अन्तर और सम्बन्ध को स्पष्ट कर लेना अनिवार्य है।

(ख) जीवन मूल्य का स्वरूप -

स्वरूप -

भारतीय और पाश्चात्य दोनों ही विचारधाराओं के अन्तर्गत मूल्य मीमांसा एक महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। मूल्य मीमांसा मूलतः दर्शनशास्त्र का विषय है, यद्यपि अब यह एक स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकसित हो रहा है। ''मूल्य-मीमांसा'' अंग्रेजी शब्द एक्जिओलोजी (Axiology) का हिन्दी रूपान्तर है। एक्जिओलोजी शब्द यूनानी शब्द 'एक्सियस' और 'लागस' से बना है। 'एक्सियस का अर्थ मूल्य या कीमत है तथा 'लागस' का अर्थ तर्क, सिद्धान्त या मीमांसा है। अतः एक्जियोलोजी या मूल्य मीमांसा का तात्पर्य विज्ञान से है जिसके अन्तर्गत मूल्य का स्वरूप, प्रकार और उसकी तात्विक सत्ता का अध्ययन या विवेचन किया जाता है।''[१२] मूल्य मीमांसा शास्त्र के अन्तर्गत विविध शास्त्र- सम्मत विभिन्न सिद्धान्तों का अलग-अलग विवेचन न करके सर्वव्यापी तथा समग्रतः सामान्य अर्थ में मूल्य के स्वरूप तथा प्रकृति पर विचार किया जाता है। आधुनिक युग में दर्शन की ही एक शाखा विशेष के रूप में मूल्य मीमांसा द्रुत गति से पल्लवित हो रही है। यही कारण है कि ''आज का दार्शनिक 'मूल्य-सिद्धान्त' का अध्ययन करते समय 'मूल्य' शब्द के प्रति चेतन और गम्भीर है।''[१३] किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मूल्य सिद्धान्त आधुनिक युग की ही अनूठी देन मान ली जाये। यह ठीक है कि आज के वैचारिक क्रान्ति प्रधान युग में मूल्य सर्वाधिक बहुचर्चित विषय हो गया है और आधुनिक चिन्तन में मूल्य विषयक चेतना की विशिष्ट सजगता भी उल्लेखनीय है, किन्तु जीवन मूल्य अर्थात लक्ष्य निर्धारण का मूलाधार मानव जीवन की संयमित व्यवस्था और उसकी सुखद परिणति की उत्कंठा ने विचारकों को सदा ही सक्रिय रखा है।

विश्वचिन्तना में मानव जीवन के अर्थ और महत्व की व्याख्यां की दृष्टि से मूल्य सम्बन्धी अनेक मत-मतान्तर अस्तित्व में आये। मूलतः सभी मत मुख्य रूप से दो वर्गों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। प्रथम के अनुसार जीव और जगत् को नश्वर मानकर जीवन में वर्तमान को साधन और भविष्य को साध्य के रूप में स्वीकार किया गया। दूसरी विचारधारानुसार

वर्तमान को ही एक मात्र सत्य मानकर उसे ही साध्य भी मान लिया गया। प्रथम विचारधारा का पोषक भारतीय दर्शन है और द्वितीय का पाश्चात्य दर्शन। इन्हीं भिन्न दार्शनिक विचार धारणाओं के कारण दोनों की संस्कृतियों में भी अन्तर दिखाई देता है और इसी के परिणाम स्वरूप मूल्य चिन्तन भी दोनों का अलग-अलग दिशाओं एवं धाराओं में गतिशील रहा है। समग्रत: भिन्न दर्शन ने भिन्न संस्कृतियों को जन्म दिया और भिन्न संस्कृतियों ने भिन्न जीवन मूल्यों को।

भारतीय चिन्तन में :- जगत को मिथ्या, क्षणभंगुर तथा त्याज्य समझने वाली धारणा तथा जगत् को ही एक मात्र सत्य और भोग्य मानने वाली विचारधारा, इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करते हुए भारतीय दर्शन जगत् को ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति स्वीकार करता है। इसी लिए सांसारिक भोग से सम्बन्धित भौतिक वादी तथा ब्रह्म को काम्य मानकर आध्यात्मिकतावादी दृष्टि दोनों को ही समन्वित रूप में स्वीकृति देता है। चिन्तना कि इसी समन्वयवादिता पर 'पुरुषार्थ' (मूल्य) की धारणा अविलम्बित है। भारतीय दर्शन के अन्तर्गत पुरुषार्थ को ही जीवन मूल्य के रूप में जीवन मूल्य की मान्यता प्रदान की गई है। पुरुषार्थ का मूल अर्थ उन प्रयत्नों से है जिन्हें जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। हिन्दू जीवन दर्शन में पुरुषार्थ का रुढ़ अर्थ मानव जीवन के उद्देश्यों से है। भारतीय दार्शनिकों ने मानव जीवन के चार उद्देश्य अर्थात मूल्य स्वीकार किये हैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। मोक्ष को जीवन का साध्यात्मक 'भूल्य तथा धर्म, अर्थ, काम को साधनात्मक मूल्य के रूप में मान्यता दी है। "प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री महादेव ने भारतीय दर्शन में सामाजिक नैतिक आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा करते समय इन्हीं चार पुरुषार्थों को स्वीकार कर उन्हें नवीन नाम देने की चेष्टा की है। 'अर्थ' 'आनन्द' 'धर्माचरण' पूर्णतया आध्यात्मिक स्वतंत्रता (मोक्ष) चार मूल्य स्वीकार करते हैं।"[१४] इसी प्रकार महाकाव्यों का उद्देश्य शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा अर्थात् अर्थ धर्म, काम, मोक्ष की प्राप्ति स्वीकार करते हुये श्री देवी प्रसाद गुप्त लिखते हैं कि "हमारे महाकाव्यों का उद्देश्य धर्म, काम , मोक्ष की अर्थात् चतुवर्ग फल-प्राप्ति माना गया है। इसमें प्रतिपादित शाश्वत जीवन मूल्य भोग, योग और कर्म है।"[१५]

भारतीय दर्शनानुसार शरीर मन बुद्धि और आत्मा इन चार तत्वों का समन्वय ही मनुष्य है शारीरिक विकास हेतु अर्थ मानसिक विकास के लिए काम बौद्धिक विकास के लिए धर्म तथा आदि आध्यात्मिक विकास सार्थ मोक्ष इन चारों के ही पुरुषार्थ तथा लक्ष्य के रूप में ही स्वीकारा गया है। वस्तुत: वे ही भारतीय जीवन वर्ग चार प्राचीनतम मूल्य है। इस प्रकार भारत में प्राचीन काल से मूल्य सम्बन्धी धारणा इस प्रकार से विद्यमान रही है।

धर्म का अर्थ है कि धारण करे और पुरुषार्थ के सन्दर्भ में मानव द्वारा व्यष्टि तथा समष्टि के प्रति नैतिक कर्तव्यों का धारण करना ही कर्तव्य है। इस दृष्टि से धर्म का सम्बन्ध नैतिक मूल्यों से है, "धर्म उन नैतिक नियमों को कहते हैं जिनके पालन से व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति और कल्याण होते हों, जिन पर चलने से व्यक्ति को सुख, शान्ति और समाज में सन्तुलन और सामंजस्य और शान्ति स्थापित हो।"[6] संक्षेप में भारतीय जीवन मूल्य धारणा के अन्तर्गत धर्म से आशय कर्तव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण से है। धर्म सम्बन्धी मूल्य की उपयोगिता और महत्व अर्थ और काम को सयंमित तथा सुनियोजित रूप में बनाये रखने तथा उन्हें मोक्ष की ओर प्रेरित करने में है। इस दृष्टि से धर्म, अर्थ, काम अर्थात् इहलोक को मोक्ष अर्थात परलोक से समृद्ध करता है।

अर्थ से आशय गृहस्थी चलानें, परिवार के बसाने और धार्मिक कार्यों को पूर्ण करने हेतु आवश्यक भौतिक वस्तुओं से है। चतुर्वर्ग में मोक्ष की प्राप्ति हेतु धर्म के समान अर्थ को भी उपयोगी माना गया है। साधनात्मक मूल्यों के अन्तर्गत इसे भी अनिवार्य समझा जाता है साध्यात्मक मूल्य की प्राप्ति में उपयोगी होने के कारण इसकी महत्ता किसी भी रूप में कम नहीं होती है। आर्थिक मूल्यों को धार्मिक मूल्यों से संयुक्त करके उन्हें मोक्ष सम्बन्धी मूल्यों की प्राप्ति में साधन मानना भारतीय दर्शन की अपनी विशेषता है।

भारतीय मत में काम को मात्र एन्द्रिक सुख तथा यौन-तुष्टि के अर्थ में नहीं लिया गया; बल्कि मानसिक प्रक्रिया तथा रागात्मिका वृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। काम मनुष्य की एष्णाओं को जगाता हुआ उसको भौतिक संकल्पों की ओर अभिमुख करता है। अर्थ

के समान काम सम्बन्धी मूल्य भी धर्म से समृद्ध होकर ही साध्यात्मक मूल्य की ओर अग्रसर होते हैं। इस लिये काम धर्म से संयुक्त होकर मोक्ष प्राप्ति में सहायक बनता है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ तथा काम को साध्यात्मक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यही जीवन का ध्येय तथा अन्तिम पुरुषार्थ है। ''मोक्ष वह अवस्था है जहां जीवन एक ओर संसार के बंधनों से मुक्त हो जाता है। और दूसरी ओर ईश्वर में लीन हो जाता है। व्यक्तिक जीवन के दृष्टिकोण से मोक्ष धर्म, अर्थ और काम का स्वाभाविक परिणाम है।''[१७] जीवन के चरम-मूल्य के अर्थ में मोक्ष का अर्थ मानव जीवन की स्वतंत्रता ही है।''[१८] सुख-दुख, राग-द्वेष, जगत् आदि सभी से मुक्ति। पुरुषार्थ के अर्थ में मोक्ष का अर्थ जीवन की समाप्ति या मृत्यु से नहीं है, बल्कि मोक्ष का अर्थ आत्म-साक्षात्कार। डा० राधाकृष्णन् पुरुषार्थ को जीवन के मूल्य स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि ''अपना अस्तित्व बनाये रखना आत्मा की निर्मलता को बनाये रखना ही जीवन का लक्ष्य है। मानव जीवन भौतिक सम्पत्ति और ज्ञानार्जन से ही संतुष्ट नहीं रह सकता। उसका ध्येय है आत्म साक्षात्कार करना।''[१९]

निष्कर्षत: जीवन-मूल्यों से सन्दर्भ में भारतीय चिंतन ने सर्वागींण मानव-जीवन की व्यवस्था को लक्ष्य मानकर जिन चार पुरुषार्थ अथवा मूल्यों की प्रतिष्ठा की है उनमें अन्तर्वर्ती तथा बाह्य, साध्यात्मक और साधनात्मक, शाश्वत तथा सामयिक और वैयक्तिक और सामाजिक सभी तरह के मूल्यों की समाविष्ट हो जाती है। इसी लिए आज की वैज्ञानिक और अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिकता के सन्दर्भ में थोड़े बहुत स्वरूप-भेद के साथ समस्त नवीन जीवन-मूल्यों को इन्हीं के अन्तर्गत देखा जा सकता है। युगीन सन्दर्भ में इनकी वरीयता तो बदलती रही है, जैसे आज अर्थ और काम की प्रमुखता दिखाई देती है; किन्तु चारों में से किसी एक के भी पूर्णतया विलुप्तिकारण की स्थिति कभी नहीं आई। प्रकारान्तर से मानव-जीवन सदैव इन्हीं चार दिशाओं में गतिशील रहा है और रहेगा; हमारा तो यही विश्वास है।

पाश्चात्य चिन्तन में - पाश्चात्य चिन्तन-धारा का वर्तमान को ही एक मात्र सत्य मानकर उसी को साध्य के रूप में स्वीकार करने की ओर विशेष झुकाव दिखाई पड़ता है। इसी दार्शनिक आस्था

पर आधारित पाश्चात्य संस्कृति का स्वरूप भारतीय संस्कृति से भिन्न है। इस भिन्न दर्शनजन्य भिन्न सांस्कृतिक धरातल पर पाश्चात्य चिन्तकों ने जीवन-मूल्य सम्बन्धी विभिन्न लक्ष्यों या दृष्टिकोणों का प्रतिपादन किया है।

"पश्चिमी दर्शन में 'प्लेटो' के प्रत्यय सिद्धान्त के साथ मूल्य-मीमांसा का उदय हुआ और 'अरस्तु' के आचार-शास्त्र, राजनीति और तत्व विज्ञान में उसका विकास हुआ।"[२०] पाश्चात्य चिन्तन में इतिहास को देखते हुए यह स्पष्टता स्वीकारा जा सकता है कि प्राचीन तथा आधुनिक विचारकों के जीवन दर्शन में पर्याप्त अन्तर रहा है। जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में पाश्चात्य चिन्तन में मूल्यतः भोगवादी दर्शन अथवा वर्तमान जीवन को ही सत्य मानकर चलने वाली विशेषता के बावजूद प्राचीन ईसाई दार्शनिकों के द्वारा अरस्तु के उच्चतम आदर्श का अर्थ ईश्वर से तादात्म्य की इच्छा से सिद्ध करने के प्रयत्न में जीवन से परे किसी अन्य सत्य की खोज का आग्रह भी देखा जा सकता है। आगे चलकर काण्ट और हीगेल ने सौन्दर्य, कला, आचार और धर्म आदि को सर्वोपरि मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठापित किया। स्टोइक और एपीक्यूरियन लोगों ने भी जीवन के उच्च आदर्शों को ही मूल्य माना है; किन्तु पश्चिमी मूल्य चेतना क्रमशः मुख्य रूप से [illegible] को ही ग्रहण करती गई। फलतः मूल्य की व्याख्या तत्त्व मीमांसा के आधार पर न होकर व्यवहारिक धरातल की ओर जाने लगी। मूल्य सम्बन्धी व्याख्या में यह क्रान्तिकारी परिवर्तन था और इसी दिशा-वैभिन्य के कारण भारतीय मूल्य-मीमांसा और पाश्चात्य मूल्य मीमांसा में अन्तर आ गया। व्यवहारिकता के धरातल पर की गई इन व्याख्याओं में सुखवादी दार्शनिक एपीक्यूरियस, बेंथम और मीनार्ग आदि का ऐतिहासिक स्थान है, जिन्होंने सुख को ही चरम मूल्य माना है।

मूल्य की स्थिति की दृष्टि से भी तीन विचार धारायें मिलती हैं। प्रथम विचारधारा के अन्तर्गत स्पिनोजा, लोट्ज तथा डीवी आदि फलवादी दार्शनिकों को सम्मिलित किया जाता है जिन्होंने मूल्य को व्यक्तिगत मानकर किसी इच्छा की तृप्ति करने वाले आधार को ही मूल्य कहा है। इनके मतानुसार मूल्य की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं होती, उसका निर्माण

तो व्यक्ति की अपनी रुचि, अरुचि, मानसिक स्थिति और उसकी आवश्यकताओं के आधार पर होता है। लेयर्ड तथा मूर दूसरी विचारधारा के पोषक हैं, जिन्होंने मूल्य को रूप रस और गन्ध की भाँति व्यक्ति-सापेक्ष न मानकर विषयगत माना है। जे० एस० टफ्ट्स और एम०सी० ऑटो ने भी मूल्य की विषयी-निष्ठता को नकारकर केवल उसकी विषय-निष्ठता को स्वीकार किया है। इन दोनों विचारधाराओं के मध्य का भाग अपनाकर एक तीसरी विचारधारा की स्थापना करने वाले एक अन्य दार्शनिक एलेक्जेन्डर हैं, जिन्होने व्यक्ति, जो मूल्य का अनुभव करता है और वस्तु का, जिसके मूल्य का अनुभव किया जाता है, उन दोनों के सम्बन्ध में मूल्य के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

नीत्शे और अन्य क्रान्तिकारी जीवन के विकास में सहयोगी होने वाले अनुभव को ही मूल्य मानते हैं। मूल्य के स्वरूपाधार के रूप में पैरी अभिरुचि, मार्टीन्यु वरीयता, (प्रोफ्रेन्श); स्टोइक, काण्ट और रायस शुद्ध तर्कसंगत इच्छा तथा टी०एच० ग्रीन व्यक्तित्व के एकत्व के सामान्य अनुभव को प्रमुखता देते हैं।

आधुनिक पाश्चात्य दार्शनिकों द्वारा मूल्य को तीन दृष्टियों से व्याख्यायित किया है प्रथम दृष्टि के अन्तर्गत टॉयन्बी, मनहेम, इलियट आदि हैं, जो प्राचीन धार्मिक मूल्यों को ही चरम-मूल्य स्वीकार करते हैं तथा वैज्ञानिक परिवैश से प्रादुर्भूत उदारवादिता को नकारते हैं बर्टेंड रसल, हक्सले और सार्त्र आदि वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाते हुये मनुष्य की वर्तमान हीनता दूर कर उसके प्रबुद्ध तथा विवेकशील स्वरूप को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानने वाली द्वितीय दृष्टि का प्रतिपादन करते हैं। इनके लिए ईश्वर तथा ईश्वर से सम्बन्धित मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं है। तृतीय दृष्टि हेमिग्वे, कामू आदि विचारकों की है जो कि सांस्कृतिक, वैचारिक तथा भौतिक विकास का विरोध करते हुए मनुष्य की प्रारम्भिक स्थिति (प्राकृतिक) और उसके जीवन में व्याप्त विसंगति को ही जीवन-मूल्य स्वीकार करते हैं। उपर्युक्त तीनों दृष्टियों का संक्षेप में समाहार करते हुये डा० महावीर दधीचं लिखते हैं कि ''पहला वर्ग विज्ञान को अस्वीकार कर धर्म अथवा प्रत्ययवादी दर्शन की प्रतिष्ठा करना चाहता है। दूसरा धर्म को अस्वीकार कर वैज्ञानिक

चेतना से ही मानव मूल्यों को प्राणवान बनाने का इच्छुक है मूलत: यह मानवतावादी है। तीसरा मत एक प्रकार से वस्तुस्थिति को भावात्मक रूप में स्वीकार कर आदिम अथवा प्राकृतिक जीवन का पक्षपाती है।''[२१]

इस प्रकार पाश्चात्य चिन्तकों ने भी मानव जीवन मूल्यों की विविध व्याख्यायें प्रस्तुत की है, जिनमें धर्म, व्यवहारिकता, सुखवादिता, फलवादिता, वैज्ञानिकता, प्रकृतिवादिता आदि विभिन्न दृष्टिकोणों से जीवन मूल्यों का स्वरूप निर्धारण करने का प्रयत्न किया गया है। प्राचीन यूनानी विचारधारा भारतीय चिन्तन के निकटवर्ती रही है; किन्तु धीरे-धीरे दृष्टि-भिन्नता विकसित होने लगी। आधुनिक युग में बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीय जीवन-व्यवस्था के परिणाम स्वरूप मूल्य चिन्तन के क्षेत्र में भी भारतीय और पाश्चात्य विचारधाराओं में आदान प्रदान हो रहा है। यही कारण है कि भारत का पुरुषार्थ-विचार पश्चिमी आधुनिकता के सन्दर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया जाने लगा है और पाश्चात्य चिन्तन तथा संस्कृति भारतीय आध्यात्मिकता और योग साधना-मूलक जीवन दर्शन की ओर आकर्षित हो रही है।

जीवन मूल्य का समन्वित स्वरूप -

मूल्य या जीवन मूल्य के अर्थ को स्पष्ट करते समय यह पहले भी कहा जा चुका है कि भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् युक्त मानवीय विचारणा या चिन्तन का निचोड़ या परिणाम ही जीवन मूल्य कहलाता है। इस प्रकार जीवन मूल्य के स्वरूप निर्धारण में हमने दो विशेषताओं को महत्व दिया है। एक तो व्यक्ति की चिन्तन -प्रधानता को और दूसरी समाज की सुख एवं कल्याण की भावना को। स्वभावत: मनुष्य अपनी चेतना के विकास और जीवन के सुखद व सुन्दर भविष्य के प्रति आशावादी कल्पनाशीलता से आदर्श-चयन का प्रयत्न करता रहता है। मानव के समस्त सांस्कृतिक विकास तथा मानवता की सृष्टि में अन्य प्राणियों की तुलना में वर्तमान सर्वोच्च अवस्था उसकी चेतना के विकास का ही प्रतिफलन है। मनुष्य का चरम-लक्ष्य अपनी चेतना को विकसित करने में ही रहा है। वह सदैव कल्पना, भावना तथा चिन्तना के आधार पर इस प्रकार की धारणाओं को जन्म देता रहा है जो

कि सौन्दर्यपूर्ण होकर उसके आनन्द का कारण बन सकें और शिवात्मक होकर उसका कल्याण कर सकें।

मानव के चरम कल्याण को ध्यान में रखकर ही भारतीय मूल्य-धारणा-पुरुषार्थ चतुर्वर्ग - अस्तित्व में आई और पाश्चात्य मूल-धारणा का जन्म भी मानवीय सुख और भावना को लेकर ही हुआ। इसीलिए मानवीय चेतना के विकास और समाज-हित की भावना के कारण लक्ष्य की दृष्टि से जहां हमने भारतीय चिन्तना को जीवन-मूल्य का स्वरूपाधार माना है, वहां मूल्य की व्यवहारिकता की वैज्ञानिकता संयोजना का निष्कर्ष-रूप पाश्चात्य सिद्धान्त को अपनाया है। इसी समन्वित मार्ग से हमने सुन्दरम् और शिवम् का तत्व भारतीय दर्शन से और तथ्य-चिन्तना का मनोवैज्ञानिक आधार पाश्चात्य विचारधारा से प्राप्त किया है। इसी सामंजस्य पूर्ण दृष्टिकोण से हम उन सौन्दर्यपरक तथा शिवात्मक चिन्तन-दृष्टियों वैचारिक इकाइयों अथवा बौद्धिक तथ्यों को मूल्य कह सकते हैं जो कि मानवता के विकास में सहयोगी हो सकती हैं। मानव जीवन के सन्दर्भ में लोकहित की दृष्टि से चिन्तन का यही मार्ग श्रेयकर जान पड़ता है। किसी भी वैयक्तिक चिन्तन-प्रसूत जीवन-दृष्टि को तभी मूल्य कहलाने का अधिकार प्राप्त होता है जब वह मानवता के विकास में सहयोगी होने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। यही मूल्य-चेतना मानवीय विकास की परम शक्तिशाली अमोध प्रेरक है जिससे मानव जीवन सुख और कल्याण की दिशा में निरन्तर गतिशील रहता है।

मूल्य संरचना के निर्माणक तथा प्रभावक आधारों को मुख्यता दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम-जैविक आधार, द्वितीय-पराजैविक आधार।

(अ) जैविक आधार :- जैविक आधार से हमारा आशय मनुष्य की जैविक शारीरिक संरचना से है। मूल्य के निर्माणक तथा प्रभावक जैविक आधारों के अन्तर्गत शारीरिक रचना, मूल प्रकृतियाँ, संवेग, अनुभूतियाँ, अभिवृत्तियाँ, अनुकरण, सुझाव, अभिरुचि, पूर्वधारणा, तर्क

आदि को सम्मिलित किया जाता है।

१ शारीरिक संरचना :- मानव के सम्पूर्ण शरीर की रचना परस्पर सम्बन्धित छोटे-छोटे असंख्य कोषों से मिलकर हुई है। इन कोषों को तीन मोटे भागों में बांटा गया है - (१) ग्राहक कोष का ज्ञानेन्द्रिय (Receptirs) उनका काम उत्तेजना को ग्रहण करना, जैसे भूख लगने के समय उत्पन्न तनाव से उत्तेजना प्राप्त करना। (२) स्नायु कोष (Conductor) या वाहक कोष जिन्हें स्नायु मण्डल (nurvousststem) भी कहा जाता है। इनका काम ग्राहक कोषों से प्राप्त की गई उत्तेजना को सम्पूर्ण शरीर में प्रसारित करना है। स्नायुमण्डल भूख के कारण ग्राहक -कोषों द्वारा अनुभूत उत्तेजना से सारे शरीर में प्रसारित करता है। (३) मांस पेशियाँ या प्रभावक कोष (Muscles or effectors) जिनको कार्मेन्द्रियाँ भी कहा जाता है और इन कोषों के द्वारा ही मनुष्य शरीर गतिशील होता है। इस शरीरिक क्रियाशील का आदेश स्नायु मण्डल से प्राप्त होता है और तभी क्षुधित मनुष्य क्षुधा तृप्ति की युक्ति ढूढ़ने लगता है। इस प्रकार मनुष्य जो भी क्रिया करता है उसमें ज्ञानेन्द्रियों स्नायु-मण्डल और कार्मेन्द्रियों का योगदान रहता है।

मानव शरीर-रचना में इन कोषों के अतिरिक्त वाहकाणु (Genes) भी होते हैं जिनके माध्यम से मनुष्य को पृतक विशेषतायें प्राप्त होती हैं। "वंशानुसंक्रमणवादियों के नेता श्री फ्रांसिस गेल्टन ने अपनी पुस्तक हेरीडिटरी जीनियस (Heriditory Genius. 1869) में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जब तक योग्य पुरुष योग्य स्त्री से विवाह करता रहेगा तब तक योग्य सन्तान निश्चय ही प्राप्त होती रहेगी....क्योंकि हमारी समस्त मानसिक, शारीरिक विशेषतायें किसी न किसी रूप में हमें अपने माता पिता से ही प्राप्त होती हैं।"[२८] जीवन तथा व्यक्तित्व के विकास हेतु यदि अपेक्षित कच्चा माल वंशानुसंक्रमण के द्वारा प्राप्त होता है तो व्यक्तित्व के निर्माण तथा उसके कार्य एवं व्यवहार को रूपायित करने का काम वातावरण माता-पिता की आदतें, रहन-सहन के तरीके पेशा तथा जलवायु आदि करता है। मैकाइवर तथा पेज के अनुसार "वंशानुसंक्रमण द्वारा जीवन की सम्भावनायें प्राप्त होती हैं पर उसकी सारी वास्तविकताओं का आधार पर्यावरण ही है।"[२९] शरीर संरचना ग्राहक कोषों, स्नायु कोषों, प्रभावक कोषों तथा वाहकाणुओं का संश्लिष्ट संयोजन होती है। माता-पिता की विचारधारा और दृष्टिकोण की

विशेषतायें वाहकाणुओं के द्वारा संतान के शरीर में संक्रमित हो जाती है, इसीलिये सन्तान के बनने वाले मूल्यों में उसकी शरीर संरचना का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इसी प्रकार शरीर संरचना में सहायक वातावरण भी मूल्य-निर्माण में प्रभावक होता है।

२ मूल प्रवृत्तियाँ (Instincts) :- ''मूल प्रवृत्तियाँ विशेष उत्तेजनाओं (Stimuli) की प्रतिक्रिया के वंशनुक्रम प्राप्त तरीके हैं, जो जीवन के संघर्ष में उपयोगी होने के कारण एक पीढ़ी से दूसरी में संक्रमित होते रहते हैं।''[३०] मूल प्रवृत्तियाँ जन्म के समय पूर्णतः विकसित रहती है तथा वे अनुभव सापेक्ष नहीं होतीं। मैक्डूगल के अनुसार ''मूल प्रवृत्ति एक जन्मजात मनः शारीरिक क्षमता है। इस क्षमता के कारण एक प्राणी कुछ चीजों का बोध कर सकता है। उस बोध से उसमें एक विशेष प्रकार का उद्वेग या संवेग उत्पन्न होता है जो उसे एक कार्य को, एक निश्चित ढंग से करने को प्रेरित करता है।''[३१]

मनुष्य की सम्पूर्ण क्रियायें मूलतः मूल प्रवृत्तियों से संचालित होती हैं। मूल प्रवृत्तियों का योगदान सामाजिक मूल्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण है। ट्रॉटर के अनुसार सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति (Gregarious instinct) मानव के समस्त सामाजिक जीवन का आधार है। फ्रायड के अनुसार काम-प्रवृत्ति, जिसे लिबिडो कहा है, मनुष्य के सामाजिक व्यवहार का नहीं; बल्कि सम्पूर्ण मानव व्यवहार का आधार है। मनुष्य के सभी आदर्श, परम्परायें प्रथायें और मूल्य इसी प्रवृत्ति की सन्तुष्टि के साधन मात्र हैं। अन्य विद्वानों के मतानुसार पुत्र- कामना, सामूहिकता आत्म-गौरव, आत्मावज्ञा और सहानुभूति आदि मूल प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर ही मनुष्य समाज में व्यवहार करता है, मूल्यों का सृजन करता है। स्पष्ट है कि बिना मूल प्रवृत्यों के मनुष्य क्रिया, भाव तथा विचार-शून्य हो जायेगा और ऐसी अवस्था में मूल्यों के अस्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता। इस आधार पर मनुष्य का सम्पूर्ण कार्य, ज्ञान और भाव-क्षेत्र जो कि जीवन मूल्यों को निश्चितता प्रदान करता है, मूल प्रवृत्तियों से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। स्पष्टतः मूल प्रवृत्तियां ही जीवन मूल्यों की जननी है।

३ संवेग (Emotion) :- मैक्डूगल के अनुसार, ''संवेग अनुभव का एक रूप है जो कि

मूल प्रवृत्यात्मक प्रेरणा के क्रियाशील होने के समय उसमें विद्यमान रहता है....।''[३२] संवेग मूल प्रवृत्ति की कार्य प्रणाली में सहायक होते हैं। जब ये उत्पन्न होते हैं तब मनुष्य की मांसपेशियों में हलचल होने लगतीहै। मूल प्रवृत्तियां किसी भी जाति के सभी सदस्यों में समान होती हैं। उद्वेगों में वैयक्तिक भिन्नता हो सकती है और इस दृष्टि से यह बहुत सम्भव है कि संवेगों की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के जीवन मूल्यों में भी अन्तर हो। कामुक और संयमित तथा गुस्सैल और शान्त स्वभाव वाले व्यक्ति के जीवन मूल्यों में निश्चित रूप से अन्तर होगा। जबकि काम और युयुत्सा मूल प्रवृत्तियाँ दोनों में समान रूप से व्याप्त हैं।

४- **प्रेरणा (Motivaton)** :-प्रेरणा वह शक्ति है जो एक व्यक्ति को कार्य करने के लिए उत्तेजित करती है। वह व्यक्ति के व्यवहार की दिशा निर्धारण करती है और उसकी क्रियाओं की गति का उद्देश्य-प्राप्ति तक संचालन करती है। रवीन्द्रनाथ मुकर्जी के शब्दों में, ''प्रेरणा व्यक्ति की वह जैविक और अर्जित मनः शारीरिक प्रक्रिया या चालक शक्ति है जो कि व्यक्ति को किन्हीं प्राणि-शास्त्रीय व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने तक क्रिया के लिए प्रेरित करती रहती है।''[३३]

प्रेरणाओं की उत्पत्ति के आधार पर दो मोटे वर्गों में विभाजित किया जाता है - १ जैविक और व्यक्तिगत प्रेरक, २ सामाजिक प्रेरक।

(१) जैविक के अन्तर्गत भूख, प्यास, काम आदि और व्यक्तिगत प्रेरक के अन्तर्गत आदत, अभिरुचि, लालसा, मनोवृत्ति, जीवन लक्ष्य आदि प्रेरणायें आती हैं।

(२) सामाजिक के अन्तर्गत प्रतिष्ठा, सुरक्षा, संरचना, सामाजिकता, प्रभुता आदि प्रेरणायें सम्मिलित हैं। कुछ प्रेरणाओं जैसे भूख, प्यास, काम, सुरक्षा आदि के अतिरिक्त अन्य प्रेरणायें भिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न होती हैं। वे सामाजिक मूल्य जो हिन्दू संस्कृति में विशेष महत्व रखते हैं, अन्य संस्कृतियों में प्रभावहीन होते हैं। जैसे हिन्दुओं में विधवा-विवाह सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से वर्जित है जबकि दूसरी संस्कृतियों में मान्य होने के कारण विधवाओं के साथ व्यवहार

की प्रेरणा भी हिन्दुओं से भिन्न होती है। इस प्रकार प्रेरणायें अलग-अलग जातियां और संस्कृतियों में अलग-अलग मूल्यों का निर्माण और संचालन करती हैं।

५- **अनुभूतियाँ (Feelings)** :- "अनुभूति किसी वस्तु, परिस्थति या क्रिया के सम्बन्ध मे एक व्यक्ति का अपना आन्तरिक भाव है।"[३४] इस प्रकार अनुभूति एक भावात्मक एवं सक्रिय मानसिक प्रक्रिया है। प्रत्येक अनुभूति मुख्यत: व्यक्ति वस्तु, क्रिया, परिस्थिति सापेक्ष होती है। इसी आधार पर अनुभूतियों में अन्तर पाया जाता है। एक ही घटना की अलग-अलग आदमियों पर भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया होती है और वे भिन्न-भिन्न दृष्टियों से सोचने लगते हैं। जैसे युद्ध एक घटना है लेकिन विजेता और विजित देशों या व्यक्तियों की अनुभूति तथा दृष्टिकोण अलग-अलग होंगे, क्योंकि युद्ध की घटना का प्रभाव भिन्न देशवासियों द्वारा भिन्न - भिन्न रूप में लिया गया है। इसी प्रकार गौहत्या कार्य की प्रतिक्रियायें हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध और अहिन्दू मांसाहारी के लिए अलग-अलग होंगी। इस अनुभूति की भिन्नता के कारण ही इन अलग-अलग धर्मवालों ने भिन्न-भिन्न मूल्य प्रदान किये हैं स्पष्टत: मूल्य के प्रतिष्ठापन में अनुभूति एक महत्वपूर्ण घटक है।

६- **अभिवृत्तियाँ (Attitudes)** :- "अभिवृत्ति एक उपार्जित तथा अधिगमित और स्थापित वह प्रवृत्ति है जो किसी वस्तु अथवा वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है.... यह अभिवृत्ति एक मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं को अभिव्यक्त कर सकती है।"[३५]

शैरिफ का विचार है कि अभिवृत्तियाँ अहं (ईगो) के मुख्य अवयव है। प्रेरणा उद्देश्य-प्राप्ति तक ही स्थित रहती है; किन्तु अभिवृत्तियां उद्देश्य-प्राप्ति के पश्चात भी बनी रहती हैं। अभिवृत्ति के निर्माण में अनेक प्रेरणायें सम्मिलित रहती हैं और मूल्य में अभिवृत्तियाँ सन्निहित होती हैं। अभिवृत्तियाँ व्यक्ति, समाज, धर्म, शिक्षा, आर्थिक स्थिति, पारिवारिक संस्कृति मित्रों एवं अन्य परिचितों की अभिवृत्तियों एवं विश्वासों पर आधारित होती है तथा उपर्युक्त तत्वों की भिन्नता के अनुरूप भिन्न-भिन्न होती हैं।

वस्तुतः मानवीय अभिलाषाओं में से संकलित वे अभिवृत्तियां जिनमें सौन्दर्य और आकर्षण होता है तथा जिनका सम्पूर्ण जीवन के लिए महत्व होता है "नार्म" बनने की प्रक्रिया से गुजरते हुये मूल्य का स्वरूप धारण करती हैं।

७- **सहानुभूति (Sympathy)** :- मैकडूगल सहानुभूति के सन्दर्भ में लिखते हैं कि "दूसरे के दुख में दुखी होना या दूसरे किसी व्यक्ति या प्राणी में एक विशेष भावना अथवा उद्वेग को देखकर अपने में भी किसी तरह की भावना या उद्वेग का अनुभव करना ही सहानुभूति है।"[३६] दूसरे की स्थिति को उसी रूप में अनुभूत कर लेना पारस्परिक सम्बन्ध की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः मित्रता का मूलाधार यही गुण है। सहानुभूति के माध्यम से समाज में संगठन और एकता स्थापित होती है। दूसरे की पीड़ा से द्रवित होकर ही व्यक्ति कल्याणकारी कार्यों में संलग्न होता है। सहानुभूति की क्रियाशीलता के कारण ही व्यक्ति के नैतिक मूल्यों का प्रतिष्ठापन होता है जो मनुष्य को जितना सहानुभूतिशील होगा वह उतना ही सेवा, सहायता, सहनशीलता आदि मूल्यों को अधिक महत्व देगा। एक बात और सहानुभूति मनुष्य की जिस कल्पनाशीलता पर निर्भर करती है उस कल्पनाशीलता की उर्वरता ही मनुष्य से साहित्य का भी निर्माण करवाती है। क्रौंच-वध की पीड़ा को उसी रूप में अनुभूत करने वाले बाल्मीकि ही रामायण की रचना कर सके।

८- **अनुकरण (Imitation)** :- हूलयालकर ने अनुकरण के सम्बन्ध में लिखा है कि "अनुकरण दूसरों के व्यवहार की पुनरुत्पत्ति (Reproduction) या पुनरावृत्ति (Duplication) है।" अनुकरण की प्रवृत्ति मनुष्य में बाल्याकाल से ही पाई जाती है और इसी प्रवृत्ति के आधार पर व्यक्ति परम्परागत शब्दावली भाषा-संकेत तथा कई सामाजिक क्रियाओं आदि को अचेतन अनुकरण द्वारा सीख लेता है। जैसे जैसे बालक बड़ा होता है वह चेतन अनुकरण भी करने लगता है। ये अनुकूल क्रियायें ही उसकी आदत के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अनुकरण की प्रवृत्ति सभी व्यक्तियों में पाई जाने के कारण ही समाज में एकरूपता आती है जो कि सामाजिक संगठन का आधार

है। अनुकरण से स्वतः मनुष्य की अनेक इच्छाओं और अपेक्षाओं की पूर्ति हो जाती है जिससे उसके व्यक्तित्व का विकास होता रहता है।

व्यक्ति सचेतन अवस्था में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने आदर्श निर्धारित कर लेता है और उन्हीं आदर्शों के अनुकरण से उसका जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण बन जाता है। इस प्रकार अनुकरण का आधार और अनुकरण की प्रक्रिया मनुष्य के मूल्य प्रतिष्ठापन में सहायक होती है। जैसे, गांधीवादी आदर्श को अनुकरण का आधार मानने वाले व्यक्तियों के मूल्यों में सत्य, अहिंसा और आध्यात्मिकता का महत्वपूर्ण स्थान होता है, जबकि मार्क्सवादी विचारधारा का अनुकरण करने वाले व्यक्तियों में वर्ग संघर्ष (चाहे वह हिंसात्मक ही क्यों न हो) और भौतिकता का।

९- **सुझाव** (Suggestion) :- सुझाव को परिभाषित करते हुये थाउलैस (Thouless) लिखते हैं कि "सुझाव शब्द का प्रयोग सामान्यतः तार्किक दबाव को छोड़कर किसी ऐसी प्रक्रिया के लिए किया जाता है जिसके द्वारा विचारों की एक व्यवस्था के प्रति एक मनोवृत्ति को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संचालित किया जाता है।"[३७] सुझाव कोई मूल प्रवृत्ति नहीं है। यह तो मूल प्रवृत्ति को जागरूक एवं क्रियाशील बनाने वाली प्रक्रिया है। इसलिए सुझाव के लिए स्व से भिन्न दूसरे पक्ष का होना अनिवार्य है वैसे सुझाव ग्रहणशीलता आन्तरिक और बाह्य दोनों ही स्थतियों पर निर्भर करती है। सुझाव ग्रहणशीलता के बाह्य पक्ष का सम्बन्ध किसी भी प्रतिष्ठित व्यक्ति या पुस्तक से होता है, जिसके प्रति आस्था के कारण बिना किसी तर्क के उसके द्वारा प्रदत्त सुझावों को मनुष्य विश्वास पूर्वक स्वीकार कर लेता है। सुझाव ग्रहणशीलता के आन्तरिक पक्ष का अर्थ है। व्यक्ति की अपनी निज़ी परिस्थिति जैसे – दुख, पीड़ा, बीमारी या किसी प्रकार की संकट की स्थिति जो व्यक्ति को आसन्न संकट से मुक्ति की प्रबल लालसा के कारण तर्कशून्य बनाकर सुझाव ग्रहण करने को तत्पर कर देती है। मनुष्य को बाल्काल से ही माता-पिता, अध्यापक तथा अन्य सदस्यों एवं धार्मिक, सांस्कृतिक तथा अन्य विषय के ग्रन्थों द्वारा सुणव मिलने शुरू हो जाते हैं जिससे उसकी अभिरुचि तथा दृष्टिकोण को दिशा मिलती है। उसी से

उसके जीवन मूल्यों का भी निर्माण होता है, जैसे आस्था पर आधारित धार्मिक मूल्यों का निर्माण। सुझाव का मानव-जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि समाज के रीति-रिवाजों, परम्पराओं तथा मान्यताओं का स्थायित्व सुझाव की स्वीकृति पर ही निर्भर होता है।

१०- **अभिरुचि (Interest)** :- डा० एस० एस० माथुर के अनुसार "व्यक्ति की अभिरुचि उसे ऐसे पदार्थों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है जो उसे अनुसरित करे और जिनके प्राप्त करने में उसे प्रसन्नता मिले।"[३८] व्यक्ति की अभिरुचियों का निर्माण और विकास पारिवारिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष में होता है। जैसे-जैसे उसका समाजीकरण शुरू होता है वैसे-वैसे ही अभिरुचियां भी निर्मित व विकसित होती चलती हैं। व्यक्ति को जिस प्रकार का पारिवारिक वातावरण मिलता है उसी के अनुरूप उसकी अभिरुचियों का निर्धारण होता है जैसे- धर्म प्रवण परिवार में पोषित बच्चे में आस्तिकता की अभिरुचि उत्पन्न हो जाती है और इसी से उसके धार्मिक मूल्यों का निर्माण होता है। इस प्रकार पारिवारिक और सामाजिक परिवेश से व्यक्ति की अभिरुचि बनती है और अभिरुचि के द्वारा उसका मूल्य प्रतिष्ठापन होता है। अर्थात् समाज व्यक्तियों में जिस प्रकार की अभिरुचियों का निर्माण करता है उसी के अनुसार किसी समाज के साहित्यिक, वैज्ञानिक, अध्यात्मिक और कलात्मक मूल्यों का सृजन होता है।

११- **पूर्वधारणा (Prejudice)** :- यंग पूर्वधारणा को इस प्रकार परिभाषित करते हैं कि "पूर्वधारणा एक व्यक्ति की-अन्य व्यक्ति के प्रति पूर्व निर्धारित अभिवृत्ति या विचार है, जो सांस्कृतिक मूल्यों और अभिवृत्तियों पर आधारित होता है।"[३९] ऑगबर्न के अनुसार "पूर्व धारणायें ऐसे अतिशीघ्र निर्णय या एकमत से बनती हैं जो कि बिना परीक्षण किया हुआ होता है।"[४०] ऑगबर्न की इस परिभाषा के साथ यह असहमति प्रकट की जा सकती हे कि पूर्व धारणा केवल शीघ्र निर्णय का ही परिणाम नहीं है, बल्कि पूर्वधारणायें बचपन से ही धीरे-धीरे विकसित होती रहती है। जैसे भारतीय समाज में निम्न जाति के प्रति बच्चों में शुरू से ही घृणा की पूर्वधारणा का निर्माण हो जाता है। पूर्वधारणा की मूल आत्मा उसमें पाई जाने वाली कट्टर जड़ता है। उसमें गतिशीलता नहीं होती और जब गतिशीलता के कारण पूर्वधारणा में परिवर्तन हो जाता है तो वह

पूर्वधारणा नहीं रह पाती। जैसे हरिजनों के प्रति हिन्दू समाज में पूर्वधारणायें थीं वे गांधी जी के हरिजनोद्धार के प्रयत्न से परिवर्तित होकर कम हो गई।

पूर्वधारणा मानवता के लिए एक अभिशप्तवृत्ति है जो कि मनुष्य और मनुष्य में वर्ण, जाति, वर्ग, धर्म, भाषा, संस्कृति, राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता आदि के आधार पर भेद करवाती है। इससे मनुष्य का व्यक्तित्व तो कुण्ठित होता ही है साथ ही सामाजिक व सांस्कृतिक प्रगति भी अवरुद्ध हो जाती है। पूर्वधारणा मिथ्या प्रत्यय के ऊपर आधारित होने के कारण उसमें तर्क, प्रमाणिकता तथा यथार्थता का कोई स्थान नहीं होता इसीलिए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विशेष रूप से सांस्कृतिक क्षेत्र में अधिकांश मूल्यों को इन पूर्वधारणाओं के आधार पर ही स्वीकृति मिल जाती है।

मूल्य-प्रतिष्ठापन में पूर्व धारणाओं का महत्व इसलिए भी है कि ये मनुष्य की अभिवृत्तियों के निर्माण में सहायक होती है और यह पहले ही कहा जा चुका है कि अभिवृत्तियाँ मनुष्य के मूल्य निर्माण में महत्वपूर्ण भाग अदा करती हैं। व्यक्ति के तार्किक विकास के साथ-साथ ही पूर्व धारणायें भी बदलती है जिससे मानवीय मूल्यों में भी परिवर्तन होता है, जैसे जाति प्रथा के प्रति बदलते हुये दृष्टिकोण से ही अन्तर्जातीय विवाह सम्भव हो गये हैं।

१२- **तर्क (Reason)** :- तर्क ज्ञान और व्यवहार दोनों को एकता की ओर ले जाने का आवेग है सिद्धान्त के क्षेत्र में व्यक्ति जीवन के विभिन्न अनुभवों से जो ज्ञानकरण संचित करता है तर्क उन्हीं को वैज्ञानिक एकरूपता प्रदान करता है। इसी के आधार पर व्यक्ति विशेष के उसूल या सिद्धान्त निर्मित होते हैं। व्यवहार के क्षेत्र में तर्क व्यक्ति के उसूलों या सिद्धान्तों को सन्तुलित रूप में क्रियान्वित करने में योगदान देता है। इस प्रकार तर्क के द्वारा व्यक्ति को वैचारिकता और क्रियाशीलता में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। सभी सामाजिक संस्थायें तथ्य अवमाननायें विभिन्न व्यक्तियों के तर्कों के सामंजस्य का प्रतिफलन है। तर्कों के इस सामूहिक योगदान से ही सामाजिक मान्यताओं का विकास होता चलता है। समस्त दर्शनों व विचारधाराओं के इतिहास के पीछे, तर्क के विकास की प्रक्रिया ही विद्यमान है।

तर्क का मानव मूल्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पूर्वधारणायें अभिवृत्तियाँ आदि प्राय: तर्क शक्ति के आभाव में ही ग्रहण की जाती हैं। अत: जहां मनुष्य की तर्कशक्ति प्रबल होगी वहां उसके मूल्य पूर्वधारणाओं और अभिव्यक्तियों से संचालित नहीं होंगे, बल्कि उनका स्वरूप उसकी तर्कशक्ति के द्वारा ही निर्धारित होगा। वर्तमान युग में मनुष्य की चिन्तन-धारा में जो महान परिवर्तन आया है उसका प्रमुख़ कारण है उसकी तर्कशक्ति का प्रबल होना। मध्यकालीन मूल्यों में आस्था, विश्वास आदि अधिक व्यापक थे। इसीलिए पूर्वधारणाओं, रुढ़ियों, परम्पराओं आदि का महत्वपूर्ण स्थान था। आधुनिक विचारधारा में वैज्ञानिकता और तर्कशीलता के प्रवेश ने उन सब पारम्परिक मूल्यों का बखिया उधेड़ दिया है। इसीलिए प्राचीन मूल्यों की टूटन का शोर अधिक सुनाई पड़ रहा है। स्पष्ट है कि मूल्यों के परिवर्तन और प्रतिष्ठापन में तर्क का महत्वपूर्ण योग है। तर्क के इस महत्व को बताते हुये बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है कि विचार की शक्ति किसी भी अन्य मानवीय शक्ति से बढ़कर है और यह विचार तर्क से ही पुष्ट होता है।

(ब) पराजैविक आधार :- मूल्यों के निर्माणक तथा प्रभावक पराजैविक आधार के अन्तर्गत मनुष्य के जीवशास्त्रीय तत्वों के अतिरिक्त अन्य तत्वों को सम्मिलित किया गया है। पराजैविक के भी पुन: तीन भाग किये गये हैं - प्रथम सामाजिक, द्वितीय प्राकृतिक तथा तृतीय मानविकी। सामाजिक क्षेत्र में सामाजिक व्यवस्था (व्यक्ति, परिवार तथा समाज), सामाजिक मान्यतायें (संस्कार, आदर्श, नॉर्म, रुढ़ि, परम्परा, सभ्यता और संस्कृति), सामाजिक स्थिति (आर्थिक, राजनैतिक-शासन-व्यवसथा, कानुन, युद्ध) आदि को समाविष्ट किया जाता है। मानविकी आधार में शिक्षा, धर्म, दर्शन, नीति, विज्ञान, कला और साहित्य आदि का समावेश रहता है।

१- सामाजिक व्यवस्था :- मनुष्य एक मनोजैविक व्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक व्यक्ति का संश्लिष्ट रूप है। इन दोनों ही प्रकार के रूपों में उसकी अनेक शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक आवश्यकतायें होती हैं और उन आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना उसका अस्तित्व संभव नहीं हो सकता। इसलिए उसे इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु क्रियाशील होना पड़ता है। यह

क्रियाशीलता ही मनुष्य को सामाजिकता में प्रवेश दिलाती है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में जन्म से मृत्युपर्यन्त सामाजिकता का अपरिहार्य स्थान होता है। मनुष्य का व्यवहार, आचार-विचार, जीवन-दृष्टि अथवा जीवन-मूल्यों का निर्धारण समाज के द्वारा ही सम्भव होता है।

व्यक्ति के सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों की निर्मिति समाज द्वारा होती ही है। उसके जैविक तथा मनोजैविक मूल्यों की स्वीकृति के लिए भी उसे समाज पर ही आश्रित रहना पड़ता है। समाज मूल्यों का निर्माण व स्वरूप निर्धारण ही नहीं करता वरन् उनकी अभिव्यक्ति एवं प्रकाशन का माध्यम तथा उनकी पूर्ति के स्वरूप को भी निश्चित करता है। जैसे काम मनुष्य का जैविक अर्थात नितान्त व्यक्तिक मूल्य है, किन्तु इसकी अभिव्यक्ति व पूर्ति के लिए व्यक्ति को सामाजिक संस्था-विवाह पर निर्भर रहना पड़ताहै।

मनुष्य का सर्वप्रथम परिचय ही सामाजिक संस्था परिवार से होता है। परिवार के द्वारा ही उसकी समस्त व्यक्तिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। व्यक्ति, संस्कार, आदत, अभिरुचि, अभिवृत्ति, पूर्वधारणा तथा भाषा आदि सर्वप्रथम अपने पारिवारिक परिवेश से ही सीखता है। इस प्रकार मूल्यों के निर्माण में भी परिवार प्रारम्भिक इकाई का कार्य करता है। किसी मनुष्य के आचार-विचार और व्यवहार के आधार पर उसके पारिवारिक स्तर का पता लगा लेना व्यक्तित्व-विकास में परिवार के महत्वपूर्ण प्रभाव का सूचक है।

२- **सामाजिक मान्यतायें :-** समाज में विभिन्न प्रकार के संस्कार, आदर्श एवं नॉर्म (आदर्श नियम) प्रचलित होते हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को उसके बाल्याकाल से ही प्रभावित करते हैं संस्कारों से व्यक्ति का आचरण निर्धारित होता है, आदर्शों से श्रेष्ठतर लक्ष्यों की ओर गति बढ़ती है तथा 'नॉर्म' से व्यक्ति के व्यवहारों का नियमन होता है। ये मान्यतायें व्यक्ति में सामाजिकता का विकास करती हैं और उसकी मूल्य दृष्टि का निरन्तर नियमन करती रहती हैं।

३- **सामाजिक रीतियाँ :-** समाज़ में रुढ़ियों (Mores), परम्पराओं (Tradition) एवं प्रथाओं (Customos) के रूप में जो रीतियाँ विद्यमान होती है वे व्यक्ति के सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण

करती है। रुढ़ियां समूह के कल्याण की अवधारणा को लेकर चलती है, परम्परायें समाज की एक पीढ़ी के रीति-रिवाजों, आदतों, विचारों कानूनों, प्रथाओं आदि को मौखिक रूप से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करती है तथा प्रथायें एक पीढ़ी के कार्य करने के तरीकों को दूसरी पीढ़ी को सौंपती है। इस प्रकार ये रीतियां एक समाज के नियंत्रण की प्रविधियाँ है इसलिये उस समाज के जीवन मूल्य भी उनसे नियंत्रित होते हैं। जीवन मूल्यों की रचना में सामाजिक रीतियों की भूमिका होती है वहां जीवन-मूल्य भी इन रीतियों को परिवर्तित करते रहने में सक्रिय होते हैं।

४- सभ्यता और संस्कृति :- अंग्रेजी में कहावत है कि "सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है। मोटर, महल, हवाई जहाज, पोषाक और अच्छा भोजन में तथा उनके समान सारी स्थूल वस्तुयें संस्कृति नहीं सभ्यता के समान हैं। मगर पोशाक पहनने और भोजन करने में जो कला है वह संस्कृति की चीज है।"[४१] डा० देवराज ने सभ्यता और संस्कृति के अन्तर को इस प्रकार स्पष्ट किया है "सभ्यता, संस्कृति दोनों मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के कार्य परिणाम है। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है तब सभ्यता का जन्म होता है और जब मूल्य-चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है तब संस्कृति का उदय होता है।"[४२] इसी आधार पर मानव के साध्यात्मक और साधनात्मक मूल्यों का निर्माण होता है। मैकाइवर तथा हुमायूं कबीर ने कहा है सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता के क्षेत्र से है और संस्कृति का मूल्यों के क्षेत्र से।"[४३]

मनुष्य के भौतिक साधन और भावनात्मक तथा विचारात्मक दृष्टियाँ सदैव एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। मानव के जीवन-मूल्यों का सीधा सम्बन्ध संस्कृति से होता है और सभ्यता के साथ जीवन-मूल्यों का सम्बन्ध संस्कृति के माध्यम द्वारा ही सम्भव है। मूल्य मनुष्य और समाज की गतिविधियों के सम्बन्ध में लिये गये वैचारिक निर्णय हैं। इस रूप में मूल्यशास्त्र संस्कृति का ही एक अंग है। सांस्कृतिक परिवर्तन मूल्यों का भी परिवर्तन है। पदार्थ का चेतना को और चेतना का पदार्थ को प्रभावित करना सृष्टि की प्रकृति है। इस दृष्टि से मनुष्य

की सभ्यता के परिवेश का उसके सांस्कृतिक वातावरण पर प्रभाव होना अनिवार्य है और इसी रूप में सभ्यता भी मूल्य-निर्माण का घटक बनती है।

समस्त राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक संस्थायें जो कि मानवीय सभ्यता और संस्कृति के उपादान हैं, मनुष्य के सामूहिक चिन्तन का परिणाम हैं और ये संस्थायें मानव मूल्यों को दूर तक प्रभावित करती हैं। इस प्रकार मनुष्य सभ्यता व संस्कृति के प्रभावानुसार अपने वैयक्तिक मूल्यों का सृजन करता है। सभ्यता और संस्कृति की भिन्नता के अनुरूप ही व्यक्तियों के जीवन-मूल्यों में भी अन्तर पाया जाता है।

५ - सामाजिक स्थितियाँ :-

(क) आर्थिक स्थिति :- मानव जन्म से ही कुछ ऐसी मूल्य प्रवृत्तियाँ और आवश्यकतायें लेकर आता है जिनकी संतुष्टि के लिए उसे आर्थिक व्यवहार में प्रवेश करना ही पड़ताहै। धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, साहित्य आदि सभी क्षेत्र मानव संस्कृति के इतिहास में उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते गये हैं, लेकिन इन सबकी आधारशिला मनुष्य की आर्थिक तुष्टि ही है। इसीलिए तो जीवन मूल्यों के इतिहास में सर्वप्रथम जिन मूल्यों का निर्माण हुआ, वे हैं आर्थिक-मूल्य। आज भी अविकसित और अल्प विकसित जातियाँ विद्यमान हैं, उनमें चाहे दार्शनिक और कलात्मक मूल्यों का कोई स्थान न हो, लेकिन आर्थिक व्यवस्था वहां भी मौजूद है और वहां आर्थिक मूल्यों का अस्तित्व है। आर्थिक मूल्यों का सम्बन्ध मनुष्य की प्रमुख मूल प्रवृत्तियों से है, जो कि सदैव और सब में विद्यमान रही हैं।

इसी तथ्य की पुष्टि में रूसी लेखक द्वय ने लिखा है कि "समाज में सामाजिक जीवन की भौतिक अवस्थायें, भौतिक मूल्यों का उत्पादन ही प्राथमिक है, और लोगों के मत, उनके विचार और सिद्धान्त द्वितीयक है; कारण, वे जीवन की भौतिक अवस्थाओं से उत्पन्न होते हैं मनुष्यों की सामाजिक चेतना का मूल्य है उनकी जीवन प्रणाली।"[४४]

आर्थिक भिन्नता के आधार पर संस्कृति, राष्ट्र, धर्म, जाति आदि की विचारधाराओं मान्यताओं और मूल्यों में भी अन्तर पाया जाता है यहां तक कि दो भिन्न आर्थिक स्थितियों वाले परिवार में पले हुये व्यक्तियों के जीवन मूल्यों में भी भिन्नता मिलेगी। यही नहीं समाज में वर्ग भिन्नता के अनुसार मूल्य भिन्नता भी पाई जाती है। आर्थिक स्थिति व्यक्ति के सांस्कृतिक स्तर को रूपायित करती है इसीलिए निम्न-वर्ग तथा मध्य-वर्ग की यौन-पवित्रता नारी-विषयक मूल्यों में अन्तर मिलता है। वस्तुत: अर्थ मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण साधन है। इसीलिए परिवार और समाज की आर्थिक स्थिति उसके जीवन-मूल्यों को प्रत्येक क्षेत्र में गहराई तक प्रभावित करती है। आर्थिक स्थिति के परिवर्तित होने के साथ-साथ ही उसके मूल्य भी बदलते जाते हैं।

(ख) राजनैतिक स्थिति :-

शासन व्यवस्था :- शासन-व्यवस्था का जन्म मानव-जीवन की बढ़ती हुई जटिलता के परिणामस्वरूप हुआ है यह मानव-विकास की प्रक्रिया में एक आवश्यक तथा आपेक्षित संस्था के रूप में अस्तित्व पा सका है। शारीरिक और आर्थिक सुरक्षा और शान्ति से सम्बन्धित मूल्य प्राचीन से प्राचीनतम तथा नवीन से नवीनतम मूल्यों में से हैं। अस्तित्व का संकट सदा बना रहा है। हाँ, उसका स्वरूप परिवर्तन अवश्य होता रहता है शासन-व्यवस्था का सम्बन्ध मनुष्य के अस्तित्व और उसके संरक्षण से होने के कारण उसनें मानव-जीवन को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। शासन व्यवस्था के स्वरूप परिवर्तन के साथ-साथ ही मनुष्य के विचारणाओं का स्वरूप भी बदलता जा रहा है। राजतंत्र, सामन्तशाही, प्रजातन्त्र-पूंजीवादी, समाजवादी, साम्यवादी आदि सभी शासन-व्यवस्थाओं के नागरिकों के जीवन-मूल्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं पराधीन भारत और स्वतंत्र भारत के एक ही नागरिक के जीवन मूल्य में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है ।

आज के व्यक्ति के राजनीतिक विचार ही नहीं आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, कलात्मक, दार्शनिक, वैज्ञानिक सभी प्रकार के विचार शासन-व्यवस्था से किसी न किसी

रूप में सम्बन्धित है। राजनैतिक संघर्ष जीवन के सभी क्षेत्रों में घुस आता है और चेतना के सभी रूपों पें प्रवेश करता है वास्तव में अगर हम आदिम समुदाय के युग को छोड़ दे तो हम देखते हैं कि राजनैतिक स्वार्थ और राजनैतिक संघर्ष सम्पूर्ण सामाजिक जीवन पर छाये हुये हैं।''[४५] यहां तक कि आर्थिक जीवन का नियमन भी शासन-व्यवस्था के आधार पर ही होता है। जीवन मूल्यों पर कानून एवं युद्ध का शासन व्यवस्था के अंग-रूप में प्रभाव पड़ता है।

कानून :- श्री राधाकमल मुकर्जी के अनुसार कानून का अनिवार्य कार्य ''राजनैतिक सत्ता द्वारा या किसी समुदाय द्वारा मानवीय मूल्यों की सुरक्षा तथा स्थायित्व रखना, वृद्धि करना और उनमें सामंजस्य बैठाये रखना ही है।''[४६] कानूनों और मूल्यों में मनुष्य अन्तर एक राजनैतिक संस्था द्वारा प्रदान की जाने वाली वैधता का है। कानून मूल्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकता है क्योंकि कानून के लागू होने के पीछे प्रभावशाली सत्ता का हाथ होता है। भारत सरकार द्वारा पारित गर्भपात एवं दहेज-हत्या सम्बन्धी कानून ने भारतीय समाज के स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों से जुड़े हुये मूल्यों में परिवर्तन लाना शुरूकर दिया है और सम्भव है कि परिवार नियोजन सम्बन्धी कानून के पारित होने से सामाजिक और आर्थिक मूल्यों में भी उथल-पुथल हो जाये।

युद्ध :- युद्ध जो कि एक राजनैतिक निर्णय होता है, मानव-मूल्यों को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली शक्ति है युद्ध मनुष्य के कलात्मक तथा आध्यात्मिक जीवन को ही नष्ट नहीं करता, बल्कि उसकी सामाजिकता को भी बर्बाद करता है, और यहीं नहीं उसके शारीरिक अस्तित्व का भी संहार करता है। युद्ध मनुष्य की जीवन व्यवस्था में एक महान क्रान्ति है जो उसको हिलाकर रख देती है। युद्ध के कारण प्रकृति, सामाजिक, संरचना अन्तर्राष्ट्रीय जीवन, आर्थिक, राजनैतिक, पारिवारिक यहां तक कि उसके वैयक्तिक जीवन सभी में विघटन उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य के जीवन-साधन, जीवन-प्रक्रिया, चिन्तन-पद्धति सभी परिवर्तित हो जाते हैं। इस शताब्दी के दो विश्व-युद्धों ने सम्पूर्ण विश्व के जीवन-मूल्यों में क्रान्ति ला दी है। इसलिये आज भय, त्राश, अनिश्चता विसंगति, पिद्रुपता, विभत्सता आदि स्थितियाँ जीवन का यर्थात बनकर पुराने आस्थापूर्ण मूल्यों को भुलाकर नवीन अनास्थापूर्ण जैसे अस्तित्वादी, क्षणवादी, मृत्युवादी आदि मूल्यों को जन्म दे रही है। स्पष्टतः युद्ध का जीवन-मूल्यों के निर्माण और विकास में महत्वपूर्ण हाथ है।

(ग) जीवन-मूल्यों का वर्गीकरण

वर्गीकरण :- मूल्यों का वर्गीकरण मूलत: मूल्य के अर्थ तथा स्वरूप से सम्बद्ध है और जब मूल्यों के अर्थ तथा स्वरूप में मत-वैभिन्न हो तो उनके वर्गीकरण में भी अलग-अलग धारणाओं का होना स्वभाविक है। मूल्यों के लक्ष्य, विषय, संरचना, महत्व आदि की दृष्टि से अनेक प्रकार के वर्गीकरण किये गये हैं। भारतीय चिन्तन की पुरुषार्थ धारणा के अनुसार चतुर्वर्ग-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को लक्ष्य की दृष्टि से ही साधनात्मक मूल्य और साध्यात्मक मूल्य के रूप में विभाजित किया गया है। धर्म, अर्थ और काम अपने आप में साध्य नहीं है, बल्कि मोक्ष की प्राप्ति के साधन मात्र हैं और मोक्ष स्वयं में ही साध्य है। पाश्चात्य विद्वान अर्बन तथा मैकेन्जी ने भी लक्ष्य की दृष्टि से साधनात्मक-निमित्त-मूल्य (Instrumental Value) तथा साधनात्मक स्वलक्ष्य मूल्य (Intrincical Velue) के रूप में मूल्यों का विभाजन किया है।

स्थायित्व की दृष्टि से भी मूल्यों को शाश्वत और नश्वर दो रूपों में विभाजित किया गया है।[४७] प्राय: साध्यात्मक मूल्य शाश्वत तथा साधनात्मक मूल्यों को नश्वर मूल्य माना जाता है, क्योंकि साध्य की प्राप्ति के उपरान्त साधन की निरर्थकता स्वत: सिद्ध हो जाती है और वे नश्वरता को प्राप्त हो जाते हैं। मूल्य अन्तवर्ती तथा बहिर्वर्ती मूल्यों के रूप में भी वर्गीकृत है। "अन्तवर्ती मूल्यों का स्वतंत्र रूप से अपने लिये ही मूल्य होता है.... बाह्य मूल्य अन्तवर्ती मूल्यों की प्राप्ति के लिए एकसाधन या यन्त्र मात्र होते हैं।"[४८] अन्तवर्ती मूल्य साध्यात्मक तथा बहिर्वर्ती मूल्य साधनात्मक मूल्यों के रूप में स्वीकारे जा सकते हैं। इस प्रकार शाश्वत, साध्यात्मक अन्तर्वी, आध्यात्मिक, चरम तथा स्वलक्ष्यी प्राय: एक ही प्रकार के मूल्यों के अलग-अलग कोणों से दिये गये नाम हैं। इसी तरह नश्वर, अस्थिर, सामयिक, साधनात्मक निमित्त, बहिर्वर्ती अथवा ब्राहात्मक और भौतिक आदि भी एक ही प्रकार के मूल्यों के लिए प्रयुक्त अलग-अलग नाम हैं।

विषय की दृष्टि से मूल्यों को पारिवारिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, कलात्मक, दार्शनिक मूल्य आदि में विभाजित किया गया है। डा० हुकुमचन्द्र राजपाल

ने भौतिक, मानसिक, या मनोवैज्ञानिक, सामाजिक (सात्विक) तथा आध्यात्मिक इन चार भागों में मूल्यों का श्रेणीकरण किया है।''[४९] श्री हेमेन्द्र पानेरी ने दो दृष्टिकोणों से दो रूपों में मूल्य-विभाजन किया है, एक तो गति की दृष्टि से, स्थिर मूल्य-कम बदलने वाले (सत्य, ईश्वर, जीवन-मृत्यु से सम्बन्धित तथा नैतिक, साहित्यक, धार्मिक, रीतिरिवाज, रुढ़ियों व प्रथाओं पर आधारित मूल्य), गतिशील मूल्य-तीव्रता से बदलने वाले- (राजनैतिक, आर्थिक, खानपान, रहन-सहन, तथा वैज्ञानिक विचारधाराओं से सम्बन्धित आदि) मूल्यों में वर्गीकृत किया है। दूसरी दृष्टि से उन्होंने यर्थाथ परक के अन्तर्गत संमाजनिष्ठ अर्थात् राजनीति, वर्ण-व्यवस्था, वर्ग-विभाजन आदि और भावपरकता के अन्तर्गत व्यक्तिनिष्ठ अर्थात् प्रेम, स्वातन्त्रय, आत्मसम्मान, द्वेष आदि से सम्बन्धित मूल्यों को स्वीकार किया है।''[५०]

इसके अतिरिक्त मूल्य-विभाजन अन्य रूपों में भी मिलता है। पेरी ने नकारात्मक, सकारात्मक, विकासवादी तथा वास्तविक मूल्यों के आधार पर मूल्य-विभाजन किया है तो स्प्रागर ने सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौन्दर्यात्मक सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक श्रेणियों को स्वीकारा है। सुखवादी तथा सौन्दर्यवादी दृष्टियों से भी मूल्य-विभाजन हुआ है। किन्तु इन सभी वर्गीकरणों का आधार प्रायः सांस्कृतिक स्वरूप मात्र ही रहा है। इनसे भिन्न वर्गीकरण क्लारेन्स एम० केस द्वारा प्रस्तुत हुआ है। इन्होंने मूल्यों को चार श्रेणियों में रखा है - (१) सावयवी (Organic Values) आग-पानी आदि से सम्बन्धित मूल्य, (२) विशिष्ट (Specific Values) मनुष्य की व्यक्तिगत विशेषताओं से सम्बन्धित मूल्य, (३) सामाजिक (Social Values) जीवन से सम्बन्धित मूल्य, और (४) सामाजिक-सांस्कृतिक (Socio-Cultural Values) इसमें मानव आविष्कृत प्रतीक या उपकरण आते हैं, अर्थात् कला, सुन्दरता, अच्छाई और उपयोगिता से सम्बन्धित मूल्य आदि इस वर्गीकरण में भी उपर्युक्त सभी मूल्य-विभाजन सम्बन्धी दृष्टिकोणों की तरह मूल्यों की संरचना तथा उनके मनोवैज्ञानिक स्वरूप के पक्ष पर विचार नहीं किया गया है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य है।

अर्बन का मूल्य-विभाजन जहां एक ओर मनोविज्ञान तथा मूल्य प्रवृत्तियों आदि के विकास से सम्बन्धित है, वहां दूसरी ओर वह मनुष्य के सांस्कृतिक विकास को भी अपने में समाहित कर लेता है।[५१] यहां अर्बन के वर्गीकरण को आधार मानकर उसको और अधिक व्यवहारिक-वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया कया है, क्योंकि विवेच्य विषय मानव-जीवन के व्यवहारिक पक्ष से सम्बन्धित है।

मूल्यों के विकास की दृष्टि से सर्वप्रथम जीवन-मूल्यों को जैविक तथा पराजैविक दो विभागों में विभाजित किया गया है। मनुष्य की प्रारम्भिक मुख्य चेतना उसके शरीर अर्थात् जैविक-स्तर से सम्बद्ध होती है, इसीलिए मनुष्य की शारीरिकता से सम्बन्धित सभी मूल्य जैविक-मूल्यों के अन्तर्गत सम्मिलित किये गये हैं। मूल्य-चेतना के विकास का दूसरा स्तर व्यक्ति के जैविक स्वरूप से अर्ध्वगामी होकर उसकी सामाजिकता तथा सांस्कृतिकता एवं आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो जाता है। अतएव जैविक स्तर से उठे हुये मूल्यों को परजैविक मूल्य विभाग में रखा गया है। इस प्रकार इस वर्गीकरण में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही प्रकार की विकास प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया गया है। अर्थात् मनुष्य की स्थूल (शारीरिक) अनिवार्यताओं के साथ-साथ उनकी सूक्ष्म (बौद्धिक एवं भावनात्मक) अपेक्षाओं सम्बन्धी मूल्यों के अनुसार मूल्य-विभाजन हुआ है।

(घ) जैविक मूल्य (शारीरिक मूल्य) :-

जैविक अर्थात शारीरिक मूल्य से अभिप्राय मनुष्य के शरीर हित से सम्बन्धित प्राणि-शास्त्रीय वैचारिक दृष्टियों से है। मूलतः मनुष्य का अस्तित्व एक स्थूल शरीर के रूप में सर्वप्रथम संसार में प्रकट होता है। इस स्थूल शरीर को क्रियाशील बनाने में उसकी जन्मजात मूल प्रवृत्तियों तथा वंशानुगत प्राप्त 'जीन्स' और 'क्रोमो' का विशेष हाथ होता है। मानव-जीवन के विकास में मूल प्रवृत्त्यिों के महत्व को प्रमाणित करने का श्रेय मैकडूगल को है। उन्होने मनुष्य के प्रत्येक कार्य को किसी न किसी मूल प्रवृत्ति की प्रेरणाजन्य क्रियाशीलता का ही परिणाम माना है। उन्होंने लिखा है कि "मानव मस्तिष्क की कुछ जन्मजात व वंशानुगत प्रवृत्तियां होती हैं। ये प्रवृत्तियां ही समस्त विचार और क्रियाओं के आवश्यक स्रोत या प्रेरक हैं. चाहे वे विचार व क्रियायें व्यक्तिक हो चाहे सामाजिक।"[५२] जैविक मूल्यों का सम्बन्ध मनुष्य के शरीर सम्बन्धी आवश्यकताओं से सम्बद्ध मूल-प्रवृत्तियों से है। जिजीविसा भूख, प्यास, काम, मूल प्रवृत्तियाँ ही वे प्राथमिक अनिवार्य प्रेरणायें हैं, जो मनुष्य को शरीर रक्षा और शरीर तुष्टि हेतु क्रियाशीलता प्रदान करती हैं। मानवीय चेतना सर्वप्रथम इन्हीं अनिवार्यताओं की तुष्टि हेतु जिन सुन्दरम और शिवम् युक्त बोध इकाइयों अथवा जीवन लक्ष्यों का निर्माण व निर्धारण करती है, वे ही उसके जैविक मूल्य कहलाते हैं। स्वरक्षा और कामतुष्टि ही वे प्रमुख जैविक मूल्य है, जिसके द्वारा जीवन की प्राथमिक अनिवार्यता के रूप में मनुष्य अपने शरीर की रक्षा एवं विकास करता है।

मानवीय विकास का अर्थ है मनुष्य की चेतना का उदात्तीकरण। सर्वप्रथम मनुष्य की आत्म-चेतना का सम्बन्ध उसके शरीर और उसी से सम्बन्धित शरीर रक्षा और शरीर-तुष्टि आदि जैविक मूल्यों से होता है। किन्तु मनुष्य की आवश्यकतायें केवल जैविक स्तर तक ही सीमित नहीं रहती, पशु वर्ग से भिन्न उसकी कुछ मानसिक अपेक्षायें भी होती हैं। स्थूल जैविक स्तर से ऊपर उठकर मानव की चेतना सूक्ष्म भावनात्मकता तथा बौद्धिकता की ओर अग्रसर होती है। यही चेतना का उदात्तीकरण अथवा मनुष्य का मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक विकास

क्रम है। इस विकास क्रम के अनुसार ही हमने जीवन-मूल्यों का प्रथम जैविक और द्वितीय पराजैविक मूल्यों के रूप में वर्गीकरण स्वीकार किया। प्रथम द्वितीय क्रम से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि जैविक मूल्यों का जीवन की प्राथमिक अनिवार्यता के रूप में महत्व होता है। मनुष्य के सांस्कृतिक व्यक्तित्व के विकास का आधार भी उसका जैविक व्यक्तित्व ही होता है और इस दृष्टि से स्वत: जैविक मूल्यों का प्राथमिक अनिवार्यता के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान सिद्ध हो जाता है।

शारीरिक स्तर पर जैविक मूल्य ही मनुष्य के साध्यात्मक मूल्य होते हैं, लेकिन उत्तरोत्तर विकास के साथ-साथ उसके साध्यात्मक मूल्य जैविक स्तर से ऊपर उठकर उसकी सामाजिकता और उसे बाद आध्यात्मिकता से जुड़ जाते हैं। तब शारीरिक मूल्य उच्चतर मंजिल के लिए साधन का कार्य करते हैं। जिस प्रकार मंजिल की ऊँचाई की माप करते समय नींव की माप को नहीं भुलाया जा सकता, उसी तरह सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के आंकलन में जैविक मूल्यों की महत्ता को भी नहीं नकारा जा सकता है।

एक सुविकसित सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश में जैविक मूल्यों की नैसर्गिकता और आधारभूतता तो स्वत: सिद्ध रहती है; किन्तु पराजैविक मूल्यों के घने कोलाहल में उनकी मुखरता और भास्वरता दब जाती है इस प्रकार संस्कृति के विकास के साथ-साथ जैविक मूल्यों के प्रति मानव की सजगता के अभाव की स्थिति भी बढ़ती जाती है। ऐसी स्थिति में जब मनुष्य के अस्तित्व का संकट उपस्थित होता है अथवा किसी प्राकृतिक, भौतिक, सामाजिक, दुरावस्था या दुर्घटना की स्थिति आती है, तभी मनुष्य में शारीरिक मूल्यों के प्रति पुन: सजगता दिखाई पड़ती है। मनुष्य की शरीर सम्बन्धी मूल प्रवृत्तियों की मांग का तनाव और शारीरिक आवश्यकताओं की अतृप्ति बोध का दंश ऐसी ही अभावात्मक परिस्थितियों में उसे शरीर रक्षा और शारीरिक तुष्टि हेतु पीड़ित और अधीर कर देता है। अकाल, महामारी, फाकेपरस्त गरीबी और युद्ध विषम स्थितियों में ही जैविक मूल्यों की जीवन्तता को स्पष्ट देखा जा सकता है। साधारण स्थिति में मनुष्य की अतिसामाजिकता और इसी में निहित व्यक्तिगत संतुष्टि की सहज

स्थिति जैविक मूल्यों का विशिष्ट परिचय पाने में बाधक होती है। सामान्यतया साध्यात्मक मूल्यों की महत्ता के समक्ष जैविक मूल्य साध्यात्मक मूल्यों के रूप में गौण हो जाते हैं, किन्तु असामान्य स्थिति में व्यक्ति की आवश्यकता और मांग तथा परिस्थिति के प्रभाव और परिणामस्वरूप जैविक मूल्य पुनः साध्यात्मक मूल्यों का स्थान ले लेते हैं।

अर्बन ने आर्थिक मूल्यों को भी जैविक मूल्यों में ही सम्मिलित किया है, लेकिन अर्थव्यवस्था आर्थिक क्रियाओं अर्थात् मनुष्य के आर्थिक व्यवहार की सामाजिकता को देखकर उन्हें जैविक मूल्यों में ही सम्मिलित करना उचित नहीं प्रतीत होता। जहां तक भूख का सबाल है वहां तक तो यह नितान्त वैयक्तिक जैविक स्तरीय आवश्यकता है इसलिए क्षुधातृप्ति को जैविक मूल्य के अन्तर्गत ही स्वीकार किया गया है। किन्तु भूख से उबरे अर्थ सम्पन्न समाजों में आर्थिक क्रियायें भूख और अन्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से भी अधिक एक सामाजिक की अर्थ-सम्पन्नता का विषय बन चुकी है। इसलिए आर्थिक क्रियाओं की बढ़ती हुई सामाजिकता, अर्थ का सामाजिक उपभोग तथा अर्थ का सामाजिक प्रतिमानों में समावेश आर्थिक मूल्यों को सामाजिक मूल्य में ही सम्मिलित करने को प्रेरित करता है, अतः जैविक मूल्यों में हमने केवल शारीरिक मूल्यों को ही समाविष्ट किया है, जिनमें स्वरक्षा के साथ ही काम-तुष्टि भी सम्मिलित है। अर्थात् मोटे रूप में स्वरक्षा और काम तुष्टि ही जैविक मूल्य है जो जीवनेच्छा भूख और काम मूल - प्रवृत्तियों में उद्भूत और प्रेरित होते हैं।

(च) पराजैविक मूल्य (सामाजिक तथा मानविकी मूल्य)

मनुष्य पशु से भिन्न कल्पनाप्रिय, तर्कशील, चैतन्य प्राणी है जिसके पास भूख, काम, जीवनेच्छा की मूल प्रवृत्तियों के अतिरिक्त सामूहिकता (Gregariousness) आत्मगौरव (Selfessertion), विधायकता (Constructivity) जिज्ञासा (Curiosity) धार्मिक भावना (Religious instincts) भी विद्यमान रहती है। जो कि समाज में उपलब्ध सांस्कृतिक, दार्शनिक, साहित्यिक, धार्मिक कलात्मक आदि अन्याय प्रकार के वातावरण में प्रतिक्रियान्वित होकर मूल्यों का सृजन करती है। पराजैविक मूल्य जैविक मूल्यों की प्राप्ति के बाद ही अस्तित्व में आते हैं। जैसा कि डा० देवराज ने भी कहा है कि "मनुष्य केवल उपयोगिता की परिधि में ही जीवित नहीं रहता। उसमें कुछ ऐसी रुचियाँ भी पाई जाती हैं जो उपयोगिता का अतिक्रमणं करती है, वह बौद्धिक जिज्ञासा तथा सौन्दर्य की भूख से भी पीड़ित होता है और इस प्रकार एक सांस्कृतिक प्राणी के रूप में जन्म लेता है।"[५३]

जीवन-मूल्य के विकास-क्रम में जैविक मूल्यों का स्थाँन पहले आता है। जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के समय जैविक मूल्य साध्यात्मक मूल्य होते हैं, किन्तु इन आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद मनुष्य पराजैविक अपेक्षाओं की ओर आकर्षित होता है और इस स्थिति में जैविक मूल्य साधनात्मक मूल्यों का कार्य करते हुये साध्यात्मक मूल्यों (पराजैविक मूल्यों) की प्राप्ति का साधन मात्र बनकर रह जाते हैं। जैसे एक क्षुधित व्यक्ति के लिए क्षुधा तृप्ति ही साध्यात्मक मूल्य होता है, किन्तु क्षुधा-शंयन के उपरान्त यही साध्यात्मक मूल्य उसके पराजैविक मूल्यों (दार्शनिक, धार्मिक, कलात्मक, साहित्यिक, भावनात्मक आदि) की प्राप्ति के संलग्न होते ही साधनात्मक मूल्य के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। वैसे काम तुष्टि का लक्ष्य केवल जैविक तृप्ति ही नहीं होता, बल्कि वह प्रेम भावना के पराजैविक मूल्य से भी सम्बन्धित होता है। मनुष्य जीवन का लक्ष्य अधिक से अधिक और उच्चतर आनन्द प्राप्त करना है। इसी दृष्टिकोण को लेकर पराजैविक मूल्यों को अधिक प्रधानता दी जाती है।

विश्लेषण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए पराजैविक मूल्यों को भी अन्य दो उप-विभागों में वर्गीकृत किया है - १ सामाजिक और २ मानविकी।

पराजैविक (अ) सामाजिक मूल्य :-

सामूहिक (Gregariousness) सहानुभूति (Sympathy) आदि मूल प्रवृत्तियों के कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति परिवार, राज्य तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं से व्यवहार रखता है और इन व्यवहारों के प्रति निर्मित जीवन दृष्टि ही सामाजिक मूल्यों का निर्माण करती है। मूल चेतना के विकास का दूसरा स्तर व्यक्ति के जैविक स्वरूप से ऊर्ध्वगामी होकर उसकी सामाजिकता तथा संस्कृतिकता एवं आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो जाता है। यही महत्वपूर्ण मोड़ है जहां से मनुष्य पशु से भिन्न होकर अपने विशिष्ट संस्कृति प्रयाण की ओर गतिशील होता है। उपयोगिता की परिधि में घिरे न रहकर निरन्तर उद्विकास की ओर क्रियाशील रहना मनुष्य की प्रकृति प्रदत्त विशेषता है। इसी विशेषता के परिणाम स्वरूप वह जीवनेच्छा, भूख और काम सम्बन्धी प्रवृत्तियों की तुष्टि के अतिरिक्त उसमें विद्यमान अन्य मूल प्रवृत्तियों, सामूहिकता, सहानुभूति, जातीय सुरक्षा एवं सन्तान उत्पत्ति आदि की प्रेरणा से सामाजिकता की ओर अग्रसर होता है। ये ही मूल प्रवृत्तियाँ व्यक्ति की सामाजिकता की आधार होती है। इन्हीं से सम्बन्धित मूल्यों को पराजैविक सामाजिक मूल्य कहा जाता है। व्यक्ति की सामाजिकता उसकी जन्मजात सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति का परिणाम है अथवा यह व्यक्ति के जन्म लेने के बाद अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क से सीखी हुई उसकी क्रमशः विकास क्रियाशीलता का प्रतिफलन है। इस विषय में अलग-अलग मान्यतायें प्रचलित हैं। विलियम मैक्डूगल समस्त मानवीय व्यवहार का आधार उसका मनः शारीरिक स्वरूप मानते हैं। अर्थात उनके सिद्धान्त अनुसार मूल प्रवृत्तियाँ ही प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समस्त मानव व्यवहारों की प्रमुख चालिकायें होती हैं।[५४] इस दृष्टि से सामूहिकता की प्रवृत्ति को मनुष्य में जन्म से विद्यमान होती है उसे सामाजिकता की ओर प्रेरित करती है। इसके विपरीत कतिपय अन्य विद्वानों बाल्डविन, कूले, डिवे, पार्क, बर्गेस, फेरिस आदि ने सामाजिकता को व्यक्ति की वंशानुगत विशेषता होने का विरोध किया है। उनके विश्वासानुसार

व्यक्ति निरे पशुरूप में जन्म लेता है। धीरे-धीरे अन्य लोगों का साथ ही उसमें सामाजिकता की भावना उत्पन्न करता है। इस रूप में सामाजिकता पूर्णतः व्यक्ति की विकासशीलता अथवा पशु से उसके मानवीय सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया पर आधारित होती है न कि प्रवृत्यात्मकता पर।"

सामाजिकता की इन दो भिन्न धारणाओं के अनुसार पराजैविक सामाजिक मूल्यों से अभिप्राय-सम्बन्धी मान्यतायें भी अलग-अलग मिलती हैं। सामाजिकता को मूल-प्रवृत्तियों से सम्बद्ध करने वाली धारणा के अनुसार सामाजिक मूल्यों का अभिप्राय उन जीवन दृष्टियों से होता है जो सामूहिकता, जातीय-सुरक्षा, सहानुभूति तथा संतानोत्पत्ति आदि मूल-प्रवृत्तियों की संतुष्टि के लिए उपयुक्त एवं अनिवार्य होती है। सामाजिकता को व्यक्ति की विकासशीलता की प्रक्रिया का परिणाम मानने वाली विचारधारा के अनुसार सामाजिक मूल्यों का आशय उन प्रतिमानों से होता है जो मनुष्य की सामाजिकता के उत्थान हेतु आवश्यक होते हैं। पहले मत में सामाजिक मूल्य सामाजिकता के संरक्षण का कार्य करते हैं तो दूसरे मत में सामाजिकता को विकसित करने का दोनों ही सिद्धान्तों में सामाजिक मूल्यों को मानवीय विकास के आधारभूत घटकों के रूप में स्वीकार किया गया है। इस दृष्टि से सामाजिक मूल्य हर रूप में एक सुसंस्कृति एवं विकासोन्मुखी समाज की वे महत्वपूर्ण जीवन-दृष्टियाँ होती है जिन्हें व्यक्ति को अपने विकास हेतु अपनाना ही होता है।

सामाजिकता की जटिलता में उत्तरोत्तर वृद्धि होते रहने के कारण व्यक्ति की अन्न, वस्त्र आवासादि एवं कामेच्छा सम्बन्धी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति भी सामाजिक प्रक्रिया के माध्यम से ही तुष्ट होने लगी है। इसलिए जैविक मूल्यों का निर्वाह भी अब समाज पर निर्भर हो गया है। वस्तुतः सामाजिक मूल्यों का महत्व एक और जैविक मूल्यों के निर्वाह की दृष्टि से है, तो दूसरी ओर पराजैविक मानविकी मूल्यों की प्राप्ति की दृष्टि से भी है।

प्राचीन भारतीय जीवन-दर्शन में 'पुरुषार्थ' की धारणा के अन्तर्गत व्यक्ति को आध्यात्मिक चरम मूल्य मोक्ष की प्राप्ति हेतु ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ तथा वानप्रस्थ आश्रमों को पार करना होता है। इसलिए मोक्ष प्राप्ति के पहले सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति आवश्यक मानी गई

थी। इस रूप में व्यक्ति की चेतना के उद्विकास के लिए प्राचीन भारत में भी सामाजिक मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान समझा गया था।

पाश्चात्य चिन्तन में मार्क्स का द्वन्दात्मक भौतिकवादी दर्शन एक सामाजिकता परक दर्शन है; जिसमें व्यक्ति के विकास के लिए सामाजिकता को आवश्यक माना गया है। मार्क्स के अनुसार व्यक्ति की आदर्श स्थिति एक संघर्ष-हीन समाज के सामाजिक होने में ही है। इस वर्ग-भेद की समाप्ति तथा वर्ग संघर्ष का अन्त सामाजिक मूल्यों के संचरण में ही हो सकता है।

वस्तुत: सामाजिक मूल्य सामाजिकता के उत्थान के लिए आवश्यक शक्ति का कार्य करते है। जैविक आवश्यकताओं से तुष्ट होने पर भी एक भीड़ सामाजिक मूल्यों के अभाव में व्यक्ति की अवनति एवं उसकी पाशविकता का कारण बन जाती हैं। क्षुधा-तृप्त पशु सामाजिक मूल्यों के बोध के अभाव में न तो किसी प्रकार के व्यवस्थित समाज का संगठन ही करता है और न अपना सांस्कृतिक विकास ही।

मनुष्य का विकास उसकी सामाजिकता का विकास कहा जा सकता है। "काल-पथ पर संक्रमणशील मानव समुदाय में नानाविध संघों की सृष्टि हुई।"[५६] अकेले व्यक्ति से परिवार, कुटुम्ब, कबीले, ग्राम, छोटे राज्य, बड़े राष्ट्र-मण्डल तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों आदि का क्रमिक विकास मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति के विकास का ही द्योतक है। 'बसुधैव कुटुम्बकम' का दर्शन इस रूप में मनुष्य के सामाजिकता के विकास का चरम बिन्दु है। प्राचीन भारतीय समाज में सामाजिक मूल्यों की गरिमा को अनुभूत किया गया था इसीलिए तो 'बसुधैव-कुटुम्बकम' का समाज दर्शन अस्तित्व में आ सका। आधुनिक युग में पुन: सामाजिकता का विकास एक ओर समस्त पृथ्वी को एक परिवार के रूप में समेट लेने की स्थिति तक पहुंच चुका है; किन्तु दूसरी ओर इस विकास में सामाजिक एवं राष्ट्रीय संकीर्णता के कारण विभिन्न समाजों एवं देशों में पारस्परिक संघर्ष होना सामाजिक मूल्यों के निर्वाहाभाव का ही सूचक है। विश्व में जब-जब भी सामाजिक मूल्यों का विघटन शुरू हुआ है, मनुष्य ने अपने ही सामाजिक संगठनों का संहार

किया है और वह पुनः सामाजिक मूल्य बोध मूल्य पाशविकता की स्थिति में पहुंच गया है। आधुनिक वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों के सम्पन्न युग में सामाजिक मूल्यों का ह्रास विश्व के लिए भयंकर विध्वंसात्मक स्थिति को जन्म दे सकता है। ऐसी स्थिति को टालने के लिए सामाजिक मूल्यों की विद्यमानता एवं संरक्षण अत्यावश्यक है क्योंकि ''सामाजिक मूल्य सामाजिक जीवन के रक्षा-कवच होते हैं।''[१७]

(ब) पराजैविक -मानविकी मूल्य :-

मनुष्य की कतिपय पिपासाओं का सम्बन्ध उसके भावनात्मक तथा वैचारिक स्तर से होता है। भावना और विचार में दोनों मनुष्य के शारीरिक और सामाजिक व्यक्तितत्व के चारों ओर एक तीसरे व्यक्तितत्व के वृत्त का निर्माण करते हैं। यह वृत्त अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म, कलात्मक और वायवीय होता है। इस वृत्त की सीमा से आने वाले मूल्यों को मानविकी तथा आध्यामिक मूल्य कहा जाता है। इन्हीं को सामान्य शब्दावली में दार्शनिक, धार्मिक, शैक्षणिक, नैतिक, कलात्मक, साहित्यिक आदि मूल्यों के नाम से अभिहित किया जाता है।

प्राचीन भारतीय मूल्य धारणा में मानविकी मूल्यों को साध्यात्मक मूल्यों के रूप में प्रस्थापित किया है। 'चतुर्वर्ग' धारणा के अन्तर्गत मोक्ष की स्थिति चेतना की सर्वोच्च स्थिति है इसीलिए उसे साध्यात्मक मूल्य तथा धर्म, अर्थ और काम को साधनात्मक मूल्यों के रूप में स्वीकार किया गया है। भक्ति आन्दोलन के अन्तर्गत धार्मिक भावना को भी साध्यात्मक मूल्यों के रूप में स्वीकृति दी गई है। अरविन्द दर्शन के अनुसार 'अति-मानस' (सुपरमाइण्ड) की स्थिति भी मानविकी मूल्यों के विकास की चरम स्थिति को ही द्योतित करती है।

उपर्युक्त वर्गीकरण यह तो स्पष्ट करता ही है कि सर्वप्रथम जैविक मूल्यों का निर्माण होता है और उसके बाद पराजैविक का, साथ ही यह तथ्य भी प्रकट करता है कि मानव के सांस्कृतिक विकास में भी सर्वप्रथम जैविक मूल्यों को स्थान मिलता है और उसके बाद पराजैविक मूल्यों को। इस दृष्टि से यह वर्गीकरण वैयक्तिक चेतना तथा सामाजिक व सांस्कृतिक चेतना दोनों के विकास के समान्तर ही विकसित किया गया है और यही इसकी वैज्ञानिक सांस्कृतिकता है।

संदर्भ सूची

१- संस्कृत हिन्दी कोष - वामन शिवराम आप्टे पृष्ठ ८१२

२- हिन्दी विश्व कोष - सं० श्री नागेन्द्र नाथ बसु, पृष्ठ २३८-२३९

३- The Social Structure of Values - R. K. Mukerjee, P. 21

४- Philosophy of values - the cultural Heritege of India M. Hirriyana. P. 645

५- हिन्दी साहित्य कोष-भाग १ - प्रधान सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ ६०४

६- डा० देवराज संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृष्ठ १६०

७- Fundamentals of Ethics, W.M. unban, P. 16

८- "...........That alone is ultimataly and intrinsically valuable that leads to the development of selves or to self realization." Fundamentals of Ethics W.M. Urban, P. 18

९- The intuitive philosophy - Rohit Mehta, P. 39

१०- उद्धत - आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, डा० हुकुम चन्द्र राजपाल, पृ० ६१

११- कुमार विमल - आलोचना (पत्रिका) अक्टूबर-दिसम्बर १९६७, पृ० ६४

१२- हिन्दी विश्व कोष, खण्ड ९, पृ० ३६५-६६१

१३- "The philosophar who is engaged in that branch of philosophy known as "theory of value" is distinguished by the fact that the word which is most careful about is the word 'value'." Contemporary philosophic problems - R.S. Perry, p. 488

१४- "The Indian scheme of values recognizes four human ends (purusharthas). The are : Wealth (Lrtha) Pleasure (Kama) Rightiousness (Kharma) and Perfection spiritual freedom (Moksba.)"

The Indian mind ed. C.A. Moor, p. 153

उद्धत - आधुनिक काव्य में जीवन-मूल्य, डा० हुकुमचन्द राजपालए पृ० १८

१५- हिन्दी महाकाव्य : सिद्धान्त और मूल्यांकन, देवीप्रसाद गुप्त, पृ० २३

१६- भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति, श्री गौरीशंकर भट्ट, पृ०२६१

१७- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृ० १७६

१८- पूर्व पश्चिम भारतीय जीवन, डा० राधाकृष्णन, पृ० ९

१९- हिन्दी विश्व कोष, खण्ड ९, पृ० ३६५ व ६६

२०- उद्धृत आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य डा० हुकुमचन्द्र राजपाल, पृ० ५०

२१- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृ० ३६६

२२- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृ० ३६६

२३- आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, डा० हुकुमचन्द्र राजपाल, पृ० ७०

२४- स्वातन्त्रायोत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) उदयपुर विश्वविद्यालय, श्री हेमन्त कुमार दानेरी

२५- उद्धत - सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, श्री रविन्द्रनाथ मुकर्जी, पृ० ८६

२६- Society : Introductory Analysis, Maciver and page, Macmillan and Co. London, 1953, p. 95

२७- समाज का मनोविज्ञान, गिन्सवर्ग, पृ० १६

२८- सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, प्रो० रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, पृ० ९३

२९- समाज मनोविज्ञान, प्रारम्भिक अध्ययन, डा० एस०एस० माथुर, पृ० १३९

३०- सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, प्रो० रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, पृ० १७८

३१- सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, प्रो० रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, पृ० १५३

३२- Dictionary of Sociology and related sciencer, hanry pratti fairchild and others P.18

३३- सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा, प्रो० रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, पृ० १४७

३४- Outlion of Social phychology. S.G. Hulyalkar and others. P. 69.

३५- समाज मनोविज्ञान, डा० एस०एस० माथुर, पृ० ११२

३६- A handbook of Social psychology. K. Young. p. 56

३७- उद्धृत समाज मनोविज्ञान (प्रारम्भिक अध्ययन) डा० एस०एस० माथुर, पृ० १९५

३८- Proceeding of the American Socialogical Society, 1922 - Ogburn W.F. p. 17
उद्धृत समाज मनोविज्ञान (प्रारम्भिक अध्ययन) डा० एस० एस० माथुर, पृ० १९५१

३९- संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ० ६५१

४०- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृ० १७७

४१- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृ० १७७

४२- ऐतिहासिक भौतिकवाद पर एक दृष्टि व पोदो से तनिक तथा अ० स्पीकिन, पृ० १२६

४३- ऐतिहासिक भौतिकवाद पर एक दृष्टि व पोदो से तनिक तथा अ० स्पीकिन पृ० १३१-३२

४४- The Social Structure of values - Radha Kamal Mukerijee. p. 365

४५- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृ० ३६६

४६- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृ० ३६६

४७- आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, डा० हुकुमचन्द्र राजपाल,य पृ० ७०

४८- स्वातन्त्रायोत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) उदयपुर विश्वविद्यालय श्री हेमन्त कुमार पानेरी

४९- Fundamentals of Ethics, W.M. Urban. p. 164

५०- An introduction to Social Psychology metheun and Co. Ltd. London, 1960 - William Mcdougall, p. 17

५१- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डा० देवराज, पृ० १६५

५२- उद्धत- सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा - प्रो० रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, पृ० ६

५३- "..........Human nature is not inherited but developed insociety. Social heritage, does not reach him through the germ-plasm the mediamis communication and social interation taking place through contact."

Socialgical Papers and Essays Kewal Motwani. p. 33

५४- आदित (विशेषांक) १५ अगस्त, १९५१, पृ० ८४

द्वितीय अध्याय

आधुनिक साहित्य में शिवानी के कृतित्व का स्थान

(क) शिवानी का जीवन परिचय

(ख) शिवानी के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय

(ग) युगीन परिवेश और शिवानी की रचनाधर्मिता

आधुनिक साहित्य में शिवानी के कृतित्व का स्थान

कल्पित लोक में असम्भव, अंधविश्वासों, रुढ़ियों तथा चमत्कारों के स्थान पर जब से धरती पर वैज्ञानिक सत्य को स्वीकारा गया, तब से साहित्य में आधुनिक काल का आविर्भाव हुआ। साहित्यिक काल विभाजन की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल (जिसका सम्बन्ध काव्य से अधिक है, किन्तु परिवेश का यथार्थ जितना काव्य को प्रभावित कर रहा था, उतना साहित्य की अन्य काव्येतर विधाओं को भी) भी निम्न प्रकार से विभाजित है – पहला युग भारतेन्दु युग, दुसरा युग द्विवेदी युग, तीसरा युग छायावाद काल चौथा प्रगतिवाद और इसी से प्रयोगवाद, नकेनवाद इत्यादि आन्दोलनों से गुजरती हुई साहित्यिक यात्रा समकालीन साहित्य के रूप में चिन्हित है। हिन्दी का कथा साहित्य बहुत पुराना नहीं है। उपन्यास साहित्य तो और भी नया है महिला लेखिकाओं ने कुछ उदाहरणों को छोड़कर आधुनिक काल के पूर्व उल्लेखनीय भूमिका नहीं निभाई। उपन्यास और कहानी के माध्यम से अंतरंग और बहिरंग सन्दर्भ अधिक स्पष्टता और प्रभावन्विति से व्यक्त होते हैं। परिवेश और मानसिक स्थितियों की सशक्त अभिव्यक्ति कथा साहित्य के माध्यम से हो सकी। सुख-दुख, हर्ष-विषाद, अन्तर्द्वन्द्व, अभिलाषा, महात्वाकांक्षा, उमंग आदि अन्तरंग चित्रणों के लिए नारी पात्रों को पुरुष के हाथ में थमी लेखनी का सहारा था, किन्तु आधुनिक काल में नारियों ने स्वयं कलम पकड़कर अपने युगीन सन्दर्भो, स्वयं के भोगों यथार्थ अपने बौद्धिक तथा भावनात्मक सत्यों का लोकार्पण स्वयं प्रारम्भ किया। ऊषा देवी मित्रा, कृष्णा सोवती, निरुपमा सेवती, ऊषा प्रियम्वदा, ममता कालिया, गौरापन्त शिवानी, मेरुनिन्नशा परवेज, शशिप्रभा शास्त्री, क्षमा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा कार्तिक, मृदुला गर्ग, सुधा गोयल, सोमती अय्यर, मन्नू भण्डारी, मृणाल पाण्डेय आदि नारी कथाकारों ने नारी की सोच और संवेदना को वाणी दी। इन सभी रचनाकारों का अपने-अपने ढंग से महत्वपूर्ण स्थान

है। भाषा शैली कथ्य विमर्श आंचलिकता अभिव्यक्ति के लिए नये-नये तेवर नये-नये बिम्ब विन्यास, विविध चरित्रों और परिवेश का यथार्थभाषी प्रस्तुतिकरण नवीन जीवन मूल्यों का सृजन तथा विभिन्न मूल्यों के क्षरण की विशेषताओं के कारण शिवानी का कथा साहित्य अपने युग की चर्चित विवेचित एवं महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि तत्सम शब्दावली की आवश्यकता तथा कहीं-कहीं दुरुह वाक्य विन्यास कतिपय आलोचकों को खटकते हैं। लेकिन जटिल कथ्य को आकार देने के लिए शिवानी की यही तो वह अदा है जो उन्हें अन्य कथाकारों से अलग करती है। वस्तुत: शिवानी ने अपने कृतित्व के माध्यम से न केवल अपने युग के सत्य को अभिव्यक्ति दी है प्रत्युत कल्याण मूलक तात्विक संयोजना से अपनी कृतियों को सत्यम् शिवम् सुन्दरम से अनुस्यूत करके एक श्रेष्ठ लेखकीय परम्परा को पुरस्तात किया है। कम शब्दों में शिवानी की तुलना सिर्फ शिवानी से की जा सकती है।

(क) शिवानी का जीवन परिचय

करोड़ों हिन्दी पाठकों के बीच अपने कथा-साहित्य, रेखाचित्र, संस्मरण तथा अन्य विविध रचनाधर्मिताओं के वैशिष्ट्य के कारण शिवानी को लोकप्रिय स्थान प्राप्त है।

'शिवानी' का पूरा नाम गौरा पन्त उपाख्य शिवानी है। शिवानी सन् १९२३ में सौराष्ट्र के राजकोट नगर में जन्मी इनकी माता गुजराती की विदुषी थी। उन्होंने गुजराती साहित्य भी पढ़ा, जिसका प्रभाव उनके लेखन पर पड़ा, इनके पिता अंग्रेजी के विद्वान थे। घर में पठन-पाठन का वातावरण था उनके दादा जी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे, उन्होंने अपने परिवार में कठोर सनातनी पक्ष देखे थे। शिवानी का बचपन अपने दादा जी के साथ बनारस में बीता। मदन मोहन मालवीय उनका बहुत सम्मान करते थे तथा उन्हें अपने हाथ के कते सूत के बने वस्त्र भेंटस्वरूप दिया करते थे।

उनकी शिक्षा-दीक्षा पंडित मदन मोहन मालवीय की सलाह पर शान्ति निकेतन में हुई। उनके शान्ति निकेतन में बिताये गये दिन उनके जीवन के महत्वपूर्ण दिन थे। उनके जीवन पर महान साहित्यकार एवं उनके गुरू रविन्द्रनाथ ठाकुर का अत्यधिक प्रभाव था। उनके सान्ध्यि में नौ वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की गुरू देव उन्हें 'गौरा' कहकर पुकारते थे। उन्होंने धर्मयुग में १९५१ में एक छोटी कहानी - 'मैं मुर्गा हूँ' लिखी थी। जिसमें उन्होंने अपना नाम 'शिवानी' दिया था। उनकी पढ़ाई बांग्ला माध्यम से हुई, उन्होंने बांग्ला के प्राय: सभी स्वानामधन्य लेखकों को पढ़ा जिसके कारण उन पर बांग्ला का प्रभाव पड़ा।

'शिवानी की पहली रचना तब छपी जब वह मात्र १२ वर्ष की थीं। तब अल्मोड़ा से 'नटखट' नामक पत्रिका में छपी थी। मूलत: उनका मायका और ससुराल दोनों ही अल्मोड़ा में है। बचपन का काफी समय यहां गुजरा फिर पढ़ाई-लिखाई के दौरान तथा शादी के बाद भी आना-जाना लगा रहा। मल्ला कसूर स्थित उनके मायके का घर और पूर्वी पोखरवाली

में ससुराल का घर है। उन्होंने अपनी पुस्तकों में पहाड़ जिंदगी का सटीक वर्णन किया है तथा वहां के प्राकृतिक सौन्दर्य, वहां की जिंदगी, खान-पान, रहन-सहन, लोकोक्तियों की स्पष्ट छाप उनकी रचनाओं में देखी जा सकती हैं। उन्होंने पहाड़ के त्योहार खासकर होली का वर्णन यथार्थपरक एवं प्रभावशाली ढंग से किया है। उनका व्यक्तित्व सादगी सम्पन्न था। इनकी रचनओं में अद्भुत पठनीयता और सजीवता है। तत्सम् शब्द इनकी रचनाओं में कूट-कूट कर भरे थे साथ ही शान्ति निकेतन में गुरूदेव के सान्निध्य में बीते उनके दिन उनकी रचनाओं में जीवंत हो उठते थे। बांग्ला, संस्कृत, हिन्दी और कुमांयू के शब्द उनकी रचनाओं को अनोखा सौष्ठव देते थे। गुरूदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों के मार्ग निर्देशन में उनका रचनाधर्मी व्यक्तित्व विकसित हुआ था। इनके कई धारावाहिक उपन्यासों पर ऐपिसोड टी०वी० पर भी आये एवं फिल्में भी बनीं, उनके कथा पात्रों में एक प्रबल अविस्मरणीयता एवं दर्शक को बांध लेने का सामर्थ्य था।

विभिन्न रियासतों में रहने के कारण उनका प्रभाव भी इनकी रचनाओं में पड़ा। उनके पति उन्हें बराबर प्रोत्साहित किया करते थे, उन्हें शिवानी पर गर्व था तथा उन्हें आवश्यक सुझाव भी दिया करते थे। पति की मृत्यु के पश्चात उनका लिखना बहुत कम हो गया था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के कहने पर उन्होंने कुछ संस्मरण और रेखाचित्र लिखे थे। वह प्रसंगानुकूल टिप्पणी करती थीं, लेकिन उनकी भाषा-शैली का संतुलन और शालीनता वैभव विचलित नहीं होता था और न वे अपने पात्रों को गरिमा विहीन करती, बड़े धैर्य और ध्यान के साथ उनके चरित्र गढ़े हुये होते थे। शिवानी ने अपनी जीवन काल में अनेक उपन्यास - चौदह फेरे, सुरंगमा, शमशान चंपा, भैरवी, मायापुरी, कृष्णकली, कैंजा, गैंडा, रतिविलाप, उपप्रेती, माणिक, स्वयंसिद्धा, रथ्या, पूतोंवाली, कस्तूरीमृग, पाथेय, अतिथि, कालिंदी, कृष्णवेणी साथ ही अनेक कहानियां करिये छिमा, सती जैसी लोकप्रिय कहानियां एवं अनेक संस्मरण एवं रेखाचित्र लिखे -

एक थी रामरती, सोने दे, यांत्रिक, वातायन, चरैवेति, आमादेरशान्ति निकेतन, सुनहु बात यह अकथ कहानी, झरोखा स्मृति कलश आदि रचनायें प्रस्तुत कीं। इसके अलावा वे अपनी निजी जिंदगी में एक समाज सेवी महिला, दूसरों का दुख-दर्द समझने वाली रहीं हैं। उनकी लेखन शैली इतनी उत्कृष्ट है, कि वह पाठक को जीवंत संसार के रूबरू ला कर खड़ा कर देती है।

कुछ समय अस्वस्थ रहने के पश्चात उनके जीवन का अवसान २१ मार्च २००३ को हो गया। लेकिन वह अपने कृतित्व के माध्यम से अपने पाठकों के हृदय में सदैव जीवित रहेगीं।

(ख) शिवानी के कृतित्त्व का संक्षिप्त परिचय

(अ) वृहद् उपन्यास

(१) चौदह फेरे -

कुमायूंनी आंचलिकता से ओतप्रोत शिवानी के चौदह फेरे उपन्यास का प्रारम्भ ऊँचे नारियल और ताड़ के वृक्षों से घिरे 'नन्दी' नामक वास्तुशिला के अद्भुत उदाहरण से प्रारम्भ होता है। यह प्रासाद 'कर्नल' नामक पटसन के एक बड़े व्यापारी की पत्नी के नाम से कोलकाता में आलीशान प्रासाद के रूप में बनवाया गया। कर्नल ये नाम सेना से प्राप्त पद के आधार पर नहीं बल्कि छहफुटी विराट काया के आधार पर जूट के व्यवसायी को प्राप्त हुआ था। कर्नल के पिता न्यायधीश थे और माता संस्कृत के विख्यात विद्वान की पुत्री इस दम्पत्ति को पुत्र प्राप्ति शिव आराधना से हुई थी। अतः इसका नाम शिवदत्त रखा गया। यह युग कुमायूनी समाज के संस्कारों की जटिल बेड़ियों में जकड़े हुये था, लेकिन शिवदत्त के पिता जज साहब प्रगतिशील और महत्वाकांक्षी थे। उन्होंने शिवदत्त को इण्टर कराने के बाद एक ब्राह्मण रसोइये के साथ शिक्षा के प्रमुख केन्द्र इलाहाबाद भेज दिया। संध्या पूजन के नियमों को निभाता शिवदत्त इलाहाबाद में एम०ए० कर बकालत पढ़ने लगा। कुमायूं के अंग्रेज कमिश्नरों से जज साहब का वंशानुक्रम से मैत्री का क्रम चला आ रहा था। एक दिन कमिश्नर साहब की दृष्टि नवयुवक शिवदत्त पर पड़ गई और उन्होंने जज साहब से कहा - 'पाण्डेय क्यों बकालत पढ़ा कर बेटे का जीवन बिगाड़ रहे हो? देखते नहीं लड़का व्यवसाय में लगाने पर चमक उठेगा। कलकत्ते का बिल्सन मेरा मित्र है। एक चिट्ठी लिख देता हूं तुम्हारे लड़के को बना देगा।'[1] कमिश्नर साहब की लिखी इस चिट्ठी ने शिवदत्त पाण्डेय का भाग्योदय कर दिया। बिल्सन साहब की देखरेख में शिवदत्त पाण्डेय जूट का सफल व्यापारी बनता चला गया। यहां तक कि बिल्सन साहब के स्वदेश गमन पर शिवदत्त भी उनके साथ विलायत गया। बिल्सन साहब की मृत्यु के उपरान्त

शिवदत्त स्वदेश लौटा और बिल्सन साहब के जूट के व्यापार को संभाल सहेज कर उसे अति विस्तृत रूप देने में सफल हुआ। वैसे विलायत में बिल्सन साहब की बेटी अत्याधुनिका पैट्रिशिया शिवदत्त को भा गई थी। बिल्सन साहब भी जानबूझ कर दोनों को निकट पहुंचाने का अवसर दे रहे थे। लेकिन कठोर कुमायूंनी संस्कारों में जकड़ा शिवदत्त पैट्रिशिया को पत्नी के रूप में स्वीकारने की हिम्मत न कर सका और स्वदेश आकर पारम्परिक ग्राम्य वाला नन्दी से उसका विवाह कर दिया गया। नन्दी का गौर और सुगठित शरीर विदेशी चपल तरुणियों की तुलना में शिवदत्त को फीका ही लगा। विदेशी सभ्यता से परिचित शिवदत्त का उन्मुक्त रतिविलास नन्दी को बहुत असभ्य लगता। नन्दी अपने कानों में अंगुलियों लगा देती तथा शिवदत्त पाण्डेय बर्फ की शिला सी ठन्डी नन्दी को छुट्टियां खत्म होने से पहले ही छोड़कर भाग जाता। धीरे-धीरे कर्नल की नन्दी से दूरी बढ़ती चली गई।

स्वसुर के निधन के उपरान्त नन्दी शहर में पति की कोठी जा पहुंची। कर्नल की यह बहुत नागवार गुजरी साथ में उसकी एक मात्र सन्तान अहल्या भी थी। पिता के घर में मां का अनादर देख नन्ही अहल्या को बहुत बुरा लगा धीरे-धीरे कर्नल ने अहल्या को नन्दी से दूर करके उसे पढ़ने के लिए बोर्डिंग में डाल दिया। जहां शनैः शनैः उसका विकास होने लगा और नन्दी गुरूदीक्षा लेकर साधन भजन में लीन रहने लगी और एक दिन पति गृह छोड़कर गुरू आश्रम चली गयी। और घर के सभी व्यक्ति स्वतंत्र हो जाते हैं। कर्नल भी मलिका जिसके कि कर्नल के साथ अवैध सम्बन्ध था उसके यहां आती जाती रहती है। अहल्या पहाड़ शादी में जाती है जहां उसे एक युवक मिलता राजू, जिसे वह राजू को मन ही मन पसन्द करने लगती है। अहल्या शादी के बाद अपनी मां को देखने आश्रम भी जाती है वहां से लौट कर जब आती है। मालिका घर और शहर छोड़कर जा चुकी होती है। कर्नल अहल्या का विवाह करना चाहता है। अहल्या बसन्ती राजू के साथ बसन्ती की नानी के यहां जाती और उसकी नानी उसे अपने राजू की बहू समझती है। उसके बाद कर्नल अहल्या के दोस्तों से उसे दूर रखना चाहता है जिससे

उसकी शादी सर्वेश्वर के साथ तय हो सके। राजू युद्ध में घायल हो जाता है और सभी समझते हैं कि वह-दुश्मन की कैद में मर गया। अहल्या बहुत दुखी होती है और शादी नहीं करना चाहती। बाद में पता चलता है कि राजू जिन्दा है इधर शादी की तैयारियां चल रही होती है और अहल्या ताई के कहने पर घर छोड़कर राजू के पास भाग जाती है और अन्त में उसकी शादी राजू से हो जाती है।

(२) मायापुरी -

मायापुरी उपन्यास आज के अर्थ प्रधान युग में टूटते बनते सम्बन्धों की कहानी है इस उपन्यास की प्रमुख पात्र शोभा जो कि लखनऊ में अपने परिवार के साथ रहती है उसके परिवार में तीन भाई मां, पिता थे। पिता की मृत्यु हो गई और वे लखनऊ से गांव वापस आ जाती है। तब शोभा बी०ए० पास कर चुकी थी। गांव में तीनों भाई पढ़ने के लिए स्कूल जाने लगते हैं। शोभा को माँ की सहेली गोदावरी शोभा के अपने पास पढ़ने के लिए लखनऊ बुला लेती है। गोदावरी के परिवार में उनके पति बेटी मंजरी और बेटा सतीश थे। जो विदेश में पढ़ता था। बेटी लखनऊ में ही बेटी के साथ ही शोभा भी पढ़ने जाने लगती है। उनके घर गृहस्थी का सारा काम संभाल लेती है उसके स्वाभाव से सभी बहुत प्रसन्न थे। सतीश का रिश्ता भारत के महिमामय भावी राजदूत के पुत्री सविता से विवाह तय हुआ था। तिवारी जी ने ही सतीश को विदेश पढ़ाई के लिए भेजा था और उनके कर्ज को चुका कर एक प्रकार से उन्हें उस रिश्ते के लिए मजबूर कर दिया। जब ने सतीश सविता को देखा था तब वह दुवली पतली सी थी किन्तु अब कुछ ज्यादा ही हृष्टपुष्ट हो गई थी। और उसका रंग देखने वालों की आंखों को चौधियां देता था। सतीश शोभा को पसन्द कर उससे ही शादी करना चाहता है किन्तु सीधे साधे जनार्दन जी और गोदावरी तिवारी जी को न नहीं कह सके और शोभा एम०ए० की परीक्षा देकर चली गई और सतीश, सविता का विवाह हो गया। इधर मंजरी और सतीश के दोस्त अविनाश का विवाह हो जाता है।मंजरी के तीनों भाई हैजे की चपेट में आकर काल का

ग्रास बन जाते हैं। इस सदमें से माँ पागल हो जाती है शोभा फिर नौकरी ढूढ़ने अपने रिश्ते के मामा केदारदत्त के पास जाती है वह उसे ईस्टलिन में एक महारानी के यहां नौकरी दिलवा देते हैं रानी जी बहुत अच्छी थी वह शोभा का बहुत ख्याल रखती थी। एक दिन नैनीताल में शोभा ने सतीश सविता को देखा और साथ ही अविनाश और मंजरी को भी। सतीश ने बताया कि सविता कैसे उसके पिता के एक शिष्य मदन पर उसकी बड़ी कृपा है। घूमना-फिरना होता है जिसने सतीश की नजर में उसे क्षुद्र और निर्जीव बना दिया था। शोभा से सतीश मिलता है और उसे बताता है कि वह फिर (विदेश) काबुल जा रहा है वह उससे विदा ले चला जाता है और रास्ते में वायुयान दुर्घटना में बुरी तरह घायल हो जाता है। शोभा पागलों की तरह रानी जी को साथ लेकर अस्पताल पहुंचती है। रानी जी को वापस भेज देती है और मंजरी अविनाश के साथ रुक जाती है।रात भर सब जागते रहते हैं।. तिवारी जी कहते हैं कि सविता गर्भवती है और वह नहीं आ सकती। हमने उसे बताया कि वह थोड़ी चोट है सुबह डा० उन्हें बताता है कि वह सतीश को नहीं बचा पाये सभी बाहर निकल आते हैं। शोभा सतीश के मृत शरीर पर अचेत पड़ी थी।

(३) भैरवी -

इस उपन्यास में नायिका चन्दन जब दो वर्ष की थी तब उसकी मां राजेश्वरी विधवा हो गई थी। राजेश्वरी ने अपनी सुन्दरी पुत्री को बड़े यत्न से पाला था। एक दिन हलद्वानी में बर्फवारी हुई और दस-बाहर लड़के भटक कर वहां शरण मांगने आ पहुंचे। उनमें एक लड़की भी थी उन्हीं में से एक लड़का विक्रम जो पर्वतारोही दल के साथ आया था और उसकी बहिन सोनिया वह चंदन को पसन्द कर शादी कर लेता है। और दोनों हनीमून मना लौट आने के बाद नौकरी पर जाने लगता है तो चंदन को भी अपने साथ ले जाता है। ट्रेन में चार-पांच फौजी छोकरे बड़ी निर्लज्ता से शराब पीकर उसके पति को घायल कर नरव्याघ्र वन जाते हैं और वह

खूंखार शेरनी बन उन्हें पराजित नहीं कर पाती फिर वह चलती ट्रेन से कूद जाती है। यह सोच कि अब उसका कलुश केवल मृत्यु ही मिटा सकती है। वह शमशान में गिरती है जहां से तांत्रिक गुरू उसे उठा लाता है, वह ठीक हो जाती है और गुरू जी उसे भैरवी नाम देते हैं। सभी उसे भैरवी ही बुलाने लगते हैं। वह सिद्धयोगिनी माया दी और चरन के साथ रहने लगती है और भागने की चेष्टा नहीं करती है चरन माया दी गुरूजी चिलम गांजा पीते हैं। एक दिन चरन खैपा जो शमशान में चाय की दुकान किये था उसके साथ भाग जाती है और माया दी को गुरू जी का पाला हुआ. नांग डस लेता है। जिसकी उनकी मृत्यु हो जाती है। गुरू जब माया दी को शमशान ले जा रहा था तो उस अघोरी तांत्रिक ने कहा कि तुम डरोगी तो नहीं? उसकी आंखों में मोह दृष्टि के साथ स्नेह झलका, चंदन अज्ञात आशंका के भय से वहां से भाग आती है और अपने घर पहुंचती है। वह अपने पति से मिलती है उसका पति उसे पागलों की तरह बाहों में भर लेता है। वह उसे आज भी प्रेम करता है वह तो समझता था कि चंदन की मृत्यु हो चुकी है पर उसे पाकर बहुत खुश होता है। चंदन को पता चलता है कि विक्रम की शादी दर्शन से हो चुकी है और वह उसके पुत्र की माँ बन चुकी है। वह फिर एक बार फिर उसका रूप पिपासु पति तो उसे मांफ कर देता है, किन्तु उसकी अर्न्तात्मा उसके पैरों में बेड़ियां डाल देती है। फिर वह एक बार अनजान राह पर निकल पड़ती है।

(४) शमशान चम्पा -

शमशान चम्पा शिवानी द्वारा लिखित उपन्यासों की श्रृंखला में से ही एक सुन्दर नवयौवना की हृदय को छू लेने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका चम्पा है उसकी मां भगवती बीमार है उसे मृत्यु धीरे-धीरे मार रही है। धरणीधर सस्पेंशन के बाद भगवती के दाम्पत्य में जीवन में दरार आ चुकी थी। पति की विलासिता कम वेतन के बावजूद ठाठ और उसके अनुचर आज उसके विपक्ष में गवाही दे रहे थे। छोटी बेटी जूही तनवीर नाम के लड़के को राखी बांधती है और बाद में उसी से विवाह कर अफगानिस्तान और वहां से पाकिस्तान चली

जाती है। वहां उसके श्वसुर राजदूत थे। धरणीधर की मृत्यु के पश्चात उसके फंड में ज्यादा रु० नहीं बना था, घर बेचकर भागवती और चम्पा शहरसे दूर मिस्टर सेन गुप्ता के क्लीनिक में काम करने लगती है। मि० सेन गुप्ता ने शर्त रखी थी कि मिसेज सेन गुप्ता कम्लेश्वरी की रात आधी रात में कभी भी तबियत खराब हुई, तो उन्हें देखने कोठी जाना पड़ेगा। चम्पा की सहायक डाक्टरनी मिनी थी जो कि उसका बहुत ध्यान रखती थी। मि० सेन गुप्ता के एक उदण्ड सरचढ़ी बेटी थी, मयूरी एक दिन वह अपनी सहेली का गर्भपात करवाने के लिए चम्पा को बुलाती है चम्पा उसे देखकर हतप्रभ रह जाती है, क्योंकि वह कोई और नहीं स्वयं उसकी छोटी बहिन जूही थी। जूही कैबरे नर्तकी बन चुकी थी, जब वह वापस मयूरी के साथ जा रही थी तभी उसका एक्सीडेन्ट हो गया और मयूरी पिता सहित वह मृत्यु को प्राप्त हो गई। चम्पा मिनी के कहने पर नौकरी छोड़कर भाग रही थी तभी रास्ते में उसकी तबियत खराब हुई और उसे सहारा दिया उस व्यक्ति ने जिससे उसकी रुक्की बुआ ने शादी की बात जय से की थी वह उसकी देखरेख कर उसे मृत्यु के मुंह से निकाल लाता है। किन्तु पिता को यह शादी मंजूर नहीं थी वह उसके पास जाकर बहुत उल्टा सीधा कहते हैं और उसे अपने बेटे से शादी न करने को कहते हैं नहीं तो वह आत्महत्या कर लेंगे और दोष उसके सर होगा। मयूरी का माँ कमलेश्वरी पेशेदार कत्थक की नर्तकी की पुत्री थी और उनके गुरू केनाराम थे। वह कहती थी कि वे हमें हर विपत्ति में बचाते हैं उन्होनें अपनी चम्पा के नाम सम्पत्ति कर दी। चम्पा की मां को क्षय रोग हो गया और वे पहाड़ चली गयी थीं। अन्त में चम्पा ने भी अपने हाथ में लिख दिया श्री श्री गुरू केनाराम की अधम दासी.... !"

(५) सुरंगमा –

इस उपन्यास की नायिका सुरंगमा मंत्री जी के घर नौ बजे सुबह मंत्री जी की बेटी के ट्यूशन की बात करने पहुंचती है, यह ट्यूशन उसे उसकी सखी मीरा के पिता ने

दिलवाई थी। उसी की बात करने वह आई थी। दिनकर का पीए उसे दिनकर से मिलवाता है व दिनकर के शिष्ट व्यवहार से सुरंगमा प्रभावित होती है, किन्तु उनकी पुत्री से मिलने के बाद वह खुश नहीं होती। फिर भी अन्ततः वह मंत्री जी की पुत्री को पढ़ाने के लिए राजी हो जाती है।

सुरंगमा बैंक में नौकरी करती है सुरंगमा की मां राजलक्ष्मी राजा प्रबोधरंजन राम की राजकन्या थी। वह बड़ी गौहरजान नाना की गर्लफ्रेंड थी। प्रबोधरंजन-गौहरजान के लाये म्यूजिक ट्यूटर के साथ लक्ष्मी भाग गई थी। जब वह सत्रह वर्ष की थी। पिता ने पुत्री को ढूढने की बहुत चेष्टा की पर वह नहीं मिली। वह गजानन जोशी के साथ गोविन्दपुरवा में रह रही थी। कुछ दिनों बाद वह राजलक्ष्मी के साथ मारपीट करने लगता है, एक दिन शराब पीकर वह पीटता है तो वह खिड़की से कूट कर भागती है और रेल की पटरी पर आत्महत्या के उद्देश्य से दौड़ती है, उस समय रौबर्टम्यूरी नामक एक ईसाई युवक बचा लेता है और उसे अपने घर ले जाता है। वह अकेला रहता था इसलिए उसे अपनी बहन बैरोनिका के पास छोड़ आता है। उसे पता चला है वह मां बनने वाली है। बैरोनिका नर्स है वह उसे सहारा देती है और चर्च जाकर अपने भाई से उसकी शादी करवा देती है। रौबर्ट अपनी नौकरी पर चला जाता है। कुछ समय पश्चात राजलक्ष्मी के पुत्री होती है उसका नाम सुरंगमा रखती है। रौबर्ट सुरंगमा के पालन पोषण के लिए रुपया भेजता रहता है। जब सुरंगमा पांच वर्ष की थी तब गजानन को किसी तरह से पता चल जाता है, और वह उन्हें अपने साथ जबरदस्ती ले जाता है। इसके बाद गजानन अच्छा बनने का प्रयास करता है। पर राजलक्ष्मी कभी उसे हृदय से स्वीकार नहीं कर सकी।

राजलक्ष्मी स्कूल में पढ़ाती थी उसके बीमारे होने पर भी गजानन उसके रुपया लेकर भाग जाता है। तब सुरंगमा की सहेली मीरा उसकी मदद करती है। सुरंगमा की मां की मृत्यु हो जाती है। तब सुरंगमा बैंक में नौकरी कर लेती है, और साथ ही मंत्री जी की बेटी को ट्यूशन पढ़ाने लगती है। एक बार मिनी के साथ वह पहाड़ घूमने जाती है वहां पर लालवन देखने

जाती है जहां पर वह वर्षा में भीग जाती है। दिनकर उसे बाहों में भर लेता है उन्मन्त अधेंय से उसे चूमने लगता है। मोहक बंधन में सुरंगमा पड़ी रहती है फिर सुप्त विवेक उसे जगा देता है फिर वहां से लौट कर एक दूसरे से कटे-कटे रहने लगते हैं एक दिन दिनकर सुरंगमा को रास्ते में देखकर पागल सा हो जाता है और रात के २ बजे सुरंगमा के घर पहुंच जाता है और फिर यह रोज का नियम बन जाता है। जिसका पता विनीता जी को चल जाता है और वे उसे बहुत भरा-बुरा कहती हैं। सुरंगमा दिनकर के लाये सारे उपहार उन्हें दे देती है और जब वह सबकुछ छोड़कर वहां से जाना चाहती है तो अंधेरे में एक गठरी से टकराती है जब पास जा कर देखती है तो वह गजानन जोशी होता है। इतने दिनों बाद वापस आ जाता है वह नशे में बेहोश पड़ा था। जिसे बुरा होने के बावजूद सुरंगमा बहुत प्यार करती थी।

(६) कालिंदी -

कालिंदी उपन्यास में नारी संवेदना और उसकी नियति का यर्थाथ चित्रण है। इस उपन्यांस की नायिका कालिंदी की मां अन्ना पति द्वारा सताई जाती थी। इससे मायके में रहने लगती है। कालिंदी के तीन मामा देवेन्द्र, महेन्द्र और नरेन्द्र। देवेन्द्र पुलिस में ईमानदार अफसर थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी सो उन्होंने कालिंदी को गोद ले लिया था। उन्हीं के साथ कालिंदी और अन्ना रहती थी। कालिंदी डा० बन जाती है। और उसका विवाह बड़ी मामी शीला की बहिन मीरा ने ही कैनेडा के प्रवासी पर्वतपुत्र से तय कराया था। विवाह के समय दहेज के रु० वर के पिता ने मांगे और कालिंदी को पता चल गया तो कालिंदी ने रुपया नहीं देने दिये और बारात वापस चली गई। फिर देवेन्द्र परिवार सहित अपने पैतृक गांव में जाकर रहने लगते हैं। कालिंदी वहीं अपनी सहेली माधवी के पास रहने लगती है। माधवी का मंगेतर कालिंदी को एक दिन अकेले में छेड़ता है और माधवी को उसके प्रति भड़का देता है तब माधवी भी उसे गलत समझने लगतीहै। फिर वह कुछ दिनों के लिए गांव चली जाती है। उसे देवेन्द्र के मित्र बसंत और उनकी पत्नी लालमामी से बीमारी की हालत में मिलती तथा उनकी देखरेख भी करती है। बसंत का पुत्र पिंटू

कालिंदी को बचपन से चाहता था, किन्तु विवाह न हो पाने के कारण वह विदेश में रह वहीं विवाह कर लेता है और वापस गांव नहीं आ पाता। पिंटू की मां का देहान्त हो जाने के बाद वह आता है, किसी तरह मना कर बसंत मामा को वह उसके साथ भेज देती है और फिर कई बार वह प्रवासी पत्र डालकर कालिंदी से माफी मांगता रहा, किन्तु उसने बिना पढ़े फाड़ दिये। वहीं गांव में कालिंदी की सखी सरोज थी। जिसका पति उसे छोड़ देता है पर कालिंदी के प्रयास से वह अपनी ससुराल जा पाती है। प्रवासी पर्वतीय पुत्र ने कई पत्र डाल कालिंदी से माफी मांगी थी पर उसे बिना पढ़े फाड़ दिये। एक दिन वह स्वयं ही आ पहुंचा, और बताया कि मेरे पिता का देहान्त हो गया है और यकीन मानिये मैं दहेज के विषय में कुछ भी नहीं जानता था पर वह उसके साथ जाने को तैयार नहीं हुई।

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं - देवेन्द्र, शीला, अन्ना, महेन्द्र, नरेन्द्र, कालिंदी, सरोज, पिंटू, बसंत, लालमामी, पिरीमामा, बिरजू, मि० वर्मा और सरोज, प्र० रूद्रदत्त भट्ट, कमलाबल्लभ आदि हैं।

(७) कृष्णकली -

शिवानी अपने जीवन में जिन नगरों परिवेशों और विभिन्न चरित्र के व्यक्तियों के सम्पर्क में आई थीं उन्हीं को लेकर उन्होंने अपनी सृजनधर्मी कल्पना से औपन्यासिक कृतियों का सृजन किया है। उनके यद्यपि सारे ही उपन्यास उनकी यर्थाथ की अनुभूति पर उद्भूत कल्पना के ताने बाने से बुने गये हैं, तथापि कृष्णकली उनका ऐसा उपन्यास है जो प्रकाशित होने के पूर्व ही अतिचर्चित हो चुका था। कृष्णकली के रूप में शिवानी ने एक ऐसा चरित्र अपने पाठकों को दिया है जो इससे पूर्व कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता है। लेखिका ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि कृष्णकली उपन्यास के पीछे वस्तुत: वास्तविक जमीन ही हैं। उनके अनुसार वे 'जब कृष्णकली लिख रही थीं तो सब कुछ अति सहजता से सम्पन्न हो गया था।' इसके लिए उन्हें दिमागी कसरत नहीं करनी पड़ती थी। उपन्यास की पात्र पन्ना ओरछा की नर्तकी मुनीर जान

की परिष्कृत प्रतिकृति है। लेखिका ने ठसकेदार व्यक्तित्व की स्वामिनी और विशेष अदाबाजी की सामग्री एवं गीत गजल की प्रस्तुत के अद्‌भुद रस निशपन्न करने वाली मुनीर जान की अस्मिता से कृष्णकली जैसे लोकोत्तर चरित्र का सृजन किया है। मुनीर जान के व्यक्तित्व से लेखिका इतनी प्रभावित थी, कि उसने कृष्णकली उपन्यास की प्रस्तावना में लिखा है - ''अन्त में मुनीर जान को भी अपनी कृतज्ञसर श्रद्धांजली अर्पित करती हूँ, जहां तक वह है वहां तक शायद मेरी श्रद्धांजली न पहुंचे, किन्तु इतना बार-बार दुहराना चाहती हूं कि मुनीर जान न होती तो शायद पन्ना भी न होती और यदि पन्ना न होती हो कृष्णकली भी न होती।'' इस उपन्यास में पार्वती, डा० पौद्रिक, असदुल्ला खान, माणिक, पन्ना, डिकी, वाणी, चारू, विद्युत रंजन, विवियन तथा हृदय की कोमल लेकिन विशालकाय आण्टी तथा मजबूत कदकाठी आकर्षक रूप रंग किन्तु क्रोधी और गम्भीर स्वाभाव के प्रवीर जैसे जीवन्त पात्रों के माध्यम से कृष्णकली उपन्यास का सृजन किया गया है। इसमें उस सामाजिक व्यवस्था का दर्द है जिसमें अपने सौन्दर्य तथा देह को बेचकर पर पुरुष को आकर्षित करने को बेवस है जिसमें सुकुमार प्रतिमा सम्पन्न, शरार्थी तथा अति सुन्दर तरुणी की बिवसता है कि वो असामाजिक कृत्यों से जुड़े लोगों को मूर्ख बनाये और किसी भी कीमत पर तथा किसी भी मूल्य को तोड़कर जिन्दा रह सके न चाहकर भी वो ऐसे लोगों को ठगती है जिसे नहीं ठगना चाहती। अन्तत: मानवीय प्रवृत्ति की बिवसता के अनुसार ही कली कुलीन सुदर्शन किन्तु बज्र हृदय प्रवीर पर आकृष्ठ होती है तनिक-तनिक बात पर फट पड़ने वाला प्रवीर भी इस विचित्र तरुणी की ओर अन्जाने में आकृर्षित होता जाता है। राजनैतिक हथकण्डों से लैस पाण्डे जी अपनी सबसे छोटी बेटी कुन्नी का विवाह प्रवीर से करना चाहते थे। राजनैतिक हथकण्डों से लैस पाण्डेजी प्रवीर के लिए साक्षात कल्पतरु साबित हो सकते थे। किन्तु प्रवीर कुन्नी की जगह चिटपटी, चिलबिल्ली कली को पता नहीं कब अपने दिल में जगह है बैठा था। अन्त में जब प्रवीर को पता चलता है कि कली असाध्य रोग से पीड़ित है। वह कली की अदृश्य इच्छा शक्ति से खिचा मृत्यु शैया तक पहुंचता है। इस समय कली इलाहाबाद (फाफामऊ) में आंटी

के घर होती है प्रवीर जब कमरे में पहुंचा तो वहां कली की मां को सिरहाने बैठकर कली के पसीने को पोंछते हुये पाया। असाध्य रोग की बजाय सभी को अरमान था कि कली ने मारक गोलियां खा रखी थी, लेकिन प्रवीर को देखकर पहचान गई और उसे देखकर शान्त शिशु सी मुस्कान खेलने लगती है। और स्वाभाविक श्वास निश्वास देख पन्ना को अच्छा लगता है।[२]

कली की मृत्यु हो जाती है कठोर हृदय प्रवीर मर्माहत होकर अन्जाने ही सूर्यास्त के समय संगम में पहुंच जाता है और कदाचित अपनी अघोषित प्रिया की आत्म शान्ति के लिए कुछ देरके लिए संगम के पानी में खड़ा रह जाता है। प्रवीर ने दक्षिण की ओर मुख करके अंजली भर जल लेकर कली की तर्पण क्रिया करनी चाही। उसे अनुभव हुआ कि जन्म जन्मांतर से प्यासे दो सूखे होंठ उसकी पानी से भरी हुई अंजली से सटकर तृप्ति कर रहे हैं। बन्द आंखों वाले प्रवीर ने अस्फुट स्वर से मन्त्र पाठ करके कली की आत्मा को अपनी प्रीति का अर्ध प्रदान किया और अपने हथेलियों में लिये जल को संगम के प्रवाह में समर्पित कर दिया।

(८) अतिथि -

अतिथि उपन्यास की नायिका जया के स्वाभिमान की कहानी है। जया के पिता श्यामाचरण साधारण स्कूल मास्टर थे और मां सीधी साधी शान्त स्वाभाव के घरेलू महिला। जया यूनीवर्सिटीह में पढ़ती थी। एक दिन जलसे में उसने स्टेज पर सरस्वती वन्दना गाई। जिसे सुनकर मुख्य अतिथि मंत्री प्रवर माधव बाबू मुग्ध हो गये और वह उसका नाम पता पूछ उसे और उसके पिता को आमंत्रित करते हैं। वह दोनों बचपन के मित्र हैं और माधव बाबू श्यामाचरण से उनकी पुत्री का हाथ अपने बेटे कार्तिक के लिए मांगते हैं। क्योकि वे चाहते हैं कि उनके अबाध य उद्धंड पुत्र को वह सही राह पर ला सकती है। जब माधव बाबू अपनी पत्नी चन्द्रा और पुत्री लीना से कहते है तो वे भड़क जातीं है और वह सुधा नाम की धनी लड़की से कार्तिक का विवाह करना चाहती थीं। पहले कार्तिक विवाह को तैयार नहीं होता पर जब वह जया को एक बार देख लेता है तो वह उसे बेहद पसन्द करने लगता है। जया की मां को यह रिश्ता पसन्द नहीं

था उन्हें जया की ताई ने उसे मंत्री पुत्र की और उसे गृह की कुख्याति से परिचित करवा दिया था। फिर दया के ताऊ की मृत्यु हो जाती है तब मंत्री जी उनके यहां भी जाते हैं और जया को बड़े आग्रह से स्वयं अपनी बेटी लीना की शादी के लिए दिन पूर्व महिला संगीत वाले दिन स्वयं साथ ले जाते हैं और वहां पर चन्द्रा और लीना उसका अपमान करतीं हैं वह उनके धर से बिना कुछ खाये पिये ही जाती है। पर फिर माधव बाबू जया को श्यामाचरण की मना कर शादी तय कर पांच बरातियों के साथ जाकर जया को ब्याह लाते हैं।

जब वह कार्तिक के साथ तिरुपति गई थी तब वह उसका शराब के नशे में अपमान करता है और घर चलने की जिद करके वह जब घर आती है तो वहां पर भी कदम-कदम पर उसका अपमान किया जाता है। जिससे वह घर छोड़कर चली आती है और पिता के यहां आकर अपनी ताई के साथ रहने लगती है और आई०ए०एस० की परीक्षा देती है। जिसमें वह पास हो जाती है। लीना जो कि शादी से पहले ही गर्भवती थी अपाहिज बेटे को जन्म देती है और नशा करने लगती है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है। कार्तिक अपने किये पर पछताता है। माधव बाबू जया को बहुत स्नेह करते हैं और उसे बधाई देने उसके घर जाते हैं। वे जया को अपमानित के कारण अपनी पत्नी और पुत्री से भी नाराज रहते हैं। वह चाहते हैं कि वह वापस अपने घर आ जाये। एक दिन रात्रि के समय कार्तिक मालती भाभी जो विमान परिचारिका थी उनसे पता लेकर अतिथि बनकर उस निर्जन कोठी में पहुंच जाता है और वह फिर उस अतिथि को घर से निकाल नहीं पाई। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं - जया, कार्तिक, माधव बाबू, श्यामाचरण, चन्द्रा, लीना, ताई, अम्मा, शेखर, माधवी, कुसमा, बुआजी।

(अ) लघु उपन्यास

(१) गैंडा -

प्रस्तुत उपन्यास दो सखियों की कहानी है सुपर्णा और राज दोनों स्कूल में के०जी० से लेकर सीनियर कैम्ब्रिज तक दोनों रेसकोर्स में गहन आत्मविश्वास के साथ प्रतियोगिताओं

में भाग लेती। अन्त तक साथ-साथ रहती किन्तु विजय डोर सदैव छूती राज मेहरा सौन्दर्य प्रतियोगिता में भी सुपर्णा के सौम्य सौन्दर्य की गरिमा मोहती, किन्तु वयस्क सौन्दर्य पारखी निर्णायकों की लोलुप आंखे राज की देह को ही उससे अधिक नम्बर देती। ब्यूटी क्वीन का जगमगाता केश गुच्छ राज मेहरा के केश गुच्छ पर और सुपर्णा को मिलता रनर्सअप का गुलदस्ता। संगीत में भी राज ही बाजी मार ले जाती। अपने सखी को एकदम निरस्त कर वह विदेश चली गई पर प्रतिद्वन्दिता होने के बाद भी दोनों में मैत्री थी।

दोनों विस्मृत सखियां एक दिन अचानक हजरत गंज में मिली वहीं पर दोनों ने अपने पतियों का परिचय कराया। सुपर्णा के पति मेजर होरिताश्व दत्ता की सुर्दीघ देह की छाया में राज का पति वेद जो कि बदसूरत था, इस लिये राज स्वयं उसे गैंडा कहती थी। राज इण्डिया के एक होटल में रिसेप्सनिस्ट की शौकिया नौकरी कर रही थी। राज का पति उसे बहुत प्यार करता था पर उसकी खुसी के लिए उसे इण्डिया छोड़कर वापस कैनेडा चला गया। राज अकेली रह जाती है और वह सुपर्णा के घर पर ही उसके बच्चे के साथ ही उसके घर पर रहने लगती है और धीरे-धीरे सुपर्णा के पति रोहित के साथ उसकी नजदीकियां बढ़ जाती हैं और एक दिन सुपर्णा को पता चलता है कि राज गर्भवर्ती है। सुपर्णा पीली मस्जिद के पीछे मौलवी साहब के यहां जो उसे उसकी खोई चीज वापस दिलानेका वादा करते हैं। उन्होंने कहा कि जो चीज मैं दे रहा हूँ उसे उसके कमरे के बाहर गाड़ देना। राज घर आई और वापस होटल रोहित के साथ गई। उसकी होटल में तबियत खराब हो गई और घर पर फोन आता है कि राज की हालत ज्यादा खराब है। सुपर्णा से रोहित साथ चलने को कहता है लेकिन सुपर्णा नहीं जाती। रोहित अकेला ही उसे लेने जाता है। उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। कारण पता चलता है कि फूड प्वाइजनिंग हो गया है। रोहित को लगता है सुपर्णा ने ही राज को मारा है। राज का पति भारत आता है और राज की सारी चीजें गरीबों में बांट देने को कह वापस चला जाता है। वह बहुत दुखी था। सुपर्णा रोहित द्वारा राज को दिये गये हार को लेकर मौलवी साहब के

घर जाती है और उनकी बेटी की शादी के लिए दे आती है। जब राज लौट रही होती है तब उसे राज के गैंडे का ख्याल आता है उसे लगा प्रवास के किसी जनशून्य अरण्य में भटक रहा अपनी आहत दृष्टि से उसे देख रहा हो। पहले उसके होंठ कांप रहे हैं, फिर आकर हीन चिबुक फिर परस्पर जुड़ी अनाकर्षक घनी भौंहे और फिर वह निराक पर बदनुमा चेहरा रुदन भी सहस्त्र विकृत झुर्रियों में एकदम ही सिकुड़ गया है।

(२) उपप्रेती -

शिवानी के लघु उपन्यासों की श्रृंखला में एक और उपन्यास 'उपप्रेती' है। उपप्रेती के विषय में शिवानी ने लिखा है कि पहाड़ में गर्भवर्ती गृहणी के प्राण प्रसव पीड़ा में चले जायें जब कि शिशु भूमि गत नहीं हुआ हो जब उसे घाट ले जाया जाता है और चिता में रखने से पूर्व शास्त्रानुसार गर्भ की सन्तान को जननी से अलग किया जाये। जिस पुत्र संतान ने जननी के प्राण लिये थे, स्वयं उसमें प्राण थे- उसी पुत्र का नाम धरा गया 'उप्रेती' अर्थात् 'उपप्रेती'।

साइवेरिया के सीमांत पर बसे चारों ओर सघन वन-अरण्य से घिरे उस अज्ञान शहर में अचानक शिवानी की मुलाकात अपने देशबंधु से हो गई। वह भी उससे जिसके कि वे मृत्युभोज बड़ी अनिच्छा से चालीस वर्ष पूर्व सम्लित हुई थी। मैं उससे मिली वह था मेरी बचपन की सखी रमा का पति। रमा कि मां का बचपन में जब वह सात वर्ष की थी उनका निधन हो गया था। विमाता ने पाला जो कि निरीह रमा पर बहुत अत्याचार करती थी। रमा स्वाभाव से ही गम्भीर थी, न पहनने ओढ़ने का शौक, उसकी पढ़ाई भी छूट गई थी। दिनभर घर में काम करती रहती। कैंजा ने उसकी शादी उप्रेती जी के बड़े बेटे से कर दी। रमा सांवली थी इसलिए उसका पति बिना उसका मुख देखे अपनी नौकरी पर चला गया। जब रमा के देवर की शादी में मुझे जाने का अवसर प्राप्त हुआ तो उसकी खोये सुप्त आत्मविश्वास देखकर मैं समझ गई कि उसने अपने मूर्ख पति का प्रेम निश्चय ही पा लिया है। उसके पति ने उसे अपने साथ ले चलने का भी वादा किया था किन्तु बारात वापस नहीं आई, बस दुर्घटना में सभी मारे गये। केवल

नववधु और रमा का पति ही किसी तरह मृत्यु से जूझकर नन्दी को बचा लिया था। जिसे अपना सहचर समझती है, और समाज द्वारा अपमानित न होना पड़े दोनों साइबेरिया के सीमान्त पर शहर में रहने लगे और वहीं नौकरी करने लगा। जब वह मुझसे मिला तो उसने सारी घटना बताई, और अपने देश में किसी को न बताऊ कि वे दोनों जिन्दा है, वादा लिया। इधर रमा ने बैराग्य ले लिया और मौन व्रत ले लिया था। अन्त में रमा को टी०वी० हो गया जिससे एक दिन नदी की सीढ़ियों पर पैर फिसल जाने से उसका देहान्त हो गया। रमा का कुछ सामान उसका शिष्य शिवानी को दे गया था। जिसमें एक धार्मिक किताब, शिवानी का दिया बटुआ और उसके एक रुद्राक्ष की माला साथ ही उसके गुरू का चित्र और दूसरा उप्रेती का पीला पड़ चुका था जिसे सुदीर्घ साधना के बीच भी अभागिनी के चित्त के उसके क्षण स्थाई सौभाग्य की स्मृति विलीयमान नहीं हो पाई थी।

(३) पूतोंवाली -

प्रस्तुत उपन्यास एक ऐसी महिला के केन्द्र में रखकर लिया गया है जिसका नाम है पार्वती। पार्वती की मां का देहान्त बचपन में ही हो गया था, पिता हेडमास्टर थे। उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया था। विमाता बहुत ही क्रूर थी, जिससे वह हमेशा डरी सहमी सी रहनेलगती है और वेहद डरपोक स्वभाव की हो जाती है। उसका विवाह शिवसागर मिश्र से उनकी मरजी के विरुद्ध मां बाप द्वारा करवा दिया जाता है। शिवसागर अपने अनमेल विवाह से कभी खुश नहीं रहे। पार्वती ने शिवसागर को पांच सुदर्शन पुत्रों का पिता बना दिया था। पांचों पुत्र ऊँचे ओहदों पर नौकरी और घर बसा कर मां बाप को भूल जाते हैं, और मां बाप की बीमारी का भी ख्याल नहीं करते, न उन्हें अपने साथ रखते हैं। एक दिन पार्वती की तबियत ज्यादा खराब हो जाती है, मृत्यु की सम्भावना से मिश्र जी अपनी चेतना खो बैठते हैं। इसमें भी उनका स्वार्थ ही था कि अब दो जून की रोटी भी नहीं मिल पायेगी। पार्वती तो हमेशा उनकी छाया बनी डोलती रहती और उन्हें अपने किये पार्वती के साथ व्यवहार पर पछतावा होता है।

फिर वे उसका बहुत ध्यान रखने लगते हैं। एक दिन पार्वती की बीमारी के कारण अपने छोटे बेटे के यहां बिना सूचना दिये पहुंच जाते हैं। तो उनका बेटा और बहू उन्हें बिना सूचना के आने के लिए भला बुरा कहते हैं। पार्वती अपने पति से वहां तो रात को ही चलने के लिए कहती है। फिर मिश्र जी सुबह बिना किसी को जगाये ही बिना कुछ खाये पिये चले आते हैं। पांच-पांच पुत्रों के होते हुये उन्हें किसी ने सहारा नहीं दिया। घर आकर पार्वती की मृत्यु हो जाती है। शिव सागर के मित्र बदरी ने जब उनके पुत्रों को खबर देने की बात कही तब शिवसागर मेघ से गरज पड़े और कहा मेरा कोई बेटा नहीं है, निपूती ही रही उसे निपूती ही जाने दो।[३] खबर पाते ही पूरा गांव चरण धूली लेने उमड़ पड़ा था।

(४) बदला -

प्रस्तुत उपन्यास बदला माता पिता की इकलौती संतान के विषय में है जो कि अपनी बेटी को बहुत लाड़ प्यार से पालते हैं। इसलिए वह उद्धत और जिद्दी स्वाभाव की बन जाती है। त्रिभुवन नाथ अपनी बेटी को बहुत प्यार करते थे। उम्र के तीसवें वर्ष उन्हें पुत्री रत्न की प्राप्ति हुयी थी, वह बहुत सुन्दर भी थी। इसलिए उसका नाम रत्ना रखा। उसकी शिक्षा के लिए उसे नैनीताल भेजा गया। जब पढ़ाई पूरी हो गई तो रत्ना ने जिद पकड़ ली और वह दिल्ली चली गयी। दिल्ली से लौटने पर परिवार के लोगों के मना करने के बाद भी वह कला क्षेत्रम चली गई, वहां से नृत्य की शिक्षा पूरी करके जब लौटी तो उसके आत्म विश्वास ने उसे और भी दंबग बना दिया था।

एक दिन उसने जिद पकड़ ली कि वह कलाक्षेत्रम के एक लड़के अरुण मल्होत्रा जो कि उसके साथ नाच सीखता है, उससे शादी करेगी। त्रिभुवन नाथ को जो कि एक रौबदार अफसर थे, उन्हें यह रिश्ता किसी भी सूरत में पसन्द नहीं था। पिता पुत्री के बीच काफी कहासुनी होती है, और पुत्री को ताले में बन्द कर दिया जाता है। पुत्री का निश्चय देख पिता उस बांस को ही कटवा देता है, जिससे फिर न कभी बांसुरी बज सके। रत्ना भी यह जान गई

थी। फिर वह एक दम शान्त रहने लगती है तब कुछ समय पश्चात बैंक में कार्यरत बृज कुमार नाम के लड़के से उसकी शादी कर दी जाती है। दोनों बम्बई जाते हैं और कुछ दिन पश्चात वहां से फोन आता है कि बृजकुमार ने आत्म हत्या कर ली। उसने आत्म हत्या नहीं की थी उसकी हत्या रत्ना ने की थी। किन्तु सबूत और फिंगर प्रिंटस् के कारण रत्ना पर शक नहीं किया जाता। त्रिभुवन नाथ रत्ना को घर ले आते हैं और दूसरे दिन रत्ना घर छोड़कर चली जाती है और त्रिभुवन नाथ को पत्र में सब कुछ सच-सच लिख जाती है। तब त्रिभुवन नाथ को लगता है कि उसकी पुत्री ने कहा था कि वह बदला लेगी और उसने बदला ले लिया।

(५) कैंजा -

कैंजा उपन्यास की नायिका लम्बे कद की तेजस्वी महिला है। जो देखने में बहुत सुन्दर है उसके साथ घुंघराले बालों वाला, नीली आंखों वाला, ब्लांड बालक जो एकदम विदेशी लगता था। स्टेशन पर था वह पहाड़ जा रहे थे। नन्दी अपने बेटे को उसके पिता से मिलाने पहाड़ ले जा रही थी। उसके दोस्त उससे बार-बार उसके पिता के विषय में पूछते थे। उसके निर्दोष से प्रश्नों ने उसे पहाड़ जाने के लिए मजबूर कर दिया था। वैसे गंभीर सौम्य स्नेहशीलता नंदी ने मां न होते उसे भी, उसे मां का प्यार दिया और पिता की कभी कमी महसूस नहीं होने दी थी।

नन्दी पहाड़ में रहती थी उसे सुरेशभट्ट प्रेम करता है और शादी का प्रस्ताव लेकर नन्दी के पिता के पास जाता है। नन्दी के पिता उसकी बेशर्मी पर नाराज होते हैं और उसे नन्दी के घोर वैधव्य योग के विषय में बता देते हैं। तब भी वह उससे विवाह करना चाहता है। पर नन्दी के पिता उसे वापस भेज देते हैं और अपनी पुत्री को उसके पैरों पर खड़ा करते हैं। मालदारिन की लड़की को पुत्र होता है वह पगली थी और प्रसव पीड़ा में देहान्त हो जाता है। नन्दी ही उस बच्चे को पालती है उसके पिता का पता नहीं था किन्तु सभी जान जाते हैं कि उसका पिता कौन है और वह अपराधी सुरेश भट्ट स्वयं अपना अपराध स्वीकार कर लेता

है। आज वह उसी सुरेश भट्ट से विवाह करने पहाड़ आई थी। अपने बेटे को उसका पिता देने वह रात को जाकर ही बीमार एकदम दुबले हो चुके सुरेश भट्ट से सारी बात कर आती है। सुबह अपने बेटे घूमने भेजकर उससे शादी करती है। फेरों के वक्त ही सुरेश भट्ट की तबियत ज्यादा खराब होती है। वह अपने सारे किये अपराध स्वीकार करता है और उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती है। गांव की ताई उसे रोक लेती है कि तूने उसका अंगूठा पकड़ा है तीसरे दिन जाना और जब वह जाने लगी तो रास्ते में उसे मालदारिन मिलती है और रोहित से कहती है कि वह उसकी बेटी का बेटा है और नन्दी उसकी कैंजा है। रोहित गुस्से में शीशा तोड़ देता है और कहता है कि मैं तुम्हें कभी कैंजा नहीं कहूंगा।

(६) रथ्या -

इस उपन्यास का प्रारम्भ होता है द्वार की दस्तक से शहर के सीमांत पर बने भव्य बंगले को ढूढ़ता विमल चौराहे पर पान वाले से पूछता है चौखंभा बिल्डिंग, तो वह बंकिम कुटिल स्मित का रहस्य विमल को दूसरे दिन पता चलता है। यह चौखंभा बिल्डिंग बसन्ती की थी जो कभी सीधी ग्रामीण वाला थी। विमल के पिता वैद्य थे और वह रोज उनके घर चूर्ण मांगने जाती थी। धीरे-धीरे जब वह बड़ी हुई तो उसके नन्हे से दिल में कही विमल बस चुका था। उसके मां बाप बचपन में ही मर गये थे। जीवन्ती बुबू ने ही उसे पाला था। पहले विमल से उसके रिश्ते की बात चली थी। विमल के पिता स्वयं ज्योतिषी थे उन्होंने दोनों की कुंडली मिलाई पर साम्य नहीं हुआ तो यह रिश्ता नहीं हो पाया। विमल के पिता ने कुंडली वापस कर दी थी। बसंती फिर कभी उनके यहां नहीं गयी। विमल रास्तें में मिलता तो वह तीर सी भन्नाकर निकल जाती। फिर एक दिन गांव में सर्कस लगा था, वह उन्हीं के साथ बिना किसी को बताये भाग जाती है। विमल की शादी देखने में साधारण लड़की से हो जाती है पर वह देखने में सुन्दर न होने परभी वह घर का सारा काम पलक झपकते ही कर लेती थी तो उसके स्पर्श से बंजर खेत सोना उगलने लगे। सभी ने समझा था कि बसंती मर चुकी है, लेकिन एक दिन अचानक

उसका पत्र आया था, फिर एक दिन पता पाकर जब विमल दिल्ली पुरस्कार लेने गया तो क्षीण सा पता लेकर बसंती के यहां पहुंच जाता है। वह उसे देखकर पहचान हीं नही पाता वह बहुत पैसे वाली हो गई थी। उसकी राजसी वेशभूषा और विमल की पाठशाला के अध्यापक की निराडम्बरी सरल वेशभूषा। उसने विमल का स्वागत किया। विमल को उसके घर में बहुत संकोच हो रहा था। वह उसे बताती है कि जब वह सर्कस वालों के साथ भागी थी तब मुथ्थुस्वामी जो उसे बेटी-बेटी कहता था। वह काला भुजंग मेरा ही भक्षक बन गया। वह किसी तरह वहां से भागी तो मिसेज मैकेंजी के यहां पहुंची। उनका नृत्य स्कूल था जहां उसने नृत्य सीखा। फिर कैबरे नर्तकी बन गई, विमल ने जब उसको होटल में अग्निशिखा बनी वह नाच देखा था। वह बसंती से गांव वापस चलने को कहता है किन्तु वह नहीं जाती विमल उसकी बातों से आहत होता है। जब वह कहती है कि उसके घर तक का मार्ग बन रहा है और उसका नामकरण वही करे, तो वह उसका नाम रथ्या बताता है। 'रथ्या कहते हैं ऐसी सड़क को जो वैश्याओं के मुहल्ले तक जाने वाली पतली सड़क को और फिर दोनों के बीच कोई बात नहीं होती, न बसंती उसे खाने के लिए ही कहती है, वह उसे बिना बताये चुपचाप अपने घर लौट जाता है।

(७) माणिक -

यह उपन्यास दो सगी बहिनों की कहानी पर आधारित है। दोनों बहिनों को पिता ने बड़ी समझदारी से सम्पत्ति का बटवारा कर दिया था। किन्तु माणिक की अंगूठी के लिए उनका आदेश था कि यदि नलिनी अविवाहित रहने का फैसला करती है, रम्भा को पूरी सम्पत्ति मिल जाती है और उसका विवाह हो जाता है। माणिक की अंगूठी पिता के आदेशानुसार उनकी अविवाहित पुत्री नलिनी को मिलती है। नलिनी ने अपना घर एकदम निर्जन से स्थान पर पिरामिड के आकार का बनवाया था। एक दिन बरसात में एक लड़की दीना उसके यहां आ जाती है, जहां केवल नलिनी और उसकी देखभाल लक्ष्मी किया करती थी, दीना फिर वहीं आकर रहने लगती है। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे के बहुत निकट आ जाती है। साथ घूमती फिरती, खाती पीती,

सोती और एक दिन पता चलता है। कि लक्ष्मी और नलिनी की हत्या हो गई है और दीना सारी सम्पत्ति रुपया अपने नाम करवा भाग जाती है। छोटी बहिन रम्भा को नलिनी की मौत से ज्यादा चिंता माणिक की अंगूठी की थी। जब वह लॉकर से अंगूठी की डिब्बी निलाकती है तो वह वैसी ही मिली थी पर माणिक गायब था।

(८) कस्तूरी मृग -

कस्तूरी मृग उपन्यास मे एक ऐसे युवक की कथा है जिसके पिता संगीत प्रेमी थे और उनकी गाजीपुर वाली कोठी में दशहरा दरबार लगता था। वहां प्रख्यात गायिका चन्द्रावली अपनी किशोरी पौत्री रामेश्वरी को छोड़ गई थी और पिताजी घर पर कम ही रहते थे। अम्मा हमेशा रोती उसे छाती से चिपकाये रहती। संगीत प्रेम ने ही इस खानदान को बर्बाद किया था। पिता ने अपनी प्रिय रक्षिता के लिए काशी में ही आलीशान कोठी बनवा दी थी और वह स्वयं भी ज्यादातर वहीं रहते। घर का संचालन घोषबाबू करते थे। अम्मा की मृत्यु के बाद नन्हें के एकमात्र आत्मीय वही थे और उसे भयानक मलेरिया हो जाने पर उन्होंने ही उसकी देखभाल की थी। नन्हे की रिश्ते की बहिन की लड़की से प्रेम करता था, और उसके ही स्वप्न देखता यूनीवर्सिटी चला गया, वहां से कम्पटीशन देकर बहुत बड़ा अफसर बन गया था। इस बीच फूफा जी ही सारी सम्पत्ति की देखरेख करते थे। जब लौटा तो पिता को कुष्ठ रोग ने घेर लिया था, और उस कस्तूरी मृग सी गन्ध की जगह दुर्गन्ध ने ले ली थी। उसने उन्हें एक मिशनरी अस्पताल में जबरदस्ती भेज देता है, और उनकी रास्ते में ही मृत्यु हो जाती है। वह बहुत रो रहे थे और उसे बद्दुआ भी दे रहे थे कि तू भी कभी गृहस्थी का सुख न भोग पाये। वह कनक के घर पहुंचा और बुआ फूफा से कनक का रिश्ता मांगा तो उन्होंने इन्कार कर दिया। सर्वगुण सम्पन्न होने पर पिता के कुकृत्यों और उनकी सड़ सड़ कर हुई मौत के कारण उन्होंने वह रिश्ता नहीं किया। फिर वह क्रोधित हो उस वेश्या को मारने के लिये मित्र से पता लेकर गया। वहां जाकर देखा तो वह अन्धी हो चुकी थी, और जब सामने देखा तो एक युवती उसका ही एकदम प्रतिबम्ब

लग रही थी। उसे लगा विधाता ने ही मेरा बदन लेकर उसे पंगु बना दिया है और वह अपनी पुत्री को वेश्या बनने का ही आशीर्वाद दे पाई है और घोषबाबू की पंक्तियाँ उसकी नियति बन गई है।

"पागल हइया बने-बने फिरी,

आपन गंधे मय कस्तूरी मृग सम।

(९) रतिविलाप -

प्रस्तुत उपन्यास शिवानी ने अपनी बचपन की सखी अनुसुइया पर लिखा है। इस उपन्यास की नायिका अनुसुइया पटेल किसी शापभ्रष्ट गन्धर्व कन्या सी ही सुन्दर दिखती थी, वह आश्रम में पढ़ती थी, पिता की मृत्यु के पश्चात आश्रम न आ सकी। घर का बोझा अब उसके कन्धों पर था। वह जब शिवानी को अमीनाबाद में मिली तो दोनों में बातें हुई। उस वक्त पता चला कि उसका विवाह हो चुका था, और अब वह अनुसुइया कपाड़िया है। जब कि वह विधवा हो चुकी थी वह बम्बई में साड़ियों का बिजनेस करती थी। उसने शिवानी को बताया कि पिता की मृत्यु के पश्चात उसके मामा ने समृद्ध पिता का पुत्र जिसको मिरगी के दौरे पड़ते थे उसके साथ विवाह करवा दिया। मामा को सब पता था, फिर भी उन्होंने कुछ नहीं बताया था। पति को जंजीरों से बांधकर रखा जाता था। वह बहुत मीठा गाता था एक दिन उसकी दृष्टि उस पर पड़ी और वह वहीं खड़ी रही, उसका उन्माद विलुप्त हो गया था। फिर कुछ देर में उसने अनुचरों को गिरा उसे गोद में उठा लिया। ससुर कुछ समझ भी नहीं पाये, समझते इससे पहले वह मुझे गोद में उठाये ऊपर चढ़ गया। उसमें कठोरता नहीं मधुरता थी। उसके ससुर उसे पकड़ने बढ़े तो और वह कूद गया। पिता जी ने उसे बचा लिया। उन्होंने बहू को पाकर बेटे को खो दिया था। उन्होंने मुझसे कहा अगर मैं मामा के पास जाना चाहूं तो जा सकती हूं मुझे खर्च नियमित रूप से मिल जायेगा पर वह नहीं गई। उसने अपने कर्तव्य का पालन किया। फिर उसने साड़ियों का काम शुरू कर दिया। वह बहुत थक जाती थी एक दिन उसे हीरा नाम की किशोरी मिली,

वह जेल में सजा काट चुकी थी। उसे लेकर घर आई तो पिता जी ने बहुत मना किया पर वह मजबूर होकर उसको सेवा कराने को तैयार हो गये जब वह बाहर गई थी कुछ दिनों पश्चात लौटी तो पिता जी पर उसने जेसे जादू कर दिया। एक दिन वह सारी बेस कीमती साड़िया लेकर पिता जी के साथ भाग गई। एक दिन पुलिस ने सूचना दी कि बनारस में करसनदास कपाड़िया की होटल में रहस्यमय ढंग से मौत हो गई है। फिर एक दिन उसने हीरा को होटल में देखा वह साड़ी जो उसके यहां से लेकर भागी थी पहने थी। उसके साथ जो छोटा बच्चा था वह उसके पास आकर खड़ा हो गया, जिसमें उसने अपने पिता जी की छवि देखी। फिर वह उसे पुलिस के हवाले नहीं कर सकी और अन्त में रह गई रति विलाप की गूंज।

(१०) किशनुली -

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका किशुनली पगली है और अत्यन्त सुन्दर भी है। कभी वह शांत तो कभी बौरा उठती थी। बच्चे उसे. परेशान करते और वह उन्हें पत्थर मारती, फटे कपड़े पहने अदृश्य हो जाती। शास्त्री जी शिवानी के गुरू थे गौर गुरू पत्नी को वे काखी कहती थी। वह उनसे पढ़ने जाती थी। काखी अत्यन्त सरल हृदय की थी वे एक दिन किशुनली को घर ले आई। शास्त्री जी को अच्छा नहीं लगा उन्होंने काखी को मना भी किया पर वह नहीं मानी और पगली को नये कपड़े पहनाये और उसका नाम रखा किशुनली। एक दिन फिर वह भाग गई, काखी बहुत परेशान हुई और फिर अचानक ही पहुंच गई। कक्का के न रहने पर वह काखी के साथ सोती वह काखी को इजा कहने लगती है। जब वह लौटी तो उसके चोटे लगी थी उसके बाद वह एकदम शांत हो गई थी। एक दिन उसने काखी कक्का के लिए स्वेटर बना रही थी। जला दिया, काखी रोने लगी तो वह अपना अपराध जान घर से चली गई थी। काखी उसके जाने के बाद एक दम गुमसुम रहने लगी। कक्का भी कम आहत नहीं थे। एक दिन फिर पूरे सात माह बाद पुन: अवतरित हो गई, पर उसके शारीरिक परिवर्तन को देख लज्जास्पद अवस्था की खबर पूरे शहर में फैल गई। कक्का के परिवार को समाज से बहिष्कृत कर दिया गया।

क्यों कि काखी ने किशुनली को अपने घर में रखा था। काखी ने किशुनली के 'ढांढ' को छाती से लगा लिया। कक्का उससे दूर भागते पर उसे चोरी छुपे प्रेम करते थे। उन्होंने ही उसका नाम कर्ण रखा था। उसे पढ़ा लिख कर बड़ा आदमी बनाया। एक दिन कक्का अपने अन्त समय में काशी चले गये थे और उन्होंने वहीं से शिवानी को पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया था और बताया था कि कर्ण मेरा पुत्र है। काखी को अपना अपराध बता देने को भी कहा था, पर वह काखी को कुछ बता न सकी क्योंकि वह तो कक्का को पूजती थी। कैसे कहूं कि उस पतिव्रता से, और वह अपना घर छोड़कर नहीं जाना चाहती क्योंकि वहां उनकी स्मृतियां, कक्का, किशुनली, कर्ण की भरी पड़ी थी। जब शिवानी को पता चला कि काखी को इहलोक से मुक्ति मिल गई तब उन दिन उस राज को न बताने के लिए आत्म सन्तोष हुआ। वह स्वयं अपराध करने वाले के पास पहुंच गई।

(११) अभिनय -

प्रस्तुत उपन्यास में शिवानी ने एक मां शान्ता जिसने अपने दोनों बेटों को बड़े-बड़े लाड़ प्यार से पाला था। शान्ता के श्वसुर दीवान रह चुके थे। आयु भोगकर ही दिवंगत हुये थे। किन्तु पति की असमय ही मृत्यु हो गई थी। उदार राजा साहब ने उन्हें हवेली में रहने दिया और उनके पौत्रों को अपने पुत्रों के साथ पढ़ाया। बड़ा पुत्र मद्रास में डाक्टर बन गया था। वह भी वहीं रहने लगी थी एक दिन बिना किसी पूर्व सूचना के विजातीय डाक्टरी रजनी पटेल से शादी कर ली। तीसरे ही महीने बेटे की मृत्यु हो गई। गुजराती लखपती समधी जब बेटी को लेने आये तो वह उनके साथ नहीं गई। मां के बहुत कहने पर भी छोटा बेटा रजनी को रजनी ही कहता था भाभी नहीं। दोनों लोकलाज त्याग साथ-साथ घूमते फिरते रहे। शान्ता खून का घूंट पीकर रह जाती। फिर उसने बहू के शारीरिक बदलाव को देखा और फिरभी मुंह से कुछ नहीं कह पायी। दोनों एक साथ बम्बई जाते हैं वह १५ हफ्ते से गर्भवती थी, बम्बई से लौटते ही वह विदेश चली गई। इसी बीच शान्ता ने कुमायूं की नानदी को शेखर के विषय में पत्र लिखा।

शेखर वहां जाता है और तीखे नैन नक्श गौर वर्ण की किशोरी पर रीझ जाता है और व्यवहार कुशला मौसी तुरन्त उसका विवाह करवा देती है। लौटने पर रजनी को सब पता चलता है वह शेखर को बहुत बुरा-भला कहती है। यह सब नववधू सुन रही थी, उसने जिद पकड़ी कि उसे उसके घर भेज दिया जाये और वह चली गई। नानदी बहुत नाराज थी उन्होंने पत्र डालकर अवगत करा दिया था, रजनी कुछ दिनों बाद विदेश चली गई और वहीं सर्जन से विवाह कर लिया। शेखर की कुख्याति फैल रही थी। शान्ता का देहान्त हो जाता है और शेखर एकांत में भुतहे बंगले में रहने लगता है और बहुत शराब पीने लगता है वह भ्रष्टाचार के दल-दल में फंस जाता है। फिर अचानक उसे अपनी प्रेयसी का पता चलता है और वह बम्बई पहुंचता है। तिलोत्तमा से मिलता है वहां सुहागरात का दृश्य फिल्माया जा रहा था, वह पहुंचा और शेखर को उसने चेक पर हस्ताक्षर करके दे दिया। वह चला गया तो वह विक्षिप्त सी बैठी रो रही थी। आज वह जीवन में पहली बार अभिनय नहीं कर रही थी।

(१२) पाथेय -

पाथेय उपन्यास की नायिका तिलोत्तमा अपूर्व सुन्दरी थी और आज के समय में डा० तिलोत्तमा ठाकुर की विचित्र कहानी लगती है। शिवानी से तिलोत्तमा का परिचय वर्षों पूर्व कलकत्ते में विद्यासागर कालेज में हुआ था। तिलोत्तमा के पिता किसी समय बहुत बड़े जमींदार रह चुके थे, किन्तु अब उनका सब कुछ बिक गया था। स्वाभाव से दिखने में बेहद घमंडी लगती थी पर वह अच्छे स्वाभाव की थी, सभी से घुल मिल जाती थी। तिला के मामा माधव बाबू के मित्र थे, जिनके पुत्र प्रतुल के साथ उसका विवाह कर दिया जाता है, मामा ने उन्हें प्रतुल के असाध्य रोग के विषय में कुछ भी नहीं बताया था, और उसके ससुर की कुख्याति सास का रांची के पागलखाने का प्रवास सब कुछ छिपा गये थे। डाक्टरों के मना करने के बावजूद कि उनके पुत्र के दोनों फेफड़े छय रोग के कारण छलनी हो चुके हैं, किन्तु प्रतुल के एकलौते पुत्र होने के कारण उन्हें वंशधर चाहिए था। इसीलिए उत्तराधिकारी की चाह में, चाहे उन्हें अपने

पुत्र की बलि ही क्यों न देनी पड़े, उसका विवाह कर दिया। ससुराल में अनन्त वैभव दास दासियां थे, और ससुर विलासी प्रकृति के थे। एक दिन तिला रात्रि को पानी पीने उठी तो उसे मखमली पर्दे की दरार से देखा, उसके ससुर सोना माशी को बाहों में भरे गहरी नींद में डूबे थे। सोना माशी तिला के साथ अभद्र व्यवहार करती थी। फिर डाक्टर ने तिला को प्रतुल की देख रेख सम्बन्धी हिदायत दे दी थी कि उसे शारीरिक सम्पर्क से बचना होगा, क्यों कि इस रोग की छूत उसे भी लग सकती है, फिर भी प्रतुल की पलंग उसके कमरे में लगा दी गई थी। वे दोनों एक दूसरे से बहुत प्रेम करने लगे थे, निर्दोष बालकों से निर्दोष बालसुलभ हृदय वासनादग्ध नहीं हुये। प्रतुल को बचाने की बहुत कोशिश की गई पर नहीं बचाया जा सका। प्रतुल की मृत्यु के उपरान्त चार दिन भी नहीं गुजरे थे, कि वह वहशी कामातुर मदमत्त ससुर की वासना से निकली आंखे उसे लीलने को बढ़ी। बेटे की चिता ठण्डी भी नहीं हुई थी और वह ऐसी नीचता पर उतर आया। वह रात को ही खिड़की से छलांग लगाकर भागी और रास्ते में एक अनजान व्यक्ति जॉन से लिपट गई, वह व्यक्ति उसे अपने घर ले आता है और अपनी पत्नी मारिया सहित दोनों उसको उसके घर तक पहुंचाने में मदद करते हैं, फिर ससुर के डर से वह अपनी निसन्तान बुआ के पास रहकर पढ़ती है। पी०एच०डी० कर लेती है और बुआ के कहने पर भी दूसरा विवाह नहीं करती। एक दिन व्यक्ति एक अवकाश प्राप्त चीफ इंजीनियर उसे लेने आता है जिसका पुत्र विनायक मृत्यु शय्या पर है और वह अपनी बहू तिला की रट लगाये है। किसी प्रकार वह जाती है और उसका कहता है कि वह प्रतुल ही हे और वही उसकी तिला है। उसने तिला को उसके और प्रतुल के बीच की सारी बातें बताई। तिला को बांहों में भरकर वह इस संसार से विदा ले गया। उसकी मृत्यु के बाद तिला ने पाथेय प्रदीप भी जलाया, किन्तु उसे शांति न मिली। फिर एकदिन जाकर वह विनायक के पिता को बहुत अधिकार से अपने साथ ले आई और उनकी देखरेख करने लगी। उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति तिला के नाम कर दी, पर तिला ने उनके विपत्ति के सख माधवन शास्त्री को फार्म हाउस की चाबी देकर उनके नाम कर दिया और उनकी समस्त सम्पत्ति का ट्रस्ट

बना उसी हॉस्पिटल को दिया। जिस कुटिल रोग ने उनके इकलोते पुत्र के प्राण लिये थे, जिससे किसी अभागे रोगी की उनका वैभव यंत्रण कुछ कम कर सके।

(१३) दो सखियाँ

प्रस्तुत उपन्यास 'दो सखियाँ' में शिवानी ने ऐसी दो महिलाओं के विषय में है। जिनमें से एक का नाम सखुबाई और आनंदी जिनमें एक अकोला और दूसरी उन्नाव की थी। सखुबाई आश्रम में पहले से रह रही थी। एक दिन आनन्दी को उसकी दोनों ठसकेदार और दंबग बेटियां उसे आश्रम में रहने के लिए छोड़ गई थी। जहां गृह से निर्वाचित या स्वेच्छा से इन वानप्रस्थी आश्रम में रहने का ६०० रुपया देना होता था। जिससे वहां का सारा खर्च चलता चलता था।

सखुबाई सातवर्षो में माया मोह से दूर हो चुकी थी, किन्तु आनन्दी अभी भी माया मोह से विमुक्त नहीं हो पाई थी। आश्रम में पहले ही दिन सखुबाई आनन्दी को अपने कमरे में ले आई थी और उसी दिन से दोनों में मैत्री हो गयी थी। आनन्दी भगवान का भजन पूजन करती तो सखु कभी-कभी झुंझला पड़ती गोविन्द-गोविन्द भजती हो क्या दिया है? इस गोविन्द ने बहुत लाड़ उमड़ने पर, आनन्दी सखु को मास्टरनी कहकर पुकारती थी। सखुबाई के पति की बस दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, तब पुत्र रोहित उसके गर्भ में था। ससुराल में कर्कशा पुत्रवोधिता सास ने जब उसका जीना दूभर कर दिया, तब वह अपने मायके चली आई थी। सखुबाई के पिता ने ही उसे अपने पास रखकर पढ़ाया लिखाया और बेटी को पैरो पर खड़ा किया। फिर पढ़कर उसी कालेज में प्रिंसिपल बनी वहां की कभी वह छात्रा रही थी। बेटे को सर्वोच्च स्थान मिला था डाक्टरी में और छात्रवृत्ति भी। वह विदेश जाकर ही बस गया उसका प्रवासी हमेशा के लिए चिर प्रवासी बन गया था और उसने मां के सपनों को चूर कर वही अमरीकी लड़की से शादी कर ली थी।

आनन्दी के कमरे में पहले गुरविन्दर रहती थी। सत्ताइस, अट्ठाइस की उम्र में ही आश्रम आई थी वह आश्रय में सभी की प्रिय बन गई थी। एक दिन उसके विषय में एक व्यक्ति जो उसे जानता था उसके कलुष अतीत के विषय में बता सभी को सहमा गया किन्तु सखुबाई ही उसे अपने साथ रखती। उसे बात करती, घूमती फिरती और करतार सिंह बम धमाके सा पूरे आश्रय में उसके पति की हत्यारित होने की बात फैला गया था। जिनसे अन्ततः कलंक के कारण चली गयी और उसकी लाश उस समन्दर तट पर मिली उसके बाद सखुबाई आनन्दी के साथ उंगली पकड़ घूमने जाती कि वह कहीं भाग न जाये। आनन्दी पुत्र की बहु के पिता का पद ऊँचा था और बहू की मां उसी के यहां आकर रहने लगी और स्वयं उसे दूर कर दिया और एक दिन रूठकर वह विदेश चला गया और कोई अवसर होता तो उसकी मां पहुंच जाती। फिर आनन्दी की बेटियां रूक्मन और राधा दोनों उसे घर छोड़ कर अपने साथ रहने को कहती हैं पर कुछ ही दिनों में उसका भी रंग बदल जाता है। कल उसको लेकर दोनों घरों में कलह होने लगता है फिर एक दिन दोनों बेटियां उससे मुक्ति पाने उसे 'आश्रय' में छोड़ जाती हैं। आनन्दी अपने साथ लाई सोने के दो भारी गोखरू और एक पन्ना की हीरे जड़ी अंगूठी दिखाकर कहा यदि मुझे कुछ हो जाये तो मैं राधा-रूक्मन को दे देना और एक अंगूठी उसे पहना देती है। उस दिन सखुबाई घूम कर लौटी तो देखा आनन्दी सो रही है जब देखा तो वह हमेशा के लिए ही सो चुकी थी। फिर उसने आनन्दी के कहे अनुसार उसका अन्तिम क्रिया कर्म किया। तीन महीने बाद आनन्दी की पुत्रियां बैंकाक से घूमकर लौटी उन्होंने कहा था हमारी मां का बक्सा संभालकर रख दें। हम लौटने पर ले लेंगी। वह अंगूठियों की थैली वह उन पुत्रियों को नहीं देती उन्हें वह समुद्र में उछाल देती है और बड़ी श्रद्धा से उठा अपनी दिवंगत सखी को प्रणाम कर माफी मांगती है तेरी अमानत तुझे लौटा रही हूं, जो अर्थी उठने पर भी नहीं रोई थी फिर आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे।

(ग) युगीन परिवेश और शिवानी की रचनाधर्मिता

हम एक ऐसे युग से गुजर रहे हैं, जिससे मनुष्य की सृजन शक्ति इतनी बढ़ गई है कि वह चाँद तारों पर भी क़मन्द डाल सकता है, लेकिन उसने संहार के अस्त्र भी इतने घातक और पूर्ण कर लिये हैं, कि कुछ ही छण में मानव जाति को नष्ट कर सकता है। सृजन और संहार की असीम शक्ति मनुष्य ने मनुष्य के सामने ऐसा संकट पैदा कर दिया है, जो मानव मूल्यों को पूर्ण अस्वीकृति की ओर ले जा सकता है, और नये मूल्यों का अन्वेषण भी कर सकता है।

सृजन और संहार की शक्तियां प्रत्येक युग में षटस्वर संघर्षमय रही हैं, और इनकी निरन्तर प्रगति भी होती रही है। लेकिन इनमें तीव्र संकट की स्थिति विगत शताब्दी के अन्तिम चरण से ही इतने घातक रूप में परिदृष्य हुई है। जब किसी युग की संस्कृति और उसके मूल्य नई शक्तियाँ अन्वेषणों और विचारों से उत्पन्न समस्याओं की चुनौती को स्वीकार करने में असमर्थ रहें, तो उसका अभिप्राय है कि वह सभ्यता संकट का शिकार हो चुकी है और उसका अन्त विनाश है, या विघटन। शिवानी का युग और इसमें सृजित साहित्य इसी संकट से उत्पन्न मूल्य शून्यता की भयानक और वेदना पूर्ण विकृतियां भी प्रस्तुत कर रहा है। कहना न होगा कि शिवानी के सृजन में भी युगीन विघटनकारी मूल्यों की विकृत आकृतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं।

इस संकट का सबसे बड़ा कारण विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले नये-नये अविष्कार है जो एक ऐसी तकनीकि क्रान्ति का पोषण कर रहे हैं, जिसके तीव्र वेग का साथ देने में मानव असमर्थ है। आज विश्व मानव के विचारों को गति से भी अधिक तीव्रता से परिवर्तित हो रहा है, और उसके पास न अवकाश हे न ही समर्थ्य कि वह इस यांत्रिक गति का साथ दे सके, या इस पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके या, इसको अपना साधन बना सके।

मशीन का पहिया स्वचालित शक्ति द्वारा घूम रहा है, और हमारे हाथ शरीर और मस्तिष्क उसकी लपेट में आ गये हैं।

स्थिति इतनी हास्यास्पद हो चुकी है, कि मशीन आपको बतायेगी, कि आप किस प्रकार की लड़की से प्रेम कर सफल वैवाहिक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। "यदि मशीन दर मशीन की यह व्यवस्था किसी तकनीकि खराबी, मानव मजाक या मूर्खता के कारण टूट जाये या ठहर जाये तो हमें यह जानकर कितनी निराशा होगी कि हम पाषाण काल के मनुष्य से भी ज्यादा बेबस कमजोर और लाचार हो जायेंगे।"[१]

परमाणु विस्फोट के आतंक के साये में सांस लेने वाले ऐसी निराशाओं और अनिश्चितताओं से परेशान है, जिसने कि मनुष्यों और मृत्यु की अवधारणा को ही बदल दिया है। विज्ञान के नित नये अविष्कारों और उन्नति ने आर्थिक व्यवस्थाओं को भी परिवर्तित कर दिया है, शहरों में नये-नये उद्योगों के कारण और गांव के व्यक्तियों का शहरों को पलायन करना तंग और गन्दी बस्तियों में रहने की मजबूरी बन गई है। अगर आज इसी प्रकार से जनसंख्या में वृद्धि होती रही तो शायद कुछ शताब्दियों में न मनुष्य को रहने, और न खाने को कुछ बचेगा। इन भीड़ भरी बस्तियों के लिए "फ्रंट पीस" के तौर पर नये-नये ऊँचे भवनों को बनाया जा रहा है, परन्तु घर समाप्त हो रहे हैं, लेकिन मानसिक तौर से और दिलों से दिलों की दूरियां बढ़ रही हैं, सड़कों पर मनोरंजन स्थलों में एक दूसरे के करीब हो रहे है। इसी से उनके जीवन का संकट बढ़ रहा है। महानगरों में व्यक्ति गुमनाम-अन्जाने ही भटकते रहते हैं, न उनका कोई मित्र है, न सगा सम्बन्धी वे अकेलेपन से जूझ रहे हें, अन्धी गलियों में भटक रहे हैं, समस्या केवल यही नहीं वे बाहरी जगत के दबाव के कारण अपने व्यक्तिगत जीवन को कैसे सुरक्षित रखे, और अपने अकेलेपन आन्तरिक भय और वेदना से मुक्ति पा सके, परिवेश की इन संवेदनहीन तथा दारूण परिस्थितियों में फंसा व्यक्ति अपने अन्तःकरण की शान्ति के लिए छटपटाता रहता है, उसे वैज्ञानिक अविष्कारों के आकाश कुसुम, राजनैतिक आश्वासनों की मृग मरीचिकायें तथा टूटती नैतिकताओं

और सुलगते जीवन मूल्यों का धुंआ मिलता है, जिससे उसकी सामाजिकता और पारिवारिकता उसके भीतर जिजीविषा की पुरूषार्थ परक-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-की सम्प्रेरणा नहीं प्रदान कर पाती।

बड़े --बड़े उद्योग धन्धों, राजनैतिक दलों और जन प्रसारण के साधनों को बड़ी हद तक खत्म कर दिया है और अवैयक्तिक रिश्तों को जन्म दिया है। बड़े-बड़े औद्योगिक और सामाजिक संगठनों का वास्तविक स्वामी दूर-दूर तक प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता, लेकिन उसकी रहस्यमयी सत्ता प्रत्येक स्थान पर मौजूद रहती है। जिसकी देख-रेख में समाज के प्रत्येक व्यक्ति को शोषण परक परतन्त्रता प्राप्त होती है। मनुष्य आत्महीन मशीन के पुर्जे से अधिक महत्व नहीं रखता।

आज शब्द अपने अर्थ बदल चुके हैं, युद्ध अशान्ति है, झूठ असत्य है, ज्ञान अज्ञान है, मस्तिष्क और आत्मा को सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आवश्यकताओं के अनुकूल विज्ञान व्यवस्था और विज्ञापन के भिन्न साधनों से ढालना आज के युग की विशेषता बन चुका है। मनुष्य यह महसूस करने लगा है, कि वह किसी रहस्यमयी शक्ति और क्रिया के अन्तर्गत अपने व्यक्तित्व और विचार बदल रहा है। विचारों का अर्द्धचेतन परिवर्तन और मानसिक अनुकूलता मनुष्य के स्वतंत्र अस्तित्व को समाप्त कर रही है, प्रचार, विज्ञान, बुद्धि पर नियंत्रण करने वाली दवाओं, ड्रग्स और व्यवस्थित संगठनों के विरुद्ध व्यक्ति के स्वातन्त्र और अस्तित्व को फिर से स्थापित करने के लिए आधुनिक साहित्यकार अपनी रचनात्मक प्रतिभा का प्रयोग कर रहे हैं और सांस्कृतिक प्रतिकूलता के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं।''[२]

आज व्यक्ति भीड़ में खो गया है, वह एक पात्र बन गया। हम एक आकृतिहीन सभ्यता में सांस लेने के लिए मजबूर हैं, हमारा युग वैयक्तिकता को स्वीकार नहीं करता। वह निष्क्रयता और अतिबद्ध विचारों को स्वीकार करता है, क्योंकि जनप्रसारण द्वारा जिन विचारों का प्रचार किया जाता है वे मूलता सामाजिक विचार है, साहित्य की छोटी-२ पत्रिकाओं

की मौत का कारण भी सामूहिक संस्कृति का यह राक्षस है जो हर चीज को व्यापारिक पैमाने पर लाकर उसके तत्व को नष्ट कर देता है इसलिए साहित्य और कला में जब भी कोई नया आन्दोलन शुरू होता है उसका कारण छोटी पत्रिकायें ही होती है, सामूहिक संस्कृति व्यक्ति की रचनात्मक शक्ति को नष्ट कर देती है। साधारण लोग बगैर किसी प्रश्न, शंका और आलोचना के इसे स्वीकार कर लेते हैं, 'मनुष्य केवल भीड़ में ही खुश रहता है, जब तक उसका विचार भीड़ का विचार या उसकी क्रिया भीड़ की क्रिया है उसके लिए सब कुछ एक समान है कि भीड़ में कितनी निर्रथकता है, या कितना कपट है यही कारण है, कि मनुष्य सत्यता के विचार को भी बदल देता है। सत्यता का अभिप्राय है भीड़ के साथ चलना।'[3] जब मनुष्यों का एक बड़ा भाग अपने जीवन मूल्यों को मनुष्यों की विशाल और असम्बद्ध भीड़ से निश्चित करेगा तो वह अरक्षित होने के एहसास, चिन्ता, निराश, भय और अर्कमण्यता का शिकार बन जायेगा। सामूहिक रवैये और जन प्रसारण से निरन्तर प्रभावित होने के कारण व्यक्ति एक सामूहिक और अस्थिर बुद्धि का स्वामी बनता जा रहा है, 'ये परिस्थिति मानव प्रकृति को अमानवीय बना रही हैं, और ये मानव जाति को इतनी ही सफलता से नष्ट कर देगी, जितनी सफलता से एक परमाणु अस्त्र समस्त संसार का ध्वंस कर सकता है। मानव जाति को खत्म किये बिना ही उसको मानवीय तत्व को नष्ट किया जा रहा है।'[४]

विज्ञान और मनोविज्ञान के बढ़ते हुये चरणों में धर्म और नीति के परम्परागत विचारों को कमजोर कर दिया है। धर्म और नीति के सापेक्ष सिद्धान्त अधिक लोकप्रिय है, जिस प्रकार विज्ञान ने जादू टोने और टोटके को खत्म किया उसी प्रकार बुद्धिवाद ने अपने तर्कों से धर्म के बहुत से विचारों को खत्म कर दिया है। आज हमारे जीवन में रुढ़िवादी विचार, अंध विश्वास के बावजूद धर्म का महत्व बहुत कम रह गया है, सिवाय एक भयभीत परम्परा विश्वास के, जिसका महत्व मनुष्य के जीवन में बहुत कम, लेकिन धर्म का स्थान किसी नये माध्यमात्म वाद ने नहीं लिया। ईश्वर मर गया है, नीत्से पहले ही घोषणा कर चुका है, कि ईश्वर

मर गया है, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान ने धर्म और बुद्धिवाद को ही त्याग दिया है, विश्व जनीन प्रकृति और मानव और व्यवहार का सिद्धान्त अब लोकप्रिय नहीं है, इसलिए व्यक्ति और समूह की हैसियत का अध्ययन करने की जरूरत को, अब साहित्य में गहरे तौर पर महसूस किया जाने लगा है। फ्राइड और फ्रेजर की कृतियां इस बुद्धिवाह को खत्म करके मनुष्य की नियत्तववाद और अवचेतन की दासता को सुदृढ़ बनाने में बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं।

मूल्यों के क्षेत्र में संस्कृति का यह संकट अधिक स्पष्ट है, स्थिर और अटूट मूल्य अर्थहीन हो चुके हैं। परम्परागत मूल्य अर्थहीन ही नही अनावश्यक और असंगत भी लगने लगे हैं। मूल्यों का यह संकट इस हद तक तीव्र हो गया है कि लेखक किसी भी राजनैतिक या सामाजिक आदर्श के लिए संघर्ष करने के बजाय अपराध बलात्कार, समलैगिंक सम्बन्धों , हिंसा और हत्या को साहित्य का विषय बनाने में अपनी रचना प्रक्रिया का प्रयोग करने की परम्परा जोर पकड़ती जा रही है। इस प्रकार का रचनाकार बड़े गर्व से कहता है कि वह बिना आदर्श का विद्रोही है। ऐसे लेखक बीटस की तरह इस बात को स्वीकार करते हैं कि जो वह अनुभव कर रहे हैं वह अपने अपरिपक्व रूप में कितना ही बर्बर कामोत्तेजक और अनैतिक क्यों न हो उसे प्रस्तुत करना साहित्यिक जरूरत है। आद्रेजीत ने ठीक ही कहा है कि जिसके पास अपने आप के सिवा कोई आदर्श न हो वह भयानक शून्य का शिकार है विज्ञान और विशेष रूप से जीव शास्त्र और गर्भनिरोध के ज्ञान में यौन मूल्यों के क्षेत्र में आश्चर्यजनक परिवर्तन ला दिया है। गर्भ निरोध के नये-नये तरीके और प्रचार यौन स्वतन्त्रता, प्रेम के सम्बन्ध में बदलते विचार परिवार और वैवाहिक सम्बन्धों को नई दृष्टि से देखने को विवश कर रहे हैं। किसी ने ठीक कहा है कि 'डार्बिन ने मुनष्य को पशु का शरीर दिया और फ्राइड ने पशु की काम प्रवृत्ति मनुष्य इस नये ज्ञान की रोशनी में प्रचलित मूल्यों को त्याग रहा है। थालीडोमाइट के इस्तेमाल ने एक नई समस्या खड़ी कर दी है कि करुणा जनक हत्या क्यों उचित नही है। कृत्रिम गर्भधान ने न केवल परिवार और विरासत के कानूनों को ही बल्कि पारिवारिक जीवन के मूल्यों को ही बदल

दिया है।'[५] इस संकट की स्थिति में लेखक क्या करें? लेखक का दायित्व है कि वह इस व्यवस्थित संगठन जनप्रसारण, व्यापारी व्यवस्था और निर्धारण और यांत्रिक पतन के मुकाबले में व्यक्ति के संकल्प और व्यवहार की स्वतंत्रता, मानसिक सन्तुलन और नये मूल्यों की चेतना का प्रसार करें ताकि न अन्धी सामूहिकता का शिकार हो न आत्मरति का इससे पहले शायद कभी इतनी जरूरत नहीं थी, कि लेखक अपने साहित्य को अपने युग की परिस्थितियों से जोड़े, जो साहित्य मानव संघर्ष और मूल्यों से अलग होकर रचा जाता है – वास्तव में परिस्थिति के सामने आत्मसर्मपण और आत्म प्रवंचना के सिवा कुछ नहीं है। ऐसा साहित्य निराशापूर्ण पलायन है, जिसे दर्शन का नाम दिया जाता है। सभ्यता के किसी भी युग में लेखक के लिए साहित्य को विचारों का साधन बनाकर प्रस्तुत करने की जरूरत इतनी अधिक नहीं थी, जितनी कि आज है। साहित्य की पहली शर्त है कि वह मानव चेतना का चित्रण करे और पूर्ण यथार्थ को अपने अन्दर समेटे।

इसीलिए महत्वपूर्ण आज की कृतियों में जीवन दर्शन पर बल दिया जाता है, इसी अवस्था में हम संकट की स्थिति की चुनौती को स्वीकार कर सकते हैं और मनुष्य और जीवन की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत कर सकते हैं। दूसरी सूरत में अपनी स्वतंत्रता को त्याग कर सभ्यता के पतन का ही शिकार होना है। यह वह प्रश्न है, कि जिसका उत्तर शिवानी सभेट हर लेखक को देना है और इसका जबाब दिये बगैर साहित्य की रचना केवल एक भ्रान्ति और निर्थक शगल है – 'परमाणु युग में सृजनात्मक साहित्यकार को अपनी जिंदगी खतरे में डालकर भी स्वतंत्रता के लिए लड़ना पड़ेगा। उसे यह युद्ध इस लिए नहीं लड़ना पड़ेगा, कि वह विजयी होगा बल्कि अर्थ अनुकूलता के शिकार लोगों के प्रेरणा प्रदान करने के लिए भी उसे इस संघर्ष में शामिल होना पड़ेगा।'[६]

जो लोग आज बहुत आधुनिक हैं, वे मूल्यों के विरुद्ध विध्वन्सात्मक बातें करते हैं। इसलिए मूल्यों का संकट मूल्यहीनता एवं मूल्य शून्यता हो जाती है और वे जो केवल आधुनिक हैं वे मूल्येत्तर या मूल्य निरपेक्ष साहित्य के सृजन का नारा देते हैं, तब एक प्रश्न उठता

है कि आखिर ऐसा क्या हुआ, कि मूल्य संकट के बारे में हमें एलान करना पड़ रहा है। नीत्से ने कहा, कि ईश्वर की मृत्यु हो गई और मानव ने ही उसकी हत्या कर दी । ईश्वर में मानव की आस्था नहीं रह गई, समस्त मूल्यों का भ्रम खुल चुका है। अब कोई ऐसा मूल्य नहीं है जो खंडित होकर शहरों की गन्दी नालियों और सड़कों पर सड़ते हुए न मिल जाये। हर चेहरे पर चेहरा है, कहने और करने में अन्तर बढ़ता जा रहा है। हर ओर धोखा मक्कारी है, मनुष्य असुरक्षित है जो कुछ भी है वर्तमान ही है, वह एक छण जिसमें हम जीवित हैं। इसलिए तात्कालिक अनुभव जिसमें हमारा समस्त व्यक्तित्व शामिल है, जो खासतौर पर जैसा कि वह है और जैसा हम उसे महसूस करते हैं, प्रमाणिक है साहित्य का सही विषय यही है, क्षणवाद के इस दर्शन में जीवन और सृष्टि के किसी 'कासमिक' तत्व को शामिल करने का अभिप्राय है आधुनिकता के लेवल से बंचित हो जाना क्योंकि यह स्थिति 'एब्सर्ड' है और शब्द निरर्थक मनुष्य की नियति है। शून्य में भटकना निरुद्देश्य, दिशाहीन साहित्य इस शून्यवाद की इस अर्थहीन स्थिति को व्यक्त करने के लिए विवश हैं। हम एक अच्छी गली के अन्धेरे में भटक रहे हैं। हमें नहीं पता कि क्या सुन्दर है और क्या असुन्दर है और क्या शुभ है क्या अशुभ। सत्य-असत्य का भी ज्ञान नहीं है हमें उसका निर्णय करने के लिए, हमारे पास कोई संहिता नहीं है। यह परिस्थिति ऐसी है, कि हम अपने आपको केवल व्यंग्य का निशाना बना सकते हैं या मजाक कर सकते हैं। आज कोई ऐसा आदर्श नहीं मिलता जिसके लिए जीवन दिया जा सके या संघर्ष किया जा सके।

आज हम सभी इतनी बड़ी और विकृत दुनियां में सांस लेने पर मजबूर हैं जिससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। सभी अन्जाने और पराये हैं इस भीड़ में मनुष्य अकेला है। विनाश का खतरा हमारे सिरों पर मड़रा रहा है। इसीलिए कहा जाता है, कि आज का साहित्य संकट का साहित्य है; जिससे हिस्टीरिया चीख पुकार और अराजकता की भरमार है। केवल वही साहित्य सच्चा प्रमाणिक है जो हमें इस एब्सर्ड और असहनीय परिस्थिति का बोध दे सकता

है। आज हम युग को ही नहीं बल्कि स्वयं को भी पहचानना है और जब हम अपने को जान पाते हैं तो पता चलता है, कि हम स्वयं एकदम अकेले हैं। हम अपनी सोच और प्रत्येक कार्य के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। इससे जो संत्रास उत्पन्न होता है हम केवल उसका ही वर्णन कर सकते हैं। इसमें मूल्यों का प्रश्न ही नहीं उठता।

अतः आज के साहित्य संत्रास, निरर्थकता, नैराश्य और मृत्युबोध का साहित्य है, जो केवल जीवन के वीभत्ससय और विकृत पहलुओं को ही प्रस्तुत कर सकता है। मनुष्य न तो सृष्टि का केन्द्र है और न ही सर्वोच्च प्राणी, न वह ईश्वर का छाया है और न असुरों की लाल रक्षक सेना का सदस्य। ब्रेख्त यह घोषणा कर ही चुका है, कि मनुष्य की मृत्यु हो चुकी है और वह इसका साक्षी है। जब ईश्वर मर चुका है तो मनुष्य की भी शेष रह गया - पशु और पशुओं का मूल्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'गर्विन और फ्रायड यह सिद्ध कर ही चुके हैं, कि मनुष्य पशु के विकसित शरीर और मानस का ही नाम है।'[७] फ्रायड ने हमें अवचेतन और अंधी प्रवृत्तियों का दास बनाया और हमारी प्रत्येक क्रिया का कारण बताया यौन प्रवृत्ति को - और सभी विकृत रूप में, जो किसी मूल्य को स्वीकार नहीं करते उनका अस्तित्व मूल्य निरपेक्ष होता है। मूल्य से अलग होकर कोई भी रूप हो सकता है-डाकू, लुटेरा, हत्यारा, दलाल, वेश्या, समलैंगिक, व्यभिचारी, आत्मरति का शिकार अपराधी। जब विज्ञान मनोविज्ञान और दर्शन द्वारा मनुष्य को पशु सिद्ध कर दिया गया है, तो यह नारा लगाया गया, कि यह युग मूल्यहीनता का युग है।

वस्तुतः युगबोध ही उपर्युक्त प्रभविष्णुता से अक्रान्त ऐसे लेखक एक नये प्रकार की बर्बरता को जन्म दे रहे हैं, जिसमें मनुष्य की अन्धी प्रवृत्तियों कच्चे अनुभवों और निष्कृठ भावनाओं की अभिव्यक्ति को युग यथार्थ के नाम पर प्रस्तुत किया जा रहा है। अपराध कामुकता, स्वार्थ और यौनविकारों की दास्तान को आधुनिकता के नाम पर बार-बार दोहराया जा रहा है। जब प्रेम अर्थहीन और अप्रमाणिक है, तो जननेन्द्रिय द्वारा प्राप्त किया हुआ

अनुभव ही सत्य और प्रमाणिक है। मनुष्य का सारा शरीर जननेन्द्री में सिमट गया है और जननेन्द्री फैलकर शरीर को निगल गई। मन मस्तिष्क और आत्मा समेत मनुष्य के सारे शरीर को जननेन्द्री समझकर प्रत्येक क्रिया को अवचेतन का दास और यौनप्रवृत्ति का शिकार बनाकर प्रस्तुत कर किस प्रकार का युग बोध है। जननेन्द्रियां और काम क्रीड़ा में यह रुचि एक नये 'कल्ट' को जन्म दे रही है। जिसे टीन एजर्स का आन्नद-प्रवृत्त-भोगवाद कहा जा सकता है। कल तक दिल चस्वी आदि वैश्याओं तक सीमित थी तो उसे आज इस हद तक फैला दिया गया है, कि हर नारी वैश्या का रूप धारण कर गई है। पत्नी भी वैश्याओं के इस समूह का हिस्सा है।'[८]

शिवानी के युगीन परिवेश में विरचित साहित्य भी यौन के इस विकृत रूप से असम्पृक्त नहीं है। भोगवादी चेतना उपभोक्तावादी अपसंस्कृति तथा अपनी मूल्य संस्कृति से अलग होकर पाश्चात्य संस्कृति की ओर उड़ान ऐसी बजहें हैं, जिससे मानव की सभ्यता की तहों में प्रदमित वृत्तियां पुनः फन उठाये नागिन की भांति दंश के लिए उद्धत हैं। यह अदम्य भोगेच्छायें मानव को पाशववृत्ति से लिप्त आदिम काल के मनुष्य की ओर लिये जा रही हैं। इस स्थिति में अधोप्रस्तुत विचार स्वागत योग्य ही लगते हैं - 'संभोग में ऐसा कुछ नहीं, जिसे निजी आन्तरिक और असाधारण कहा जाये बल्कि ये क्रिया मनुष्य को पशु के स्तर पर ले जाती है। इन्द्रीजन्य आकर्षण किसी व्यक्ति के आन्तरिक सौन्दर्य को बल्कि उसे वस्तु बनाकर सौन्दर्य बोध को और भी अधिक कमजोर कर देता है। संभोग प्रेम की 'सामूहिक' और 'वस्तुगत' स्थिति है। यह सब जगह एक जैसा ही होता है। इसमें निजी कुछ भी नहीं है, जबकि प्रेम निजी अस्तिव और वैयक्तिकता की स्थिति है। यह मानव आत्मा की स्वतंत्रता का संदेश है।'[९]

आधुनिक साहित्यकारों में एक सैद्धान्ति दोष भी है जब वह यह कहते हैं कि हमारा साहित्य हमारे युग का सही चित्र है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि साहित्य और जीवन का गहरा सम्बन्ध है। इसको वे भी नहीं नकार सकते जो ये कहते हैं, कि हमारा समाज और जीवन से सरोकार नहीं, ये एक नारा है। लेकिन इस अर्थ में सम्बद्ध नहीं, जिसमें आधुनिक युग

के तथाकथित प्रगतिशील लेखक समझते रहे हैं लेकिन जो लेखक यह कहते हैं, कि वह अपने युग का चित्रण करते हैं; वगैर किसी मूल्य आदर्श और भावुकता के समावेश के वे कला आइने और कैमरे के भेद को नजर अन्दाज कर रहे हैं।[१०]

यदि यह युग 'फ्रस्टेशन' का है तो ये कोई कारण नहीं कि हम फ्रस्टेटिड होकर लिखेंगे या इस दौर में कन्फ्यूजन हैं तो लेखन कन्फ्यूजड होकर लिखेगा। कला सृजनात्मक क्रिया है अनुकरण नहीं, वह रिपोर्ट भी नहीं है वह केसोहिस्ट्री भी नही। युग साहित्य की विषय वस्तु उपलब्ध करता है, उसे कृति के सांचे में ढालना और कलात्मकता से प्रस्तुत करना लेखक की प्रतिभा और सृजनात्मक शक्ति की परीक्षा है। इस सम्बन्ध में आधुनिक साहित्य के बदनाम लेखक जयने तक ने स्वीकार किया है –'काव्य इसी में है कि ज्ञान गन्दे विषय वस्तु को भाषा द्वारा उस रूप में प्रस्तुत किया जाये। जिसे उत्कृष्ठ कहा जाये यदि मेरी पुस्तकों में कामोत्तेजना उत्पन्न होती है तो वे बुरी तरह लिखी गई हैं, क्योंकि काव्य प्रवृत्ति इतनी शशक्त होना चाहिए कि पाठक में कामुकता उत्पन्न न हो। कला का प्रयोजन प्रमाणिक शक्ति और सुन्दर कृतियां प्रस्तुत करना है। प्रमाणिक करना है ताकि मनुष्य की चेतना को सीमातीत विस्तार दिया जा सके।"[११]

युगीन परिवेश में व्याप्त न्यूनताओं विसंगतियों व्यभिचार, भ्रष्टाचार विकृत कामाचार, कदाचार को शिवानी ने भी देखा सुना और सहा होगा। अस्तित्व के इस झंझावात में वे मानवीय चेतना को शुभत्व और ज्योर्तिमयता से जोड़े रखना चाहती है। उनकी अंगुलियों में थमी लेखनी यद्यपि युगीन परिवेश में अवांछित विद्रूपों के हलाहल में भी डूबती हैं, किन्तु प्राणवन्त जिजीविषा मूल्यवत्ता नैतिकता और आन्तरिक पवित्रता के पीयूष-पान से भी उनकी लेखनी वंचित नहीं रही। उनकी रचनाओं को पढ़कर पाठकों को एक स्वागत योग्य संन्देश प्राप्त होता है, कि वास्तव में साहित्य 'अस्वीकृति' नहीं बल्कि इस व्यापक 'अस्वीकृति'के क्षेत्र में स्वीकृति की ध्वनि है – नये मूल्यों का अन्वेषण और इनकी फिर से स्थापना करना एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान है जिसे समाज के बहरे गूंगे स्वार्थरत शक्ति तत्व नकार चुके हैं।

सन्दर्भ सूची

.१ - चौदह फेरे , शिवानी पृ० ६।

२ - कृष्णकली, पृ० १९।

३ - पूतोंवाली, पृ०

१ - साहित्य और युगभूत, देवेन्द्र इस्सर, पृ० २

२ - जॉर्ज आवेल न्यूस्पार्क , पृ० १४

३ - कीर्क गार्ड ह्यूमन एण्ड ट्रूथ, पृ० ६६

४ - टामन बी स्टार्म अगेन्स्ट हमेनिटी , पृ० ६८

५ - साहित्य और आधुनिक बोध, देवेन्द्र इस्सर, पृ० ७-८

६ - आर्नल्ड टायन बी इन्सप्रेशन एण्ड लिटरेचर पृ० १०४

७ - साहित्य और आधुनिक , देवेन्द्र इस्सर, पृ० १५

८ - शेवर लेन - प्लेजर एण्ड बिल्शन, पृ० १२५

९ - वर्दयक लस्ट एण्ड लव, पृ० ६८

१० - साहित्य और युग बोध, देवेन्द्र इस्सर, पृ० १७

११ - क्रियेशन - जयने, पृ० ८६

तृतीय अध्याय

साहित्यिक सृजनधर्मिता और जीवन मूल्य

(क) साहित्य और युगीन सन्दर्भ

(ख) उपन्यास और जीवन मूल्य

साहित्यिक सृजनधर्मिता और जीवन मूल्य

साहित्यिक सृजनधर्मिता पर भारत और पश्चिम में दीर्घकाल से वैचारिक मंथन चल रहा है। मानव मस्तिष्क की बहुस्तरीय जटिलता के कारण मृजन प्रक्रिया को रहस्यमय और विलक्षण माना जाता रहा है। आज की यह सम्प्रति सृजनधर्मिता का शरीर विज्ञान के आधार पर अध्ययन करने वाले विद्वान उसका प्राय: यांत्रिक विश्लेषण करते हैं। मनोवैज्ञानिक सृजन धर्मिता पर अपनी विचारधारा मनोधरातल पर अभिव्यक्त करते हैं। इस सम्बन्ध में दार्शनिकों की प्रवृत्ति अलग प्रकार की, काव्य शास्त्रियों की अलग तथा साहित्यकारों की अलग प्रकार की प्रक्रिया है।

छठी शताब्दी के भारतीय आचार्य भामह ने काव्य हेतु पर विचार करते हुए प्रतिभा को काव्य हेतु कहा है। आगे के प्राय: सभी भारतीय आचार्यों में काव्य हेतुओं में 'प्रतिभा' को प्रधान माना है। प्रतिभा वह विशिष्ट अंत: शक्ति है, जिसमें उद्भावना और रचना की महान क्षमता होती है। भारत के प्रख्यात मनीषी अभिनव गुप्त के अनुसार प्रतिभा और सृजन शक्ति आलौकिक है, हर समय इसे पैदा नहीं कर सकता। भारतीय विचारधारा साहित्यकार की तुलना प्रजापति से करती है। सृजन प्रक्रिया पर पश्चिम में भी काफी विचार हुआ है। प्रसिद्ध विचारक प्लैटो ने भी कवि में दैवी शक्ति का होना स्वीकारा है। इस प्रकार के विचार प्रतिभा को ही लेकर उठे हैं।

वस्तुत: सृजन प्रक्रिया एक जटिल और संश्लिष्ट प्रक्रिया है, जिसमें चेतन-अवचेतन दोनों का योग होता है। दोनों का परस्पर सहयोग रचना को अर्थ और मूल्य प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति रचनाकार नहीं हो सकता। इससे सिद्ध होता है कि रचनाकार में 'कुछ' ऐसा 'विशिष्ट' होता है जो उसे सर्जक बनाता है। अस्तु इस 'कुछ ऐसे विशिष्ट' को ध्यान में रखकर ही सृजनधर्मिता के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से निष्कर्षपरक कुछ भी कहा जाना जटिल है।

सृजन ने सर्जक को अपनी और दुनिया- दोनों की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लगाया है। दोनों के अर्थ और मूल्य की खोज करता है। ये खोज ही रचना का गहरा आन्तरिक कारण है। सार्थकता की खोज मतलब अर्थ की खोज अर्थ यानि जीने का अर्थ, चीजों का अर्थ इस अर्थ की तलाश रचना का कारण है। अवश्य ही यह तलाश रचनाकार करता है। पर क्या मात्र अपनी निजी सार्थकता की? क्या उसकी सार्थकता शेष संसार के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी नहीं है? क्या रचनाकार के हाथों से निकलकर पाठक की नहीं हो जाती और क्या वह पाठक को भी अपना अर्थ तलाशने के लिए प्रेरित नहीं करती? मैं कह सकती हूँ कि रचना का जन्म जिस खोज में होता है वह सम्पूर्ण अन्तर बाह संसार की सार्थकता की खोज है। साहित्य रचना की साहित्य रचना के प्रेरणाश्रोत अर्थ की तलाश का आयाम अति विस्तृत है। इसकी प्रमुख अन्र्तधारा के रूप में जीवन मूल्यों का ज्योतिर्मय प्रवाह है। केवल युगीन यथार्थ को ही व्यक्त करना साहित्य का धर्म नहीं है, प्रत्युत युग को परिष्कृत करने, युग में मूल्यवत्ता और नैतिकता को सुगुम्फित करने की उद्दग्र संरचना साहित्यकार का वास्तविक धर्म है।

(क) साहित्य और युगीन सन्दर्भ -

आज का युग विज्ञान, औधोगिक प्रगति और राजनीति का युग है या एक व्यस्त और सक्रिय युग है। समय इतना तेज कभी नहीं रहा आदमी की दृष्टि इतनी उपयोगितावादी कभी नहीं रही। आदमी अपने प्रति इतना जागरुक कभी नहीं रहा। आदमी-आदमी के बीच इतनी तीखी प्रतिद्वन्दिता कभी नहीं रही। धर्म और ईश्वर ने पुराने आदमी को अपने अंकुश में स्थिर रखा था। आज न कोई धर्म है, न ईश्वर और न कोई परम सत्य विज्ञान के जागरूक समय में आज का आदमी यर्थाथवादी है। वह कुछ ठोस में विश्वास करता है। यह कर्मो का तात्कालिक फल देखना चाहता है लम्बे रास्तों में न उलझकर शार्टकट में विश्वास रखता है।

विज्ञान और राजनीति का प्रत्यक्ष प्रभाव युग को अतिशीघ्र अपने नियंत्रण में कर सकता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि युग के लिए साहित्य निष्प्रभावी है। इतना जरूर है कि साहित्य का प्रभाव यकायक नहीं, शनैः-शनैः पड़ता है। किन्तु यह प्रभाव गहन और दूरगामी होता है। दिक् और काल के बीच लिखित शब्द अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होते हैं किताब का मतलब केवल कागज का पन्ना नहीं है, वह एक इतिहास है, एक आन्दोलन है, समाज का उत्थान और पतन है। लिखित शब्दों के सहारे ही हम अनुभवों की दुनियां में थोड़ी देर रुक कर सोचने को विवश होते हैं। वस्तु जगत में आहिस्ते-आहिस्ते प्रवेश करते हैं। सोलजेनिष्टीन के शब्दों में - ''शब्द किसी देश की जीवित यादगार होते हैं, जो कि उस देश की आत्मा को सुरक्षित रखते हैं।''

रचना का समाज पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है, वह समाज को बदलती है उसका अस्त्र विशेष प्रकार का है, वह गोली के द्वारा एक बर्बर दुनियां को बदलकर एक हिंसात्मक संसार का विकल्प प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि एक सार्थक भाषा के द्वारा एक सौन्दर्यप्रिय सुखद संसार का उदाहरण प्रस्तुत करती है-''हू इफ नॉट राइटर्स आर टू पास जजमेंट, पॉट ओनली ऑन देयर अनसक्सफुल गवर्नमेंट.... बट आलसो ऑन दा पीपुल देम सेल्वज? बी शैल बी

टोल्ड : ह्वाट कैन लिटरेचर पासिब्ली डू एगेंस्ट द रूथलेस ऑनस्टॉल आफ ओपेन ह्वायलेंस? वट ह्वायलेंस फाइंड्स इट्स ओनली रिफ्यूज इन फाल्सहुड, फाल्सहुड इट्स ओनली सर्फोट इन ह्वायलेंस .... राइटर्स एण्ड अर्टिस्ट्स कैन कांकर्स फाल्सहुड। इन द स्ट्रगल विद फासहुड, आर्ट ऑलवेज डिड बिन। वन वर्ड ऑफ ट्रुथ शैल आउटवे द होल वर्ल्ड।''[२]

साहित्यकार का रचना-दायित्व और उसका सामाजिक दायित्व दोनों एक दूसरे में घुले-मिले होते हैं। वह अपनी रचना के प्रति जितना प्रतिबद्ध होता है, उतना ही अपने चारों ओर की जिंदगी के प्रति भी अन्दर और बाहर के दोनों ही संसार उसके लिए एक हो जाते हैं। अन्दर की उपेक्षा यदि साहित्यकार को एक प्रकार के सस्ते प्रचार की ओर ले जाती है तो बाहर की उपेक्षा उसे एक प्रकार के कलावाद की ओर ये दोनों ही साहित्यिक छद्म हैं। साहित्य सृजन नहीं होता। वह एक विवेक का नाम है। प्रतिभा भले ही जन्म से प्राप्त नहीं होता वह अदृश्य चीजों को देखते हुए वह दृश्य जगत के बीच चीजों को देखते हुए, उनके आपसी सम्बन्धों की छानबीन करते हुए, उनकी तुलनात्मक पहचान करते हुए विकसत हुआ करता है। यह निर्भ्रान्त विवेक ही लेखक की ईमानदारी है। समकालीन वास्तविकताओं के प्रति जागरूक ईमानदारी ही जागरूक लेखक का दायित्व है और यही जन संघर्ष में सक्रियता भी।[३]

आज साहित्य पर साहित्येतर शक्तियों का दबाब इतना बढ गया है, उतना शायद कभी नहीं रहा। यह साहित्य के लिए बहुत खतरनाक बात है। उग्रपंथी राजनीति के साहित्य पर बहुत हावी होने का परिणाम है। पारथ प्रेम समिति में १ जनवरी २००५ को नव वर्ष के उपलक्ष्य में एक गोष्ठी हो रही थी तभी एक प्रबुद्ध व्यक्ति खड़े हुये और कहने लगे कि, एशिया महाद्वीप सुनामी लहरों के प्रलय से त्रस्त है। भारत के भी कई तटवर्ती क्षेत्र भी विध्वंस से उत्पीड़ित हैं और हम यहां साहित्यिक समारोह मना रहे हैं। उनका तात्पर्य यह था कि, ऐसे मौके पर साहित्यिक समारोह अप्रासंगिक है। मैं सोचती हूं सारी दुनिया में और हमारे देश में भी सामाजिक और आर्थिक समस्यायें जटिलतम रूप से उपस्थित हैं। तो क्या साहित्यिक समारोह, साहित्यिक गोष्ठियां,

साहित्यिक बहस अर्थात समस्त साहित्यिक गतिविधियां क्या बन्द हो जानी चाहिए, और क्या कभी ऐसा भी समय आयेगा जब हमारा युगीन परिवेश समस्या शून्य होगा? और तब हम शान्ति से बैठकर विचार विमर्श करेंगे? मेरा अभिमत है कि जब समस्त परिवेश समस्या शून्य होगा (ऐसा सम्भव नहीं है) तब साहित्यिक क्रिया-कलापों का अर्थ क्या होगा। साहित्य इसी लिए तो है कि वह युगीन उचित-अनुचित , सुख-दुख, नैतिक-अनैतिक, स्वीकार्य-अस्वीकार्य की पड़ताल करे और उचित को सुप्रतिष्ठत करे।

कोई साहित्यिक कृति एक असली प्राकृतिक सृष्टि के भीतर ही होती है इसीलिए तो रचना के स्वायत्व संसार की बात की जाती है क्या है यह असली संसार और रचना संसार और क्या दोनों का कोई रिश्ता है? असली संसार का अर्थ उस संसार से है जो प्रकृति या मनुष्य द्वारा रचित ठोस या सूक्ष्म संसार है, इसमें हम हंसते, बोलते, खाते-पीते, जीते और मरते हैं। रचना संचार का मतलब उस संसार से है, जिसे रचनाकार असली संसार के बीच उसी के समानान्तर भाषा में रचना है। अपनी उद्‌भावना शक्ति कल्पना शक्ति अपनी दृष्टि और अपने कौशल द्वारा स्थूल दृष्टि से देखें तो इन दोनों संसारों में कोई अन्तर नहीं है। भाषा में जब हम आकाश या फूल या नदी या पर्वत कहते हैं तो, उसका अर्थ उसी आकाश फूल, नदी, पर्वत से होता है जो असली संसारमय है। फिर भी रचना संसार और असली संसार में एक अन्तर है - प्रसिद्ध यूनानी विचारक प्लैटो ने रचना को समझने में भूल की थी उसने काव्य को प्रकृति की अनुकृति माना था और इसलिए उसे सत्य से दूर कहा था पर काव्य या रचना प्रकृति की अनुकृति नहीं कृति होती है, प्रतिछवि नहीं छवि होती है प्रतिबिम्ब नहीं बिम्ब होती है। यह मुहावरा कि 'साहित्य समाज का दर्पण है' या साहित्य जीवन का प्रतिबिम्ब है एक अधूरा एवं गलत मुहावरा है, दर्पण में तो जो चीजे जैसी हैं हू-व-हू वैसी ही दिखेगी। प्रतिबिम्व भी विल्कुल वैसा ही दिखेगा जैसा बिम्ब पर रचनाकार हू-व-हू। कोई अनुकृति पेश करता है तो वह रचना 'सृजन' 'कृति' किस अर्थ में है? साहित्य समाज का दर्पण या प्रतिबिम्ब न होकर अपने आपमें एक समाज होगा,

एक जीवन होगा और वह निश्चय ही असली जीवन से हटकर होगा। उसी के समानान्तर स्वतंत्र और स्वायत्त।[४]

यह स्वीकृत तथ्य है कि रचना का परिवेश से बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है। परिवेश एक व्यापक शब्द है जो लेखक को चारों ओर से घेरे हुये है प्रकृति-जगत, समाज, मानव-मानवेत्तर, चर-अचर, समपूर्ण जगत लेखक का रिश्ता इन सबसे होता है। उसका अनुभव संसार इन सबको मिलाकर बनता है। अपने लेखन में वह इन सबका उपयोग करता है और परिवेश जैसे विषय पर विचार करते हुए यह समझ लेना होगा कि रचना के सन्दर्भ में लेखक और परिवेश दोनों अपनी -अपनी जगह समान रूप से सच और महत्वपूर्ण है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रचना का एक परिवेश होता है और परिवेश से उसका घनिष्ट रिश्ता भी साहित्यक रचना धर्मिता युगीन सन्दर्भों में असम्पृक्त नहीं रह सकती भले ही उसका रूप घनात्मक या ऋणात्मक हो परिवेश और रचना का रिश्ता एक मिले जुले, घनिष्ट, जटिल रूप में हमारे सामने आता है, सीधे सरल रूप में नहीं, रचना में परिवेश ज्यूं का त्यूं व्यक्त ही होगा, ऐसा नहीं कहा जा सक़ता, वह उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकती है वह परिवेश को अस्वीकार भी कर सकती है।

साहित्यक रचना क्योंकि एक कृति है, अत: उसका परिवेश रचनाकार सृजित करता है। वह अपने वास्तविक परिवेश को अपनी कल्पना और दृष्टि के अनुसार बदल लेता है, यदि वह ऐसा न करे तो उसकी रचना परिवेश का चित्रण मात्र-एक यथातथ्य बयान मात्र होकर रह जायेगी। ऐसी स्थिति में वह रचना ही नही होगी रचनाकार 'यर्थाथ' का हू-व-हू चित्र प्रस्तुत नहीं करता। प्रत्युत यर्थाथ को एक नयेकोण से देखने की दृष्टि देता है यर्थाथ को देखने की अति क्षूक्ष्म और गहरी दृष्टि वस्तुजगत को कला में बदलता है। वास्तविक संसार की रचना में अपने चारों ओर के संसार को जब वह शब्द देने लगता है तो वह एक पुन: रचना करता है। रचनामात्र तत्कालिक प्रतिक्रिया नहीं होती, क्रिया होती है। एक आदमी पीड़ा में चीखता है और दूसरा पीड़ा में गाता है। यह जो पीड़ा में गाता है वही रचनाकार है।[५] इसी लिए रचना एक सृजन है - कोई अदालती बयान या विवरण नहीं।

युगीन सन्दर्भ और साहित्य जैसे विषय पर विचार करते हुए यह समझ लेना होगा कि, रचना के सन्दर्भ में लेखक और परिवेश दोनों अपनी-अपनी जगह समान रूप से सच और महत्वपूर्ण है। परिवेश का अनुभव ही रचना बनता है लेकिन वह अनुभव होता तो लेखक के ही माध्यम से है। साहित्य युगीन सन्दर्भो का इस प्रकार की उपज नहीं होता जैसे गन्ने से चीनी बन जाती है इसमें साहित्यकार को सर्जनात्मक भूमिका बनती है। रचना में युगीन सन्दर्भो का परिबोध साहित्यकार से होकर आता है। अत: साहित्यिक कृति में साहित्यकार के मनोजगत की बुनावट, उसके संस्कार, उसकी कल्पना शक्ति और उसकी दृष्टि का बहुत योग होता है। अगर ऐसा न होता तो एक ही युग और परिवेश में रहने वाले साहित्यकारों की रचनायें भी एक जैसी होती। लेकिन हम पाते हैं कि एक ही समय में और एक ही नगर में रहने वाले साहित्यकारों की रचनाओं में न केवल अन्तर होता है बल्कि प्राय: विरोध भी होता है। प्रेमचन्द्र और जयशंकर प्रसाद की तुलना इस प्रसंग में की जा सकती है। साहित्यकार अपने संस्कार और मनोजगत अपने संस्कार और मनोजगत के अनुकूल युगीन परिवेश से अपनी प्रवृत्ति की चीजें पकड़ लेता है, इसीलिए युगीन सन्दर्भो और परिवेश से साहित्यकार, या उसका निजी मन: लोक कम महत्वपूर्ण नहीं होता। जो लोग यह जानते हैं कि साहित्य परिवेश की उपज होता है उनका यह मानना आधा सच पूरा सच नहीं 'देखना' 'भोगना' 'अनुभव करना' 'रचना' अलग-अलग स्थितियां है। वह देखता, भोगता और अनुभव करता है जरूरी नहीं कि रचना भी करे। रचना और यथार्थ के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना होगा कि यथार्थ एक दृष्टि है जो साहित्यकार में होती है। इसलिए रचना का यथार्थ वो है जो साहित्यकार उसे देता है रचनाकार बाह्य यथार्थ और परिवेश को अपनी सृजन प्रक्रिया में स्वामित्व करके व्यक्त करता है। वो अपने निजी अनुभव को सार्वजनिक बनाता है - अपने सीमित अनुभव को व्यापक बनाता है, यदि लेखक में अपने परिवेश की सही समझ है और साथ ही युगीन सन्दर्भो और परिवेश को अपने भीतर समाहित करने की संवेदनशीलता-सहृदयता है, और रचना कौशल भी है तभी यह श्रेष्ठ रचना को जन्म देता है।

समकालीन युगीन सन्दर्भ – हमारे समकालीन युगीन सन्दर्भ अनेक विसंगतियों से भरे हुये है। साम्प्रतिक परिवेश में व्यक्ति अपनी भीतरी और बाहरी टूटन को चुपचाप सहने पर विवश है। वस्तुत: टूटन की यह प्रक्रिया द्वितीय महायुद्ध से ही शुरू हो गई थी। आज हम टूटन के अन्तिम कगार पर खड़े हैं, आज हर चीज टूट कर विखर गयी है। विश्व विखर गया है राष्ट्रों में राष्ट्र टुकड़ों में और टुकड़े बिखर गये हैं इकाइयों में, उधर समाज बिखर गया है वर्ग, समूह, संस्था, यूनियन और पार्टी में इन सबके बीच एक अद्‌भुद स्थिति में कसा हुआ है, व्यक्ति और व्यक्ति स्वयं आप में अपने ही भीतर बिखर गया है – उसका मन बिखर गया है चेतन, अर्धचेतन, अवचेतन में बिखर गया है। व्यक्ति चेतना बिखर गई है। अहम् में, स्वा में सर्वत्र एक टूटन महसूस की जा रही है, एक टूटन और कुछ नहीं आज की बिखराहट, छितराहट, आकुलता, व्याकुलता और व्यापक अराजकता 'स्वा' को छोड़कर किसी अन्य के नेतृत्व में किसी और के प्रतिनिधित्व में विश्वास नहीं करता। सारा युग व्यक्तिवादी बन गया है व्यक्ति चेतनावादी हो गया है।[६]

समाज के अन्य वर्गों की अपेक्षा मध्यवर्गी व्यक्ति की स्थिति ज्यादा दयनीय है, उसे हर समय पर जीवन से समझौता करके चलना पड़ता है क्योंकि सड़ी गली परम्पराओं और रुढ़ियों की आड़ में तथाकथित इज्जत को ढांपने की उसे आदत सी हो गई है। जिन्दगी से टकराना अब उसके बस की बात नहीं रही लेकिन चाहकर भी वह उससे भाग नहीं सकता, इसीलिए मजबूरन उसे नपुंसकता का वरण करना पड़ता है, वो जैसे दुनियां को धोखे में रखता है वैसे अपने को भी, इसी से वह बहुत आसानी से खरीदा जा सकता है। ऐसी बात नहीं कि, उसकी आत्मा मर गई है, वह अपनी नपुंसकता त्यागना चाहता है। उसकी आत्मा सदैव छड़पटाती रहती है। सभ्यता का झूठा लबादा उतार कर फेंक देना चाहता है परन्तु उसे ओढ़े रहने की निरर्थक गरिमा को त्यागने का साहस उसमें नहीं है।[७]

अब परिवार एक निर्जीव चाहरदीवारी बनता जा रहा है - वह समाज से कट गया है। परिवार समाज का अभिन्न अंग कहलाता रहा है पर आज वह हिस्सा मुख्य अंग का एक समन्वित भाग न होकर धारा के बीच का एक द्वीप बन गया है। परिणाम ये है कि मुख्य धारा इसे सींचने-सहलाने का काम कम, तोड़ने-काटने और ढाहने-घटाने का काम ज्यादा कर रही है।[८]

परिवार के बाहर आफिसों में कैफे या होटलों में सड़कों या बाग बगीचों में हम खुश है कहकहे लगा रहे है तो हमारी खुशी से परिवार भले ही अछूता रह जाये, प्राय: रहता भी है किन्तु जब हम बाहर की जगहों में परेशान होते हैं और फिर जाते है, लताड़ित-प्रताड़ित होते हैं। मायूस-उदास होते हैं, तो परिवार अछूता नहीं रहता हमारी मन: स्थिति उसे पूर्णत: अपनी लपेट में ले लेती है। चाय के प्याले टूटने लगते हैं बच्चों के गाल तमाचों से लाल होने लगते हैं, आंतकित पत्नी कोने में सिमट-सिकुड़ दुबकने लगती है। संक्षिप्त में कहा जाय तो, कितना भी प्रयास करने के बाबजूद बाहरी परिवेश से परिवार अछूता नहीं रहता है।

समकालीन व्यक्ति प्राय: पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति उदासीन है रूढ़ सम्बन्धों के प्रति नई पीढ़ी की आस्था नही है, तमाम सम्बन्ध खोखले होते जा रहे हें। परिवार का सबसे महत्वपूर्ण सम्बन्ध पति-पत्नी का भी आज टूटता जा रहा है। पहले शादी मां बाप द्वारा तय की जाती थी, परिणामत: सम्बन्धों में तनाव आ जाता था लेकिन आज देख पहचानकर भी आन्तरिक सम्बन्धों से बांधा हुआ भौतिक परिवेश के कारण टूटने लगा किन्तु सम्बन्धों का विखराब ग्रामीण परिवेश में उतना अभी नहीं है जितना नगरीय परिवेश में इस विखराव का केन्द्र अर्थ है वस्तुत: महानगरों में मकान की समस्या काफी जटिल हो रही है और सम्बन्धों के विखराव का एक मुख्य कारण रही है। घर का सीमित आकार और दिन व दिन बढ़ने वाली मंहगाई पारिवारिक सम्बन्धों के विखराव में कैसी सहायक हो रही है, यह बात-महानगरों में बसने वाले रिश्तेदारों के घर एक आध दिन रहने पर ही पता चलता है, व्यक्ति चाहकर भी यह विखराव

रोक नही सकता, मजबूरी है अर्थ की बेहद कमी वास्तव में एक अजीव स्थिति का शिकार हो गया है। आदमी वह अकेलेपन से घबराता है, सबके साथ जुड़ना चाहता है, दूसरी ओर वह आत्मीय स्वजनों से मिलने में भी असुविधा भी महसूस करता है। अपनों का यह दुराव-छिपाव आदमी की कोमल भावनाओं को दबा देता है, यह मन्तव्य देने के लिए बाध्य होता है कि मात्र उसका अकेलापन ही अपना है, उसके लिए वही सर्वाधिक सुविधाजनक है।[९]

सभी अपने आप में खोये हुये हैं युवक वर्ग यह कहने को मजबूर हुआ है – 'कितनी अकेली है जिंदगी परिवार तो बस कहने के लिए है, न मम्मी का स्नेह न डैडी का, बड़ा भाई भी अपने में व्यस्त सब अपने में व्यस्त इसी उम्र में भागता है कि, जिंदगी ढोई जा रही है..... परिस्थितिवश व्यक्ति को ना चाहते हुये भी बहुत से कार्य करने पड़ रहे हैं. .. एक घर में रहकर भी सभी अलग हैं संत्रास कुंठा में सड़ रहे हैं सब अकेले भटक रहे हैं, अपने दुख स्वयं झेल रहे हैं, झेल क्या रहे हैं, सिमट-सिमट कर टूट रहे हैं। व्यक्ति सिमट-सिमट कर 'मैं' में बन्द हो रहा है। पूंजीवादी व्यवस्था विज्ञान की संघारक शक्ति और जीवन के बढ़ते हुये अभावों ने व्यक्तिवाद को बढ़ावा दिया है इसी लिए आज का सामाजिक जीव पहला व्यक्ति है। हम अपनी स्वार्थ लिप्साओं की पूर्ति को व्यक्तिगत अधिकार क्षेत्र की वस्तु मानने लगे हैं और इस प्रकार हृदय को झूठा विश्वास दिलाकर प्रवंचित करने लगे हैं – क्योंकि जो व्यकितगत है वह समाज से कहीं टकरायेगा नहीं इसके विपरीत समाज के प्रति सहाय होगा व्यकित आज से स्वयं समझ पाने में असमर्थ है कि जो उसका व्यक्तिगत है उससे जुड़कर किस प्रकार वह सामाजिक संकट का कारण बन गया है।[१०]

वास्तव में व्यक्तिवादी दृष्टि ने ही कुंठा को जन्म दिया है यदि व्यकित की इच्छा पूरी नही हुई तो इसके हृदय में उस वस्तु के प्रति एक आकर्षण की भावना रह जाती है और समय-समय पर ये भावना बदवती हो जाती है और अपना प्रदर्शन करती रहती है। परिणाम यह होता है, व्यक्ति क्रोधी खीज भरी प्रकृति का बनता चला जाता है और अपने पर्यावरण के

साथ तालमेल नहीं कर पाता, अकेला हो जाता है अन्ततः बाहर और भीतर से बिखरने लगता है 'आधे अधूरे' की सावित्री की टूटन इसी प्रकार की है, वह सबको अपने ढांचे में ढालना चाहती है पति को भी अपनी दृष्टि में खरा उतारना चाहती है परिणामतः संत्रास और घुटन में भीतर-बाहर से टूट जाती है।

समकालीन युगीन सन्दर्भ नैतिकता के प्रति भी परिवर्तित दृष्टिकोण वाले हुये है। नैतिकता की संकल्पना सदैव बदलती रहती है। अपने युग का परिवेश सदैव नैतिकता को अपने अनुरूप मोड़ता हुआ दीख पड़ताहै। पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी के आचरण को अनैतिक या जीवन मूल्यों का हनन करने वाला कहती है। वास्तव में नैतिक मूल्यों के विघटन की प्रक्रिया द्वितीय महायुद्ध से पहले शुरू हुई है। स्थापित नैतिक मूल्यों को नकार कर नये नैतिक मूल्यों की स्थापना हर नई पीढ़ी करती है। प्रस्थापित नैतिक मूल्यों को नकारने में जब नव्यता का आग्रह होता है, विवेक रहित बाह्य प्रवाह होता है। तब कुछ अच्छे मूल्य भी टूटने लगते हैं और नैतिक मूल्यों में विघटन की स्थिति आ जाती है।

भोगवादी दृष्टि सबमें पनपने लगी है इसीलिए आज का व्यक्ति भोगवादी प्रवृत्ति की ओर अधिक रूप में झुका हुआ दीख पड़ता है। इसी प्रवृत्ति के कारण पति पत्नी में विखराव की स्थिति और भी बढ़ती जा रही है। स्त्री या पुरुष दूसरे से तृप्त न हो, या उनमें यौनगत समायोजन न हो तो स्वाभाविक है कि तृप्ति की तलाश में उनमें भटकाव आ जाता है यहां से ही पारिवारिक जीवन में 'त्रिकोण समस्या' प्रविष्ठ होती है यौन तृप्ति का प्रयोग हम केवल शरीर तृप्ति के रूप में न कर, मानसिक तृप्ति में भी कर रहे हैं। यौनगत असमायोजन या कुसंयोजन पारिवारिक विखराव का सशक्त कारण साबित हो सकता है।

यौन अतृप्तिजन्य विकृति के कारण स्त्री पुरुष के सम्बन्धों में परिवर्तन आ गया है और साथ ही नैतिकता के परम्परागत मूल्यों का विघटन प्रारम्भ हुआ। पहले विवाह दो जीवों को अपने पवित्र बंधन में बांध देता था। अब विवाह मात्र 'एडजेस्टमेन्ट' बना गया है।

'अविवाहित बिस्तरबाजी में खर्च अधिक है डर ज्यादा है कि विवाह का सर्टिफिकेट मिल जाये तो नपे तुले खर्चे में सुबह से रात तक के सब काम हो जाते हैं।"[११]

नैतिकता को अवाधिक रखने वाला एक प्रमुख केन्द्र परिवारनैतिकता की धारणाओं को तोड़ रहा है। नैतिक आदर्शों को सम्बर्धित एवं प्रसारित करने वाला प्रमुख केन्द्र शिक्षा क्षेत्र, राजनीति और स्वार्थ की दलदल से भरा हुआ है। गुरू के प्रति श्रद्धा आज हास्यापद लग रही है। गुरू और उनकी शिष्याओं के बीच शारीरिक सम्बन्ध भी दुष्प्राप्य नहीं है बेतनधारी गुरू और अपंग बनाने वाली किताबी शिक्षा दोनों के प्रति युवा वर्ग में एक उदासीनता दिखाई पड़ती है।

ऊपरी तौर पर लगता है कि नारी की स्थिति पहले से बेहतर है अब वह घर परिवार के सीमित दायरे से निकल कर वह समाज में अपना स्थान बना रही है, अपने पर हो रहें अत्याचार के प्रति आबाज उठा रही है। अब वह पुरुषों पर आर्थिक रूप से निर्भर नहीं है अपनी प्रगति में रोड़ा बनने वाली पारम्परिक मान्यताओं को तोड़ती हुयी वह आगे बढ़ रही है किन्तु, उसके प्रति मध्य युगीन भोगवादी दृष्टिकोण-प्रच्छन्न रूप से ही क्यों न हो आज भी बरकरार है। आज का पुरुष भले ही सभा सम्मेलनों में पत्र पत्रिकाओं में नारी मुक्ति की हिमायत करता हो, अपनी पत्नी पर रौब जमाये रखना चाहता है। नारी अब भी पुरुष के लिए भोग की निजी वस्तु है। समाज के सभी क्षेत्रों में परम्परागत पुरुष सत्ता ज्यों की त्यों है और उसकी मध्ययुगीन प्रवृत्ति के कारण कम से कम आज तो नारी अपने घर के बाहर पूर्णतः सुरक्षित नहीं है और संरक्षित तो बिल्कुल नही है जैसे ही वह घर के बाहर आ जाती है उस पर आक्रमण होते हैं। फर्क इतना है कि पहले आक्रमण बल पूर्वक एवं असभ्य था अब सभ्यता के नये-नये नकाबों की ओट से हो रहा हं। नौकरी करने वाली नारी के प्रति बॉस अथवा अन्य अधिकारियों का दृष्टिकोण और अपनी अर्थवंचना की मजबूरी में कहीं नारी छटपटाहट उसे फिर से उपभोग की चीज बनती हुई दीख पड़ती है।

इस प्रकार हम देखते हैं आज की नारी एकपूर्ण व्यक्तित्व की खोज में निकली है इस खोज में मध्य युगीन की भोगवादी बाधा सबसे बड़ी उसके सामने है उसके साथ जूझते हुये जब वह महसूस करती है कि अब अपने व्यक्तित्व की सुरक्षा वह स्वयं नहीं कर सकती तब मजबूरन वह बाधाओं से समझौता कर रही है और अन्ततोगत्वा समर्पित हो रही है। इस समर्पण में मजबूरी है श्रद्धा नहीं अर्थात अब वंह परम्परा के साथ जुड़कर टूटी हुई है और अपने टूटन की वेदना में भीतर ही भीतर घुटती रहती है। जातीय विषमता, साम्प्रदायिकता, आर्थिक शोषण, राजनैतिक छद्म तथा सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार समकालीन युगीन सन्दर्भों की अस्मिता को लहुलुहान कर रहे हैं अब इक्कीसवीं सदी का मुहावरा धीरे-धीरे घिसने लगा है लोर्फास और केमर फैक्स के घोटाले पुराने पड़ चुके हैं। हवाला तथा तहलका काण्डों ने साफसुथरी व्यवस्था के छक्के छुड़ा दिये। इसीलिए अब हमें सोचने पर मजबूर होना पड़ रहा है कि खोट कहीं न कहीं इस सामाजिक आर्थिक संरचना में ही है, जिसके अधीन चल रही शासन व्यवस्था तन्त्र के घुसते ही सही लगने वाले व्यक्ति का सोच और व्यवहार भी गलत हो जाता है।[१२]

(ख) उपन्यास और जीवन मूल्य

साहित्य की सर्वाधिक लचीली और मुक्त विद्या उपन्यास ही है। उपन्यासकार को न नाटककार के समान रंगमंचीय अनुकूलता का ध्यान रखना पड़ता है और न काव्य-सिद्धान्तों के पालन की विवशता ही निभानी पड़ती है। इसीलिए उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार सम्पूर्ण जीवन अथवा जीवन के अधिकांश स्वरूप का परिचय सहज ही दे सकता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से अब तक विश्व में हुई औद्योगिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा वैचारिक और भावनात्मक क्रान्तियों के परिणाम स्वरूप मनुष्य के आधुनिक जीवन में व्यक्तिषादिता और परिवेशजन्म पेचीदगियों ने महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। जीवन में व्याप्त जटिलता और वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति में नाटक तथा महाकाव्यीय अभिव्यंजना के असफल होने के कारण उपन्यास जैसे यर्थाथपरक व्यापक विद्या का जन्म हुआ, जिसके माध्यम से आधुनिक और व्यक्ति के वैयक्तिक और सामाजिक व्यक्तित्व की पेचीदगी को समुचित तथा सर्वांगीण अभिव्यक्ति मिल सकी है। युगीन परिवेश और व्यक्ति अनुभूतियों को वैज्ञानिक रीति अनुसार प्रस्तुत करने की क्षमता काव्य से अधिक गद्य और गद्य की अन्य विद्याओं से अधिक उपन्यास में ही हो सकती है। प्रसाद ने कहा कि ''मुझे कविता और नाटक की अपेक्षा उपन्यास में यर्थाथ का अंकन सरल प्रतीत होता है।''[१३]

यर्थाथ मूलकता के अलावा उपन्यास विद्या की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता है, उसके कलेवर का विस्तार उपन्यास में चरित्र और घटनाओं को उनकी सम्पूर्ण देश-काल-सापेक्ष गतिशीलता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है तथा उसमें मानव समाज और मानव के जीवन-मूल्यों के लिए उपयोगी नियम नीतियों तथा मूल्यों को सहजता पूर्वक प्रस्तुत किया जा सकता है। उपन्यास में व्यक्ति और समाज के जीवन मूल्यों के परिवर्तन की गति प्रक्रिया और दिशा आदि सभी का अंकन सम्भव है।

उपन्यास जीवन की यर्थाथतम अनुकृति है इसलिए मानव जीवन के स्वरूप एवं लक्ष्य के अनुरूप ही उपन्यास का भी लक्ष्य एवं स्वरूप निश्चित होता है। उपन्यास विद्या का जीवन के इतने निकट खड़े रहने से ही मूल्यों के अनुरूप ही उपन्यास के मूल्य होते हैं। वर्जीनिया वुल्फ इसी सन्दर्भ में लिखती है कि "वास्तविक जीवन से उपन्यास का इतना सादृश्य है कि उसके मूल्य कुछ सीमा तक जीवन के मूल्य है।"[१४]

उपन्यास लोक-चेतना या लोकतांत्रिक जाग्रति के समानान्तर विकसित हुई विद्या है। इस दृष्टि से यह आज की समस्त साहित्यिक विद्याओं में सर्वाधिक लोकप्रिय लोक-विद्या के रूप में कही जा सकती है। डा० गणेशन् उपन्यास को लोकतन्त्रीय साहित्यिक विद्यासिद्ध करते हुये लिखते हैं कि "जनतन्त्रीय इस अर्थ में कि वह जनता के हर वर्ग के बाह्य रूपों तथा आंतरिक भावों को उसकी विकासोन्मुखगति को व्यक्ति और वर्ग की प्रत्येक विचारधारा को बिना किसी रिजर्वेशन के प्रतिपादित करने की क्षमता रखता है।"[१५] अर्थात् इसी विद्या के माध्यम से लोक-जीवन और इसके सभी प्रकार के मूल्यों की अभिव्यक्ति की जा सकती है। यही कारण है कि शेखर-एक जीवनी, मछली मरी हुई, में अहम् भय तथा काम आदि मनोवृत्तियों से सम्बन्धित मूल्यों का चित्रण हो सकता है। अजय की डायरी में दार्शनिक मूल्य हैं। 'झूठा सच' में साम्प्रदायिक और राजनैतिक मूल्यों का चित्रण है 'अमृत और विष' में सामाजिक मूल्य 'बन्दूक और बीन' में और 'सीमायें' उपन्यासों में युद्ध-सम्बन्धी मूल्य सम्मिलित हैं, तो भांगे हुये लोग में धार्मिक मूल्य, इस प्रकार उपन्यास वह विद्या है जो अपने विशाल कलेवर में जीवन-मूल्यों की विविधता को समा लेती है। उपन्यास को इसी व्यापक क्षमता का समर्थन करते हुए प्रेमचन्द्र ने लिखा है कि 'समाज नीति, विज्ञान, पुरातत्व आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान है। यहां लेखक को अपनी कलम का जौहर दिखाने का अवसर मिल सकता है। साहित्य के किसी अंग में उतना नहीं मिल सकता। इसी प्रकार 'उखड़े हुए लोग' 'अजय की डायरी' 'राजदरबारी' 'झूठा सच' उपन्यासों में भी बहुरूपता के सन्दर्भों के जीवन मूल्य अपनी विविधता और अनेकरूपता के साथ प्रस्तुत हुये हैं अतः

जीवन मूल्यों के अंकन की दृष्टि से उपन्यास ही आज की सबसे सफल सक्षम और समर्थ साहित्यिक-विद्या है। इसीलिए जीवन मूल्यों के पतन और उपन्यास की व्यापक अवमानना के इस काल में जीवन-मूल्य और उपन्यास के पारस्परिक सम्बन्धों पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। मूल्यहींनता के इस युग में जीवन मूल्यों को फिर से परिभाषित करने और उनकी प्रासंगिकता को सिद्ध करने की आवश्यकता भी महसूस की जा रही है। हम सभी के अनुभव में आ रहा है कि वस्तुओं के मूल्य बढ़ते जा रहे है, और मानव का मूल्य घअता जा रहा है। मानव का मूल्य वस्तु के मूल्य की तरहं देखा और समझया नहीं जा सकता।क्योंकि मानव एक वस्तु मात्र नहीं है, लेकिन पूंजीवाद और औद्योगीकरण ने मानव को क्रय विक्रय की वस्तु और उत्पादरन की मशीन का पुर्जा अवश्य बना दिया है। मानव को मानवीयता की प्रतिष्ठा के लिए जीवन-मूल्यों को आर्थिक लाभ और भौतिक उपलब्धि से ऊँचा स्थान देना ही होगा।

आज उपन्यास अभिजात वर्ग के लिए उस प्रकार की वस्तु हो गई है जैसे दूरदर्शन और साबुन तेल आदि उपभोग के सामान है इसी वर्ग का एक हिस्सा राजनीति में अधिक रुचि रखता है और उसे अपना व्यवसाय बनाता है। जिससे उसका पेट पलता है, वैसे ही उपन्यास को व्यवसायीकरण को गति मिलती है। निषकर्ष यह होता है कि उपन्यास का प्रकाशन धन कमाने या पूंजी एकत्र करने के लिए होने लगता है। इस पूंजी का उपयोग यह वर्ग अपनी राजनीति चलाने के लिए करता है- इस प्रकार आज के प्रकाशित उपन्यास का एक बड़ा भाग पूंजीपतियों और राजनीतिज्ञों की चाकरी कर रहा है, उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं। आजकल अश्लील और गन्दे उपन्यास ज्यादा छप रहे हैं यर्थाथ परक निर्दलीय उपन्यासस कम छप पाते हैं। यह उपन्यासों की अवमानना या अवमूल्यन है। जीवन मूल्यों का साक्षात्कार वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों स्तरों पर होता है, जैसे प्रत्येक व्यक्ति और समाज का अपना जीवन-दर्शन होता है। व्यक्ति और समाज जैसे प्रत्येक व्यतिक्त और समाज का अपना जीवन दर्शन होता है व्यक्ति और समाज

में जिस प्रकार अत्यन्तिक द्वैत नहीं है, उसी प्रकार व्यक्ति और समाज के जीवन दर्शन में अनिवार्य द्वैत नहीं, बल्कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

जीवन-मूल्य के बारे में एक और बात विचारणीय है। जीवन मूल्य कोई स्थिर अवधारणा अथवा अपरिवर्तनीय अवधारण नहीं है, बल्कि वह जीवन की तरह गतिशील और परिवर्तनशील है। देश कालगत परिस्थितियों में जैसे जीवनशैली में परिवर्तन आता है, वैसे ही जीवन मूल्यों का पतन एवं विकास होता रहता है। पर यह उल्लेखनीय है कि भौतिक परिवर्तनों की तुलना में जीवन-मूल्यों में परिवर्तन की गति धीमी और मानसिक स्तर पर होती है। यही कारण है कि कभी बड़े भौतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक परिवर्तनों के बाद भी जीवन-मूल्यों में बड़े परिवर्तन दिखाई नहीं देते। उदाहरण के लिए भारत में अनेक विजातीय तथा विदेशी शासन तन्त्रों की सदियों तक फैली समाज-व्यवस्था के बाबजूद कुछ जीवन मूल्य, जैसे पूर्वजन्म, कर्मसिद्धान्त, अवतारवाद आदि आज भी ज्यों के त्यों हैं, पर जिन शाश्वत, सर्वदेशिक स्थिर और मानवीय जीवन मूल्यों की हमारे देश में और अन्यत्र चर्चा की जाती है, उनमें शुभाकांक्षा के साथ अतिश्योक्ति की वरीयता अधिक दिखती है।

अब जीवन मूल्य और उपन्यास के पारस्परिक सम्बन्ध को देखा जाये। यह सम्बन्ध अन्मोन्याश्रयी सम्बन्ध है। जीवन मूल्यों की साहित्य में अभिव्यंजना होती है और साहित्य वृहत्तर जीवन मूल्यों के निर्माण तथा विकास में सहायक होता है। उपन्यास में जीवन मूल्यों का वर्णन या आख्यान नहीं होता वरन् वे उसमें सन्निहित तथा ध्वनित होते हैं। उपन्यास की प्रकृति और उसकी रचना प्रक्रिया पर ध्यान देने से पता चलता है कि उपन्यास जीवन मूल्यों के बोध से अधिक उनके भावात्मक ग्रहण पर अधिक बल देता है अर्थात् वह बौद्धिक ज्ञान से अधिक हार्दिक संवेदनशीलता पर अधिक बल देता है। यहां 'अधिक' शब्द महत्वपूर्ण है, जिसका संकेत है कि साहित्य बुद्धि की सक्रियता से जीवन-मूल्यों के बोध को खारिज नहीं करता, पर वह उस पर अधिक बल न देकर जीवन-मूल्यों के भावात्मक ग्रहण को अधिक महत्वपूर्ण मानता है अर्थात्

ज्ञान से अधिक संवेदना की ओर कथनी से अधिक करनी की महत्ता स्वीकारता है।

जीवन के परिस्कार के लिए उच्चतर जीवन मूल्यों का ज्ञान अपेक्षित है यह ज्ञान अधिक विस्तार के साथ और तार्किक आख्यान के साथ नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शन, समाजशास्त्र आदि में मिल सकता है पर कोरा ज्ञान जीवन को संचालित नहीं करता और न उसमें परिवर्तन लाता है। ज्ञान जीवन स्थिति को संचालित नहीं करता है औन न उसमें परिवर्तन लाता है। ज्ञान जीवन स्थिति को बेहतर बनाने की प्रथम शर्त हो सकता है, पर वह अन्तिम उपाय नहीं है किसी विषय का ज्ञान उनके बोध से होता है और बौद्धिक ग्रहण के अनेक स्तर परिस्थिति के कारण होते हैं। यदि बोध के विभिन्न स्तरों को न भी माना जाये, तब भी प्रश्न उठता है कि क्या ज्ञान कर्म की प्रेरणा देता है? लोग सामान्यत: जानते हैं कि पाप क्या है और पुण्य क्या है, झूठ और सच क्या है, फिर भी दिन रात पाप का आनन्द लूटते हैं और झूट का सिक्का धड़ल्ले से चलाते हैं। यदि उन्हें डर हो कि पापाचरण से और उनके हृदय में भय की संवेदना का संचरण हो, तो वे पलक मारते ज्ञान की मूर्ति बन जायेंगे। तात्पर्य है कि बुद्धि का साथ जब तक हृदय नहीं देता तब तक मानव की सक्रियता नैसर्गिक और अनवरत नहीं दिखती। यही कारण है कि मानव को नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि ने उच्चतर जीवन के चाहे जितने आदर्श दिखाये हो, पर जीवन के यर्थाथ परिवर्तन में उनकी भूमिका गौंण ही रही। इसके विपरीत जीवन का परिष्कार करने और उच्चतर मूल्यों को जीवन में उतारने की प्रेरणा बल्कि विकलता जगाने में उपन्यास की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

यूं तो जीवन मूल्यों का प्रस्तुतीकरण साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास के माध्यम से अधिक मार्मिक ढंग से होता है किन्तु, उपन्यास में सुगुम्फित मानव मूल्यों की तासीर महिला उपन्यासकारों की कृतियों में अत्यधिक तीव्रता से महसूस की जा सकती है। ऊषा देवी मिश्रा, कृष्णा सेवती, निरुपमा सेवती, मेहरुन्निसा परवेज, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, सुमित अय्यर, सावित्री डांगा, मैत्रेयी पुष्पा, क्षमा शर्मा, सुधा गोयल, चित्रा मुदगल, मन्नू भण्डारी,

मृणाल पाण्डे इत्यादि महिला उपन्यासकारों की पक्ति में श्रीमती गौरावन्त शिवानी का नाम स्वर्णक्षरों में देखा जा सकता है। शिवानी ने जिंदगी को सिर्फ देखा नहीं था उसे जिया था उनकी रचना सृष्टि का प्रत्येक पात्र शिवानी की आत्माभिव्यक्ति का जीवन्त रूप है। युगीन परिवेश पर उनकी सर्तक एवं सूक्ष्म दृष्टि पड़ती रहती थी, परिवेश के यर्थाथ की अनुभूतियों से उनका गाढ़ा रिश्ता था। स्पष्टत: उनकी कृतियों में परिवेशगत यर्थाथ अवश्यंभावी रूप से स्पष्ट होता है परिवेश के सत्य को काटर अलग नहीं किया जा सकता है। अत: उनके उपन्यासस संसार में वास्तविकता की प्रति छायायें परिलक्षित होती रहती हैं किन्तु एक श्रेष्ठ कृतिक के रूप में उन्होंने युगीन सत्य को शिवम् और सुन्दरम् से भी जोड़ा, उनके उपन्यासों में मानव मूल्यों के विविध रूप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सुगुम्फित है। अन्य उपन्यासकारों ने भी अपनी कृतियों में विशेष रूप से महिला उपन्यासकारों ने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह बड़ी सफलता से किया है। इन महिला उपन्यासकारों लेखिकाओं की रचनायें जातीय भावनाओं के नाते सन्दर्भो की चर्चा करती हैं, विवाह के सन्दर्भ में बदलते दृष्टिकोणों का चित्रण इन रचनाओं में है अधिक वय की अनव्याही युवतियों की बात भी है तथा विवाह पूर्व गर्भधारण की बात भी, दहेज आज बहुत बड़ा अभिशाप है और महिला उपन्यासकारों ने यह अभिशाप को अनेक स्थानों में चित्रांकित किया है। यह स्पष्ट रूप से दर्शाया है कि विवाह दहेज के माध्यम से सौदा होता है केवल संयोग नहीं, तो कुछ पात्र वैवाहिक जीवन से सन्तुष्ट नहीं होते।

धर्म को महिला उपन्यासकारों ने पारम्परिक रूप से स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने सामाजिक स्थितियों, जीवानुभव तथा तुर्क एवं परिवेश के माध्यम से उसे नया रूप देने का प्रयास किया है। मेहरुन्निसा परवेज, निरुपमा सेवती, डा० मिथलेश मिश्र ने इस दिशा में विशेष चिन्तन मनन भी किया है। धर्म के सन्दर्भ में उसकी मान्यताओं एवयं व्याख्याओं से चौंक सकते हैं किन्तु नकार नहीं सकते। इसी तरह महिला उपन्यासकारों ने ईश्वर के सन्दर्भ में की अपनी औपन्यासिक कृतियों में अपने विचार व्यक्त किये हैं। कुसुम अन्सल, निर्मला बाजपेयी, ममता कालिया, मेहरुन्निसा परवेज आदि ऐसी ही लेखिकायें हैं, इनमें से कुछ तो ईश्वर के सन्दर्भ

में प्रश्न चिन्ह भी लगा रही हैं किन्तु महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि ईश्वर के सन्दर्भ में उनमें अटूट आस्था और विश्वास बना ही हुआ है। अन्ततः अनुसन्धित्सु इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि जीवन मूल्यों के लिए साहित्यिक विद्या उपन्यास अति अनूकूल है चूंकि उपन्यास मानव के वास्तविक जीवन का काल्पनिक इतिवृत्त है। अतः मानव के जीवन से जुड़े प्रसंगों में नैतिकता और मूल्यात्मकता सहज ग्राह और प्रभावक होती है।

सन्दर्भ सूची

१ - नोबेल पुरस्कार प्राप्त करते समय सोलजेनिष्टीन की स्पीच से जो लिष्ट्रेटलिट के १८ नवम्बर १९७९ के पृ० २९ में प्रकाशित हुई

२ - थत्वउ ै वसी मदफेजल्दरेश छवइसा चत्रम ं बबमचजवदबमै चममबी पस्मे जां आक॒ ममा स्तय छवअमउ इमत १८ए१९७३ एच २९

३ - रचना के सरोकार- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ० ३२

४ - रचना के सरोकार - विश्वनाथ तिवारी, पृ० ४७

५ - सार्त्र : एक चिंतन - त्रिभुवन नारायण सिन्हा, पृ० ४१

६ - व्यक्ति चेतना और स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी उपन्यास, डा० पुरुषोत्तम दुबे, पृ० २१३

७ - समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना सन्दर्भ - अशोक डा० माधव सोनटक्के पृ० ५

८ - आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शिवप्रसाद सिंह, पृ० ३५

९ - हिन्दी कहानी सातवां दशक - प्रहलाद अग्रवाल, पृ० २१

१० - टूटते हुये - डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल, पृ० १३-१६

११ - भारत में विवाह और कामयावी महिलाये - प्रमिला कपूर, पृ० ४०१

१२ - आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शिवप्रसाद सिंह, पृ० ११०

१३ - उद्धत हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन - डा० शान्ति भारद्वाज, पृ० १९

१४ - । ट ववउ व ि वदमेश वू द. ˘ ववसिए चं हमए १०

१५ - उद्धत हिन्दी उपन्यास : साहित्य का अध्ययन - डा० एस०एन० गणेशन, पृ० ३१

१६ - डा० मोहिनी शर्मा

चतुर्थ अध्याय

शिवानी के उपन्यासों में जीवन मूल्य

(क) जैविक मूल्य

(ख) पराजैविक सामाजिक मूल्य

(ग) पराजैविक मानविकी मूल्य

शिवानी के उपन्यासों में जीवन मूल्य

शिवानी के साहित्यिक कृतित्व में सामाजिक परिवेश- सामाजिक यर्थाथ, जागृत परिदृष्य, स्वाभाविक और रुचिकर रूप में प्रस्तुत है। परिवेश के बाह्य सन्दर्भों के अतिरिक्त अन्त: प्रकृति, मनोदशा, प्रतीति, अनुभूति तथा संवेदना के सूक्ष्माति सूक्ष्म सरोकारों से उनका कृतित्व कृतार्थ है। इस उपक्रम में समाज में व्याप्त अनुचित, अपेक्षित, अश्वीकार्य कृत्सित विसंगत तथालोक धातक परिदृश्यों के अतिरिक्त शालीन सुसंस्कृत, नैतिक तथा मूल्यात्मक चिंत्राकन भी यथोचित रूप से परिदृश्य होते हैं।

शिवानी के उपन्यासों में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया गया है। मानव जीवन में जिजीविषा भूख, काम की तृप्ति शिवम्, सुन्दर गुणों से युक्त होकर जैविक मूल्यों का निर्माण करते हैं।

'मानवीय चेतना सर्वप्रथम इन्हीं अनिवार्यताओं की तुष्टि हेतु जिन सुन्दरम् और शिवम् युक्त बोध अथवा जीवन लक्ष्यों का निर्माण व निर्धारण है, वे ही उसके जीवन मूल्य कहलाते हैं।[१] सिर्फ अपने लिये या अपनी वासनाओं के लिए जिया जाने वाला जीवन, भोग वासना से श्लथ हो अनुपादेय हो जाता है। जहाँ इस स्वार्थवृत्ति तथा भोगवादी असामाजिकता के विरुद्ध त्याग और परमार्थ पर आधारित जीवन-पद्धति अपनायी जाती है, वहीं से से मूल्यों का अर्ध्वगामी पथ प्रारम्भ हो जाता है, मूल्यों की अवधारणा करते समय मनुष्य अपने से बड़ा कुछ पहचानता है, इतना बड़ा कि जो मनुष्य के जीवन से बड़ा है और उसके बड़े होने की कसौटी यह है कि उसके लिये जान तक ही जा सकती है।

अपने जीवन की रक्षा करना भी मूल्य हो सकता है, किन्तु व्यक्ति केन्द्रित होने के कारण अति सीमित है, जिसका होना अच्छा माना जाता है, उसको स्थापित करने या बनाये रखने के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान करके और इसी क्रम में कौटुम्बिक और जातिगत

स्वार्थों का बलिदान कर उस 'अच्छे' को सुप्रतिष्ठित करने की भावना से युक्त आचरणात्मक विचार एक बड़ा मूल्य हो जाता है।

शारीरिक स्तरों पर बांधे गये जीवन मूल्य ही ऊपर उठकर पराजैविक मूल्यों का निर्माण करते हैं। शिवानी के रचना संसार में युगीन सन्दर्भ और परिवेश में उपस्थित विविध आयाम सहजता तथा स्वाभाविकता के साथ विद्यमान है। समस्त सामाजिक सरोकार सुख-दुख, संयोग-वियोग, आशा-निराशा, पाप-पुण्य, उचित-अनुचित, लाभ-हानि, धनात्मकता तथा ऋणात्मकता स्वयं में आत्मसात किये रहे हैं। प्रत्येक रचनाकार अपनी निजश्विनी और निव्यक्तिक दृष्टि से परिवेश में व्याप्त यर्थाथ का साक्षात्कार करती है और अपने अभिव्यक्ति कौशल से उसे लोकार्पित करती है। उसकी इस सृजनधर्मी प्रक्रिया में सत्य शिव और सुन्दर का सन्तुलन कृति को अभिनन्दनीय बनाता है। यद्यपि परिवेश में व्याप्त अशुभ का भी चित्रण होता है, किन्तु रचनाकार का आदर्श शुभत्व की स्थापना होता है। शिवानी के साहित्य में भी शुभत्व के प्रति आग्रह है किन्तु उन्होंने शुभत्व नैतिकता, मूल्यवत्ता को बलात् स्थापित नहीं किया, ये सब तत्व सहजता और स्वाभाविकता के साथ शिवानी के कृतित्व के उत्पादन बने पुण्य की पक्षधर होते हुये भी, वह पाप की परछाइयों से अपने रचना संसार को मुक्त नहीं रख सकी। इसी प्रकार नैतिकता मूल्यवत्ता को मानव समाज और मानव जीवन का अतिवांछनीय तत्व मानते हुए भी इन तत्वों के प्रति वह मोह ग्रस्थ नहीं हुई और अनैतिक, अपवित्र, अवांछित, विद्रूप और विसंगत तत्त्वों की उनकी कृतियों में मौजूदगी अभिव्यक्ति के प्रति उनकी ईमानदारी को सिद्ध करती है। यही कारण है कि शिवानी के साहित्य में जीवन मूल्यों का इन्द्रधनुष अपनी सतसंगी आभा के साथ ज्योर्तिमय है, तो वहीं मूल्यों के ह्रास अथवा छरित और ऋणात्मक मूल्यों का विष पुष्प भी अपनी दुर्गन्ध के साथ मौजूद है। अब हम शिवानी के उपन्यासों में जैविक, पराजैविक सामाजजिक तथा पराजैविक मानविकी मूल्यों का अनुसंधान करेंगे।

(क) जैविक मूल्य -

शिवानी के उपन्यासों मे जैविक मूल्य की उपस्थिति प्रायः सहजता से दृश्टिगोचर होती है। मानव की मूल्य प्रवृत्तियाँ भोजन, निद्रा, मैथुन आदि से सम्बन्धित ऐसे मूल्य उनकी औपन्यासिक कृतियों में बड़ी सहजता से सुगुम्फित हैं।

शिवानी के 'मायापुरी' उपन्यास में आपके अर्थवादी युग में बनते बिगड़ते सम्बन्धों का मार्मिक चित्रण हुआ है। सतीश के पिता जी पर आर्थिक विपत्ति के समय सविता के पिता तिवारी जी ने अयाचित सहयोग देकर उन्हें उपकार के बन्धन में बांध लिया था। तिवारी जी ने मानवीय सहानुभूति के कारण भी यह आर्थिक सहयोग दिया था, किन्तु इसमें उनका कहीं स्वार्थ भी छिपा था। वह अपनी बेटी सविता का विवाह सतीश से करना चाहते थे और कृतज्ञता वश सतीश के पिता और मां मानसिक रूप से तैयार भी थे, किन्तु सतीश सविता से शादी नहीं करना चाहता था। जब वह यह बात गोदावरी से कहता है तो मां पर जैसे बज्रपात हुआ था। बेटा राम-राम क्या कह रहा है तू मेरे सामने तो यह मजाक कर गया, पिता के सामने स्वप्न में भी ऐसे शब्द मत निकालना, जिनकी कृपा से हमारा दस हजार का कर्ज धीरे-धीरे सब चुक गया, उनसे ऐसे विश्वासघात का स्वप्न भी कैसे आया। तुझे मैं इसी पलंग पर प्राण त्याग दूंगी हम गर्ग गोत्री ब्राम्हण हैं, यह क्या तू भूल गया हमारे बचन का मूल्य हमारे प्राणों से भी अधिक है, ऐसी गल्ती नहीं करते सतीश।"[१] किन्तु सतीश ने बताया कि वह मजाक नहीं कर रहा बल्कि वह सच ही में सविता से विवाह नहीं करना चाहता तो गोदावरी बहुत निराश हो गई। अन्त में मां ने सतीश की भावनाओं को उद्वेलित करते हुए उससे वचन मागा -'मुझे वचन दे बेटा अपने पिता का दिल नहीं दुखाएगा, वे इस धक्के को नहीं सह सकेंगे। मुझे वचन दे सतीश'[२] सतीश को मोह हो आया कि उसके पालन पोषण में उसकी मां ने उनकी पालन पोषण में कितने व्यवधान और कितनी पीड़ा सही है, वह मां का दिल तोड़ नहीं सकता था। अन्त में मां के आत्म

सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए अपनी इच्छा के विरुद्ध सतीश सविता से विवाह करने के लिए राजी हो जाता है। इस प्रकार शिवानी ने बड़ी सहजता से जीवन मूल्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है - 'अम्मा मैं तुम्हें वचन देता हूं मैं अब तुम्हें कुछ नहीं कहूंगा।'[३]

एक बार सविता के पिता वायुयान में यात्रा कर रहे थे, वे दमे के रोगी थे मार्ग में दमें के दौरे से व्याकुल थे। गले में घर्र-घर्र करते कफ को थूकने बार-बार उठ रहे थे तभी मिसयंग एक पात्र लेकर वहीं बैठ गई और दिन रात सेवा की।'[४]

उपन्यास सुरंगमा में लक्ष्मी का पति उसे जान से मार देना चाहता था, इसलिए लक्ष्मी अंधेरे में खिड़की से छलांग लगा कर भाग कर अपने जीवन की रक्षा करती है।[५]

गजानन आये दिन सुरंगमा को पीटता है, और वह उस दिन अपनी जान बचाकर भागी और ट्रेन की पटरी पर खड़ी थी। वहां पर उसका हाथ पकड़कर रोबर्ट ने दूर पटक दिया और उन्हीं पर से धड़धड़ाती ट्रेन निकल गई। यहां पर रोबर्ट ने एक अपरिचिता की जान बचा जैविक मूल्य का सृजन किया है।[६]

रोबर्ट ने एक भूखी प्यासी हताश-निराश महिला को भोजन देकर उसे नयी जिजीविषा प्रदान करके वस्तुतः मानव मूल्यों का सृजन किया है। लक्ष्मी कई दिनों से भूखी थी और उसके पेट में कई दिनों से अन्न का दाना भी नहीं गया था।[७] रोबर्ट लक्ष्मी से विवाह करके उसे अपने घर ले जाता है। उस समय वह गर्भवती थी और वह उसे अपनी बहिन के पास छोड़कर चला जाता है। वह लक्ष्मी से कहता है लक्ष्मी एक पल को भी यह न सोचना कि मैं तुम्हें पति के अधिकारों की मांग से क्षुब्ध करूंगा।[८]

सुरंगमा की सहेली मीरा का रहन सहन आचरण एकदम विपरीत होने के बाद भी उसके निकट पर औदार्य से आकर्षित थी। मीरा की कार से टकराकर एक दिन बुढ़िया गिर पड़ी थी, अगर वह चाहती तो वह भाग सकती थी, स्थान एकदम निर्जन था, पर वह मूर्च्छिता

बुढ़िया को लेकर अस्पताल ले गई और यह जानने पर कि उसके कोई आत्मीय नहीं है, और वह खोमचा लगाकर पेट पालती है, मीरा ने उसकी सेवा सुश्रुषा की और रोग मुक्त होने के बाद उसे अपने घर भी ले गई थी।[९]

कालिंदी उपन्यास में मि० वर्मा पेड़ पौधों की देख-रेख बच्चों की तरह ही करते थे। जैसे किसी प्रियजन का मुंह धुला रहे हों - देख बेटा, फूल और मनुष्य एकदम एक जैसे होते हैं.... फूलों को काट छांट दो, पानी डाल नहला-धुला दो, तो वे अच्छे लगेंगे नहीं तो ऐसे ही लगेंगे कि किसी ने दाढ़ी न बनाई हो, आंखों में कीचड़ लगा हो।[१०]

पिरीमामा जोशी वैदजू के नाम से ही प्रख्यात थे वैसे तो हर मर्ज की दवा उनके पास रहती पर वे कुष्ठरोग के ही स्पेशलिष्ट माने जाते थे, नेपाल, कालीकुमूं, गव्यंगिघाटी से प्रत्येक रविवार को उने यहां असंख्य कुष्ठरोगी एकत्रित हो जाते। एक प्रकार से वे कुमंयू के बाबा आमटे थे। वे इलाज के साथ समाज द्वारा बहिष्कृत रोगियों को ठीक करते थे, अपने इस कार्य को उन्होंने कभी व्यवसाय नहीं बनाया। [११]

रथ्या उपन्यास में बसंती बीमार हो जाती है। रोती कलपती जीवंती बुआ ने वैदजी के पैर पकड़ लिये थे और सारी रात वहीं बैठे रहे थे, न जाने कौन-कौन से अर्क पिलाकर उन्होंने उस अनाथ मित्र-पुत्री को मृत्यु के मुंह से खींच लिया था। यहां पर बसंती से कोई रिश्ता न होने पर भी वह उनके दिवंगत मित्र की पुत्री थी और जीवंती बुआ की बेटी न होने पर भी उस अनाथ बच्ची के लिए उनका यह त्याग यहां पर जैविक मूल्य का सृजन कर रहा है।[१२]

उपन्यास पाथेय में थके हारे निराश प्रतुल को तिलोत्तमा के मिलने पर उसके भीतर उत्साह का संचरण हुआ और वह एक बार फिर अपने सूटकेश के उथल पुथल कर अपना कैमरा निकाल लाना, महाउत्साह में उसने तिलोत्मा की न जाने कितनी तस्वीरें खींच डाली कौन कहेगा वह बीमार था। उसके बाद उसके स्वास्थ्य में आश्चर्य जनक परिवर्तन स्पष्ट हो उठा, पिचके गाल भरने लगे, आंखों में अनोखी चमक आ गई और जो अनिच्छा से थाली दूर खिसका देता

था, वही अब नित्य नवीन खाने की फरमाइशें करने लगा। तिलोत्मा ने रुग्ण होकर हताश व्यक्ति को अपने सौन्दर्य प्रेम और साहचर्य का अवदान देकर उसके सूख चुके जीवन वृक्ष को हरीतिमा से निर्मित्रित कर एक उच्चतर जैविक मूल्य की सृष्टि की है।[१३]

उपन्यास पूतोंवाली में पार्वती का रुखे पति की एक ही भूख से परिचय था, आज तक आज पहली बार उसने ठीक उसी तरह खाने को मांग रहे थे, जैसे उसके क्षुधातुर बेटे मांगते थे, वह बीमारी की अवस्था में भी चौके में घुस गई, ज्वर से उसकी आंखे लाल जवाफूल हो रही थीं, कनपटी पर हथौड़ियाँ चल रही थी, पैर कांप रहे थे, पर उसने मिनटों में आलू की सब्जी छौंक विशुद्ध धृत में पूड़ियां उतार लीं फिर यत्न से परस थाली पति के सामने रख आई। यहां पर पार्वती शिवसागर मिश्र के भूखे होने पर बहुत बीमार होने पर भी उसके लिए भोजन बनाती है।[१४]

उपन्याय कस्तूरीमृग में अम्मा की मृत्यु के तीसरे महीने नन्हें को भयानक मलेरिया के हो जाने से वह विवस कंप में पीपल के पत्थे सा पत्थर कांप रहा था, और जाड़ा-जाड़ा चिल्ला रहा था, इधर धोष बाबू नन्हें के ऊपर घर भर की रजाइयां-कम्बल डालते-डालते हांफने लगे थे, पर नन्हें का जाड़ा नहीं जा रहा था। सहसा अपनी मेरूपर्वत सी देह नन्हें पर पड़ी रजाइयों के स्तूप पर डाल वे न जाने कब तक दसे दबाये 'दुग्गा-दुग्गा' जपते रहे। बोध बाबू नन्हे के लिए बहुत परेशान थे और उसके लिए उसकी जीवन रक्षा के लिए अनेकों प्रयत्न करते हैं।[१५]

उपन्यास रतिविलाप में अनुसूइया का उन्मादी पति गोद में लिए उसे लेकर छत की तीखी मुडेर पर चढ़ जाता है, श्वसुर उसे बचाने के लिए लपक कर छीन लेते हैं, और नौकरों की सम्लित चीख उसे जिवह करती चली गई, अनुसूइया के स्वसुर ने बेटे को खो कर बहू को बचा लिया, यहां पर जैविक मूल्य का सृजन हो रहा है एक पिता ने अपने पुत्र को बचाने की चेष्टा पर वह उन्मादी था, उन्होंने बहू को बचा लिया।[१६]

उपन्यास पाथेय में अपने मदमत्त कामातुर स्वसुर से वह अपने सतीत्व की रक्षा हेतु तिला ने उसके सिर पर टार्च दे मारी और स्वयं तिला ने खिड़की से छलांक लगा दी।[१७]

शमशान चंपा में जिस दिन चम्पा ने चार्ज लिया उसी दिन बेचारी लड़की को अस्पताल की विचित्र ड्यूटी ने चूसकर रख दिया था। न खाने का समय, न सोने का फिर तो उसकी ड्यूटी भगवती के नित्य का सिरदर्द बन गई। कभी वह सुबह दो टोस्ट औरकाली कापी पीकर निकल जाती और आधी रात को लौटती। भगवती टोकती तो हंसकर उसके उपालंभ को वह उड़ाकर रख देती, 'क्या करती ममी, एक के बाद एक दो सिजेरियन बिटाने पड़े, मिनी भी तो मेरे साथ भूखी-प्यासी असिष्ट कर रही थी। अब तुम्हीं बताओ, मरीज छोड़कर हम खाने कैसे आ जाती? यहां पर चम्पा दिन-रात बिना खाये पिये उन मरीजों की देख-रेख करती रहती है और उसके साथ ही उसकी मिनी भी कार्य करती है। [१८]

चम्पा का शरीर फिर ऐठने लगा। लग रहा था तीव्र ज्वर की तपन से तड़पती लड़की असहाय और भयंकर अवस्था से छुटकारा पाने की प्राणपण चेष्टा कर रही थी। "…. क्या हो, कहां दर्द है? मुझे पहचान रही हो, चम्पा? मैं हूँ मधुकर…." वह हंसने की चेष्टा करता है कदम आगे बढ़ा किन्तु चम्पा की उन्मादिनी दृष्टि देखकर, उसकी हंसी होठों ही में सूख गई। कंप की वही लहर, चम्पा की दुर्बल देह को फिर झकझोर गई। तीव्र आंधी के बेग से दुहरे हो गये बेंत के लचीले पेड़ सी दुहरी होकर नीचे लटक गई। मधुकर ने लपककर उसे न थाम लिया होता तो वह शायद नीचे गिर पड़ती, फिर पन्द्रह दिनों तक निरंतर मौत से जूझकर ही वह उसे रामद्वार से लौट पाया था।[१९]

मधुकर चम्पा को ट्रेन से उठाकर घर लाता है और घर से एम्बुलेंस मंगा कर अस्पताल ले जाता है और उसे किसी प्रकार से बचा लेता है।[२०]

माधव बाबू जेल में थे, तो उनके बीमार होने पर जेलर ने उनके अस्वस्थ होने पर उनकी देखरेख की थी। माधव बाबू पुलिस की निर्मम लाठियां सहकर जेल की यातना

भोग कर, एक बार तो जेल प्रवास में खूनी पेचिश उनकी जान ही ले लेती, भला हो उस सहृदय जेलर का जो नित्य अपने घर से बेल का मुरब्बा उन्हें चटा-चटाकर बचा ले गया था। परिवार के मोह की बेड़िया काटकर ही वे लोग देश सेवा का व्रत ले पाये थे।

यहां पर देश सेवा के लिए अहिंसा और एक कैदी के लिए जेलर का उसकी जान बचाना, और परिवार के मोह को त्याग देश सेवा को तत्पर रहकर अपने देश के लिए उपयोग करने से जैविक मूल्यों का सृजन हुआ है।[२१]

कृष्णकली उपन्यास में डा० पौद्रिक ने उन्हें शरीर की रातभर की गई, ब्राण्डी की मालिश से ही दैवी स्पन्दन उसे हिला डुला गया था, उस दयालू से घुटने टेक कर की गयी थी। उसकी सन्तान न होने पर वह विदेशिनी उसकी सेवा करती रही रातभर की सेवा ने उसे बचा लिया था।[२२]

उपन्यास उपप्रेती में रमा के देवर की बारात की बस का एक्सीडेन्ट हो जाता है बस ड्राईवर सहित व तैतीस यात्री थे उसमें से केवल रमा के पति ने नवविवाहिता को कभी पानी के छीटे मारकर और कटीली साड़ियों से वर्फीली हवाओं के बीच बचाया, जबकि उसके कन्धे पर भी बहुत गहरा घाव था और वह बहुत बुरी तरह जख्मी था, फिर भी उसने किसी प्रकार मौत से जूझकर उसे बचाया था।[२३]

उपन्यास सुरंगमा में गजानन जोशी आये दिन लक्ष्मी को पीट्ता है और वह उस दिन अपनी जान बचाकर भागी और ट्रेन की पटरी पर खड़ी थी वहां उसकी जान राबर्ट ने बचाई। वह आंखे बंद कर पटरी पर खड़ी हो गई, किसी ने उसे हाथ पकड़कर दूर पटक दिया, दूर गिरते ही जिन पटरियों पर वह खड़ी थी उन्हीं पर ये धड़धड़ाती एक लम्बी रेलगाड़ी उसे लगभग मूर्छित कर गई। यहां पर एक अपरिचित की जान बचाकर जैविक मूल्य सृजित हुआ है।[२४]

उपन्यास कैंजा में नन्दी ने पगली के बेटे के जन्म के समय उसे मृत्यु को दोनों हाथों से ढकेलकर ही बचाया था, फिर उसने उसे रुई के फाये से दूध पिला-पिलाकर किसी प्रकार जिला ही लिया था।[२५]

(ख) पराजैविक सामाजिक मूल्य -

दृष्टिगत सौन्दर्य व्यक्ति की चेतना को समुज्ज्वल करता है। ऐसा प्रभाव मानवीय ज्ञानेन्द्रियों के सम्पर्क में आकर सांस्कृति प्रभाव भी डाल सकता है। इससे प्रमाता, भाविक, दर्शक अथवा श्रोता का सामूहिक बोध विकसित होता है, उसके भीतर सामाजिक उदात्ता उसकी वैयक्तिक सीमा रेखाओं का अतिक्रमण करवाकर व्यक्ति के स्थान पर समष्टि की संपूज्यता को प्रतिष्ठित करवा देती है। वस्तुत: मानव का विकास उसकी सामाजिकता का ही विकास है। अविकसित समाज में किसी एक विकसित मानव का अस्तित्व कितनी विषम परिस्थितियों में होगा - समझा जा सकता है। भारतीय मनीषा ने सामाजिकता के मूल्य को समझा था, इसीलिए सामाजिकता के विस्तार को विश्व की नैतिकता में समाहित किया गया था, जिसका आदर्श वाक्य बसुधैव कुटुम्बकम है। यद्यपि सारे विश्व को 'कुटुम्ब' में समाहित कर लेने की सोच श्रेष्ठ पराजैविक सामाजिक मूल्य है तथापि सामाजिक और राष्ट्रीय संर्कीणताओं के कारण विभिन्न राष्ट्रों और समाजों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई है, आधुनिक वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रों से लैस समकालीन युग में सामाजिक मूल्यों की अनिवार्यता महसूस की जा रही है। अन्यथा की स्थिति में संघर्षों की विभीषिका मानव जाति का ही विनाश कर सकती है। ऐसी स्थिति को टालने के लिए सामाजिक मूल्यों की विद्यमानता एवं सुरक्षा अत्यावश्यक है, 'सामाजिक मूल्य सामाजिक जीवन के रक्षा कवच होते हैं। वस्तुत: भारतीय मनीषा के द्वारा उद्घाटित सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अस्तेय और अपरिग्रह पराजैविक सामाजिक मूल्य हैं। इनका अस्तित्व मानव की सामाजिकता को सुदृढ़ संरक्षण देता है।

(चौदह फेरे)

शिवानी के कथा साहित्य में पराजैविक सामाजिक मूल्यों के निदर्शन यत्र-तत्र परिलक्षित होते हैं - मल्लिका सरकार जो कि अहल्या की मां नहीं थी फिर भी उसे अपनी बेटी की तरह ही बहुत प्यार करती है। किसी अन्य मां द्वारा प्रसूत शिशु प्रति उसका वात्सल्य उसके

व्यक्तिक वात्सल्य का उदात्त विस्तारीकरण है। दूसरे के बच्चे को इतना अधिक प्यार करती है और उसके लिए परेशान रहती थी।[२६]

छुट्टी में अहल्या घर आती तो मल्लिका उसे सबेरे ही आकर, कार में उठा ले जाती। कितने सारे रंगों के स्वेटर और कार्डियन उसने बिन दिये थे, और अहल्या की छुट्यिां खत्म होने के होती तो मल्लिका का चेहरा लटक जाता। जिस बच्ची से उसको रक्त मांस का भी कोई रिश्ता नहीं था, उसी के लिए वह कभी रात-रात भर बैठी रहती। क्या पता बीमार ही पड़ गई हो, स्वीमिंग भी तो सीखती थी, कहीं डूब-डुबा ही न जाये, एक आध दिन भी पत्र आने में विलम्ब होता तो वह स्कूल को तार कर देती और उत्तर आने तक पागलों की तरह चक्कर लगाती रहती।[२७]

चौदह फेरे उपन्यास में शिवानी ने मल्लिका मांशी के माध्यम से निश्छल वात्सल्य की धारा का अवदान बहाकर मानवता के लिए अमृत समान मानव मूल्य की धारा प्रवाहित की, वह उसे देखकर बहुत खुश होती है। "उस शासन में कहीं भी कठोरता पूर्ण स्वामित्व की भावना नहीं थी वह था केवल स्नेह का शासन मल्लिका अब श्रृंगार की नहीं वात्सल्य की मूर्ति थी।"

अपनी एक से एक दामी साड़िया बड़े शौक से गढ़वाये गये आभूषण सब उसने अहिल्या को उपहार में दे डाले थे।[२८]

रज्जू जो कि फौज में नौकरी करता है, वह शादी इसलिए नहीं करना चाहता कि यदि उसे कुछ हो गया तो उसकी पत्नी का क्या होगा। उसे तो मौत से हर क्षण लड़ मौत की घाटी में कूदना है। 'बुआ' मैं आपसे हजार बार कह चुका हूं, कि मुझे शादी के चक्कर में नहीं पड़ना है, सात दिन बाद सिर पर कफनी बांधकर मौत की घाटी में कूदना है, ऐसे समय में भला शादी ब्याह की किसे सूझ रही है। मेरा एक साथी था बुआ, सदा का स्वलभाषी रज्जू

एकाएक वाचाल हो उठा मेजर राव, आठ महीने पहले शादी कर आया था, चीनियों की बर्बर गोलियों ने उसी देह को चलनी बना दिया, फिर भी मोर्चे पर डटा रहा और चीनियों को रुई की तरह धुनता रहा। मैं ही उसकी लाश को ढूढ़कर लाया था बुआ यहां आने से पहले उसकी अठारह वर्ष की विधवा से मिलने गया था, क्या तुम चाहती हो एक ऐसी ही अठारह वर्ष की विधवा का तोहफा तुम्हारे लिए भी छोड़ जाऊँ।[२९]

शादी के बाद बसन्ती भी नानी के घर बसन्ती और उसके पति धरणीधर को अपने ननिहाल को अपने प्रथम आगमन पर नानी नेपाली भाषा में कभी पहाड़ी भाषा में ढेरों आशीर्वाद देती हुयी तिब्बती भाषा में मंगल गीत गाने लगती है। जिसमें सबके मंगल की कामना की गयी है। अत: यहां एक प्रकार से 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना परिलक्षित होती है

'इने, गै आसू जो हौंस नोंगे मन्सा फले लो

इनग नमजंग रीक्षलौं, इगैं न्युगंठ सैदर लो।[३०]

वासना रहित प्रेम पराजैविक मूल्य सामाजिक मूल्य की श्रेणी में आता है। अहिल्या को पानी पीते समय इस सत्य का पता चला कि रज्जू उसे प्रेम करता है और इस दृष्टि में कहीं उसके और दोस्तों की तरह वासना पूर्ण दृष्टि नहीं थी।

'कैसे पिऊँ यही न, व देख ऐसे' बसन्ती ने उसके दोनों हाथों को अंजुलि बनाकर उसे चश्मे के पास खीच कर रख दिया। अनाड़ी अंदाज से पानी पीती तृषाक्रान्ता अहल्या की हथेली से उछल-उछलकर जलधारा उसके पूरे चेहरे को भिगो रही थी। हंसती-२ अहल्या, खांसती, हथेली झाड़ती उठ गई, मुझसे नहीं पिया जायेगा भाई पानी की नन्हीं-नन्हीं बूंदे उसकी पलकों और गालों पर मोती सी उभर आई थीं। ब्लाउस से रूमाल निकालकर वह मुह पोंछने लगी थी कि एक नवीन सत्य ने उसे मीठी सी अनुभूति करा दी। धरणीदार के पीछे खड़ा राजू उसे एक टक देख रहा था, वह दृष्टि क्या रूसी, मोदी और रेक्सी, रौनेन की सौन्दर्य स्तुतिपूर्ण

दृष्टि नहीं थी? किन्तु जहां रूसी रेक्सी और रौनेन की प्रशंसा पूर्ण आंखे उसे एक विचित्र आतंक से आतंकित कर दिया करती थी इस दम्भी युवक की पैनी दृष्टि से वह सहमी क्यों नहीं?[३१]

जनार्दन जो कि रज्जू के गांव के ही व्यक्ति है जिन्होंने कभी किसी को नहीं ठगा सदैव ईमानदारी से धन्धा किया, राज्जू द्वारा चाय के ज्यादा रुपये देने पर आश्चर्य से जनार्दन की कीचड़ भरी आंखे बाहर निकल आई, 'दो गिलास चाय के पांच रुपये? नहीं नहीं बाप रे बाप, ऐसी ठग-विद्या उमर भर नहीं करी लला अब जब ये हाड़ चिता में चटखने को तैयार हैं तब क्या गू खालूं? राम-राम, लो यह रहे चार रुपये बारह आने।'[३२]

अहल्या जिनको कभी जानती भी नहीं थी आज उन्हें वह छोड़ना नहीं चाहती थी, क्योंकि वह उन्हें प्रेम करने लगी थी और सबसे ज्यादा उसे ललिता गणेशन प्यार करती थी, जिसे कभी वह फूटी आंख नहीं सुहाती थी और अहल्या आज उसी से इतना प्यार कि काका बाबू के छुट्टी लेने के लिए कहते है, तो वह कहती है कि मैं मदर से छुट्टी के लिए कहूंगी तो वह कभी भी मुझे नहीं रोकेगी। दूसरे दिन ललिता गणेशन ने रो-रोकर अपनी आंखे सुजा ली थीं उस उदण्ड बालिका को देखकर पहले अहल्या का खून खौलने लगता था, पर अब उसे छोड़कर जाने में उसे स्वयं ही दुख हो रहा था।[३३]

अहल्या रात के समय एक अपरिचिता जो परेशानी में थी अहल्या ने उसकी मदद की, एक लड़की जो कि उस समय संकट में थी उसे अहल्या ट्रेन में उस अपरिचिता किशोरी को चलती ट्रेन में हाथ पकड़ कर खींच लिया और उसे स्वये पैर सिकोड़ कर बैठ गई और उसे भी बैठने के लिए स्थान दिया।[३४]

अहल्या जिस किशोरी की ट्रेन में मदद करती है वहीं उसे धोखा दे कर ले जाती है और बेहया दृष्टि से अपनी आण्टी को दिखाकर लेटेस्ट खोज बताती है, वहां से वह किसी प्रकार बचकर भागती है और वह दिल्ली की सुनसान सड़क पर जा रही थी तभी एक कार चालक ने उसे देखकर गाड़ी रोक दी और उसे इतनी रात में कहां जा रही है, पूछकर उसे

अपने घर ले जाता है। वह बहुत डरी हुई थी वह चालक एयरफोर्स की वर्दी पहने था जब उसे पता चलता है कि वह दिल्ली शहर में अनजान है तब वह उसे अपने घर ले जाता है। जबकि उसकी पत्नी अस्पताल में थी और उसे आधे घण्टे के भीतर हवाई जहाज उड़ाकर काबुल पहुंचाना था, फिर भी वह उसे अपने घर ले जाता है और अपनी मां और बेटी के पास छोड़ देता है और कहता है मेरी लड़की आपको स्टेशन छोड़ देगी, एक अकेली अपरिचिता की वह मदद करता है और उसे अपने घर में शरण देता है।[३५]

अहल्या का उस अपरिचित पंजाबी परिवार ने अहल्या का खाने पीने और उसके आराम का पूरा ध्यान रखा और एक दिन का अपरिचित सुहृदय परिवार जो उसे कल तक उसे जानते भी नही, उसकी न सिर्फ मदद करते हैं, बल्कि जब वह जाने लगी तो माताजी ने अपनी बांहों में भरकर बड़े प्रेम से उसका माथा चूँमा। उनकी आंखों के आंसुओं में कहीं भी बनावट नही थी, 'हाय देखो एक दिन पहले तुम्हे जानते भी नही थे, बेटी पर देखो ईश्वर की माया ऐसी ममता ने बांध लिया है, लगता है कि घर की बेटी जा रही है। खुशी रहो, ज्ञानकोर की शादी पर जरूर आना बेटी।' माताजी द्वारा एक अनजान लड़की के साथ वात्सल्य भाव प्रकट हुआ।[३६]

एक बार केवल एक बार, जब अहल्या पहाड़ी झरने का पानी पी रही थी, उसकी मुग्ध दृष्टि देखकर उसका हृदय बल्लियां उछलने लगा था पर दूसरे ही क्षण फिर उस रुखाई से उसे पीछे छोड़, वह बहुत आगे निकल गया था। फिर भी अहल्या का उसके लिए फिक्र करना, कि न जाने कहां गोली लगी होगी, दाह संस्कार भी नही किया होगा, वर्फ में न जाने कितने जवानों की लाशें अभी भी ज्यों कि त्यों पड़ी होगी। वह उसे प्रेम करती थी और उसके लिये चिन्तित रहती है।[३७]

यहाँ पर अहल्या अपनी शिष्या ललिता गणेशन की निस्वार्थ भाव से देख रेख स्नेह पूर्वक उसकी परिचर्या की। जबकि उसे और लड़कियों से अलग रखा जाता है इसलिये उसे खसरा निकल आया इस प्रकार निस्वार्थ स्नेह में पराजैविक सामाजिक मूल्य है।[३८]

ललिता की मृत्यु हो जाने पर उसके घर से उसके दाह संस्कार की अनुमति आ गई थी। उतनी दूर से कोई आ नहीं पायेगा, यही किसी ने फोन पर कह दिया था। अहल्या ने उसे अपने हाथों से सजाया, पहले उसके उलझे भींगे बालों की दो चोटियां की उनमें पीला गुलाब लगाया, कलम से लिखी गयी-सी भौंहों के की काजल की लम्बी बिन्दी की रेखा ठीक वैसे ही खींच दी जैसी ललिता खींचा करती थी, दक्षिणी जरी का लंहगा और रेशमी चोली पहनाई। उसके बक्से से निकालकर शंख और सोने की वह माला उसे पहना दी, जो उसके छोटे भाई ने उसे जन्मदिन पर दी थी, धूप बत्तियों का खुशबूदार सन्दली धुंआ उसे बहुत प्रिया था। अगरबत्ती का पूरा गुच्छा जलाकर उसने पलंग के चारों ओर लगा दिया, जब उसके घर से कोई नहीं आया था, और तो वह भी चाहती तो कुछ न करती पर वह उससे बहुत प्रेम करने लगी थी और वह उसके लिए इतना सब कुछ करती है और अन्तिम विदाई देकर फूट-फूट कर रोने लगती है। [३९]

अहल्या को जब मल्लिका की चिट्ठी मिलती है जिसमें मल्लिका मांशी का खुकुमनी सम्बोधन होने पर वह न चाह कर भी उसके पैर स्वयं साउथ परेड की ओर मुड़ जाते हैं यहां वह मल्लिका के निस्वार्थ प्रेम और वात्सल्य की अनदेखी नहीं कर पाती और खुकुमनी सम्बोधन से जैसे उसका सुनहरा बचपन मानो फिर लौट आया और वह मल्लिका के पास पहुंच जाती है। [४०]

अहल्या मन ही मन राजू से प्रेम करती है पर दोनों में किसी ने स्वीकार नहीं किया, जिस व्यक्ति की मृत्यु के समाचार को उसने कभी भी सत्य मानकर स्वीकार नहीं किया था, वह सचमुच लौट आया था, किन्तु उसके प्रत्यावर्तन का उसके लिए अब क्या महत्व था, एक बार भी उसने स्वप्न में उसके सामीप्य की कामना की होती, तो वह दहकते अंगारों में भी कूद सकती थी, एक बार भी उसे पाने के लिए बांहे फैलाई होती हो वह स्वर्ग के सिंहासन से भी भागी आती, किन्तु वह क्यों उस व्यक्ति के लिए व्याकुल हो उठी थी, कौन लगता था

वह उसका? कोई न लगते हुये अहल्या का उसके प्रति सच्चा प्रेम, जो दहकते अंगारों पर भी कूद सकने को तैयार थी।[४१]

जब अहल्या की ताई अहल्या और राजू के विषय में जान जाती है, तब उसे उसकी शादी से तीन दिन पहले ही कहती है कि अपनी मां को देख आज अभागी होती तो क्या न चाहने पर भी तुझे किसी के गले ढ़ोल सा बांध दिया जाता। धरणीधर ने मुझसे कहा था अम्मा अहल्या को यहां भेज देना फिर में निपट लूंगा, पर तू क्या मोम कांच की गुड़िया है, जो जहां चाहे गोदी में उठाकर ले जाये, पर मैं तो कहती हूं अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा, तीन दिन में आदमी चाहने पर आजकल सात समन्दर पार भी उड़ सकता है, वह अपने पास रखे कुछ रुपये देती है और एक बार तेरे फेरे फिर जायेंगे, फिर क्या डर? बदनामी उस कुल में जाकर किसी बहू की आज तक बदनामी नहीं हुई, तू जा मैं सब भुगत लूंगी।' ताई और धरणीधर के कारण ही अहल्या को उसका प्यार मिल पाता है और ताई उसे अपने रुपये देकर और उसे उसके मन के साथी से मिलाकर पराजैविक सामाजिक मूल्य का सृजन करती है। [४२]

(मायापुरी)

एक दिन जब लखनऊ आग उगल रहा था, आफिस से साइकिल पर लौटते क्षीणकाय देवीदत्त लू की लपेट में आ गये और कुछ ही क्षणों में विधवा पत्नी और चार बच्चों को बिलखता छोड़कर चल बसे, इन दुख के छणों में पास पड़ोस के पर्वतीय समाज ने किसी प्रकार चंदा करके संतृप्त परिवार को पहाड़ भेज दिया और गांव जाने पर वहां बाप-दादों का बनाया छोटा सा एक घर था, अपनी जमीन थी, वहां के लोगों ने भी बड़े प्रेम से प्रवासी परिवार ने अपनाकर उनकी सहायता की। [४३]

गोदावरी शोभा दुर्गा की बचपंन की सहेली है दोनों का मायका एक ही ग्राम में था। गोदावरी का विवाह एक संभ्रान्त परिवार में हुआ था, उसके पति इंजीनियर है, दुर्गा का विवाह उच्च कुलोत्पन्न ब्राम्हण पुत्र से ही हुआ पर क्लर्क थे। वर्षों से दोनों सखियों

मिल भी नहीं पाई थीं जब दुर्गा पर पति की मृत्यु का बज्रपात हुआ, तब उससे पहले गोदावरी ने ही सखी की सुध ली थी और उसने अपने पत्र में लिखा था कि शोभा ने लखनऊ से ही बी०ए० किया था और अब वे लोग अपने लखनऊ के मकान में रहने आ गये हैं। शोभा यदि उनके पास ही रहकर पढ़ ले तो उन्हें बड़ा संतोष होगा। गोदावरी ने अपने बचपन की सखी की दुख की सुधि ली और उसकी बेटी को पढ़ाने और अपने साथ रहने के लिए अपने घर बुलाने में पराजैविक सामाजिक मूल्य है।[४४]

सतीश के पिता जर्नादन जी को एक दिन एकान्त में तिवारी जी ने बतलाया कि उनका कर्ज अदा करके उन्होंने प्रोनोट फाड़ दिया है, तो उनका चित्त अशान्त हो उठा था, उन्होने तिवारी जी से कहा था, कि सतीश के नौकरी पाते ही वह स्वयं तार लेता लेकिन कोई बात नहीं अब मैं आपका ऋणी रहा और गांव में कुछ जमीन पड़ी है, जिसको बेचकर मैं ऋण मुक्त होने की चेष्टा करूंगा।

छि: छि: आपसे क्या अब मैं रुपया लूंगा रुपया लूंगा जर्नादन जी से तिवारी जी से बोले – 'आपने तो मुझे वैसे ही ऋण मुक्त कर दिया है। ऐसा योग्य पुत्र देकर अब आप और मैं क्या अलग-अलग हैं? अब तो हम एक ही सूत्र में बंधने जा रहे हैं। स्वप्न में भी रुपये की बात ध्यान में मत लाइयेगा।' तिवारी जी ने आर्थिक रूप से जर्नादन जी की मदद की।

शोभा जब से गोदावरी के घर पढ़ने आई थी, तब से उसने बीमार मौसी की सेवा को अपना ध्येय बना लिया था, समय से उन्हें दवा देती, अब पैरों में नारायण तेल की मालिश करती, बालों में तेल डालकर चोटी कर देती, और पढ़कर अखबार सुनाती, मौसी कहती थी, 'बेटी कब तक दिन भर मेरे पास बैठी रहेगी, जा थोड़ा घूम आ तबियत बहल जायेगी।' पर शोभा कहती –'नहीं मौसी मुझे कहीं जाना अच्छा नहीं लगता।' उसके विचित्र स्वाभाव पर गोदावरी को बड़ा आश्चर्य होता। यूनीवर्सिटी में जाने के पश्चात भी उसके स्वाभाव में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, चुपचाप सिर छुकाये मंजरी के साथ वह जाती और लौटने पर पुन: अपने

कार्य में संलग्न हो जाती, बुद्धि की प्रखर थी, फिर भी उसका भुवनमोहिनी रूप इन्द्रजाल सा वशीभूत कर लेता, उसे न अपनी बुद्धि का घमण्ड था न रूप का, शान्त स्वाभाव की उस लड़की ने उनके घर पर रहकर उनके उपकार के बदले तन-मन से सेवा करती थी।[४५]

गोदावरी शोभा को उसके अच्छे आचरण के कारण उससे बहुत प्रेम करने लगती है, जब सतीश सभी को कुछ न कुछ उपहार देता है और शोभा के लिए कुछ नहीं बचता, तो वह सतीश द्वारा लाई हुई अंगूठी जो वह उसके लिए लाता वह शोभा को दे देती है और शोभा जब उसे आवाक् होकर देखती है तब वह उसे नहीं लेना चाहती पर उसके नहीं-नहीं करने पर भी गोदावरी उसे प्लेटिनम की अंगूठी पहना देती है।[४६]

जब सतीश का, तिवारी की अचानक ही घर में हो रहे पूजन के दिन टीका कर सगाई पक्की करते हैं, तब जनार्दन की हतप्रभ से रह गये। वह क्या देकर भावी पुत्र वधू को टीका करें? घर में तो कोई ऐसी वस्तु नहीं थी, इतने में ही मैं उनके पास खड़ी शोभा ने उनके हाथ में कुछ रख दिया, उन्होंने मुट्ठी खोलकर देखा तो हीरे की अंगूठी थी। शोभा ने उस समय समझदारी दिखाई तथा उनकी सम्मान रखकर उनकी इज्जत बचा ली।[४७]

सतीश शोभा को अपने कमरे से खड़ा, जब वह जनार्दन जी के साथ घूमने जाती है तब उसे विमुग्ध दृष्टि से देखता रहता है और ताश खेलते-खेलते पत्ती फेकना भूल जाता है। उसके कमरे में कोई आ के खड़ा भी हो जाये तो उसे पता नहीं चलता, यहां पर प्रेम है और अविनाश द्वारा सतीश से कहा जाना कि क्यों व्यर्थ में एक अनाथ अबोध को स्वर्ण का द्वार दिखाते हो- जब उसके लिए प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है, तुम तो राजदूत महोदय के जामाता बनकर खिसक जाओगे स्विटजरलैण्ड और वह आकाश के तारे गिनेगी, देखते नहीं उसकी निर्दोष आंखें? उसके हृदय में अभी तक तुम्हारे लिये कोई विकार नहीं है वह जानती है, सविता तुम्हारी वाग्दत्ता है, उसी से तुम्हारा विवाह होगा। यदि कभी उसे तुम्हारे उसके प्रति आकर्षण का आभास

भी मिल जायेगा तो, अनर्थ हो जायेगा सतीश। यह अविनाश का पराजैविक सामाजिक मूल्य ही है कि वह किसी अनाथा का अहित न हो जाये यह सोचकर सतीश को समझाता है। [४८]

सतीश शोभा से प्रेम करने लगता है और मां के सम्मुख एकान्त में निर्जन कमरे में हृदय खोलकर कह देना चाहता है कि वह तिवारी जी का सारा पैसा चुका देगा। तब वह किसी का दास नहीं रहेगा, यहां सतीश द्वारा शोभा से प्रेम और धनवान तिवारी जी का वैभव भी जिसे नहीं भाता और वह धनी सविता से नहीं वरन् गरीब शोभा से विवाह करना चाहता है और मां अपने वचन का पालन कर उनसे विश्वासघात नहीं करना चाहती क्योंकि उसके लिए उसके वचन का मूल्य प्राणों से भी अधिक है। इस प्रकार सतीश और गोदावरी दोनों किसी न किसी प्रकार पराजैविक सामाजिक मूल्य सृजित करते हैं। [४९]

सतीश ने रुग्ण, असहाय मृत्काय मां की ओर देख, अन्धकार में वह कुछ नहीं देख पाया, बरामदे की बत्ती के धुंधले प्रकाश में दो धंसी आंखे में करुण याचना थी, हठात उसे लगा, मानों उन आंखों का जीवन धीरे-धीरे चला जा रहा है। सोचता है यह क्या वहीं मां है, जिसकी निर्मल हास्य ध्वनि से कभी सारा घर गूंजता था, एक बार कठिन सन्निपात ज्वर में जब वह अचेतन मृतप्राय एक माह तक खाट पर पड़ा रहा था, तब इसी मां ने एक माह तक उसकी बिना खाये पिये, सिरहाने बैठे-बैठे न जाने कितनी रातें बिता दी थी। आज वहीं मां जीते जी मृत्यु का आलिंगन करने जा रही थी। सब कुछ सोचकर सतीश ने मां को बचन दे दिया मैं अब तुम्हें कुछ नहीं कहूंगा मां। अपनी मां के लिए और परिवार के लिए अपने प्रेम का भी बलिदार कर दिया।[५०]

शोभा पार्टी में नाना प्रकार के मिष्ठान देखकर भी नहीं खा सकी। उसके सम्मुख बार-बार अपने भाइयों को याद कर और मां के थके क्लान्त चेहरे को याद कर स्कूल से सूखा सा मुंह लिये लौटे भाइयों को बासी रोटी और चीनी मिलाकर कौन देता होगा। वह

अपनी मां और भाइयों को बहुत प्रेम करती है और इसी लिए स्वयं खाने के लिए नाना व्यंजन होने के बावजूद वह कुछ न खा सकी।[५१]

शोभा के आने के पश्चात जनार्दन जी की उलझी ग्रहस्थी में जो सुव्यवस्था आ गई थी वह किसी से छिपी नहीं थी। भंडार की चाभी से लेकर दिन भर की घेला पाई का हिसाब तक शोभा के पास रहता। बिस्तर पर लेटी पंगु गोदावरी गृहस्थी के झंझटों से निश्चिंत थी, कब गेंहू आये, कब पिस गये, वह जान भी न पाती। धोबी कितने कपड़े लाया, कितने बाकी हैं शोभा ही जानती थी, दूध आया, कब नहीं आया और कब अधिक लिया शोभा ही इसका लेखा रखती । इस कार्य करने के समर्पण भाव में शोभा के द्वारा पराजैविक सामाजिक मूल्य का सृजन हुआ है।[५२]

जब गोदावरी को पता चलता है कि सतीश शोभा से प्रेम करता है, तब वह शोभा से इस सम्बन्ध में बात करती है। शोभा गोदावरी को वचन देती है, कि वह परीक्षा समाप्त होते ही चली जायेगी, शोभा भी सतीश से प्रेम करने लगती है, फिर भी वह उन लोगों का किसी भी प्रकार सामाजिक तिरस्कार न हो और वह उन्नति करें। इसलिए स्वयं अपने गांव वापस चली जाने का वचन देती है।[५३]

शोभा जब सतीश का घर छोड़कर ट्रेन में रोती हुई जा रही थी, तब दो सहानुभूति की आंखे उस पर पड़ी जो उसी डिब्बे मे यात्रा कर रही थी, उनसे किसी भी प्रकार से परिचय न होने पर उन मुस्लिम युवतियों जो दूसरे धर्म की होकर भी उसे खाना खिलाती है और उसके सुहाग के लिए दुआयें मांगती है। एक अनजान दूसरे धर्म की युवती को खाना खिलाना और उसके सुहाग के लिए दुआयें मांगना पराजैविक सामाजिक मूल्य सृजित करता है।[५४]

न य

शोभा के भाइयों की मृत्यु और मां के पागल हो जाने के बाद जब वह गांव पहुंचती है तब पधान दादी मडुवे की गरम-गरम रोटी पर पालक का साग धरकर लाई तो शोभा ने दादी से कहा कब तक मुझ लज्जित करोगी, आज मैं सब सामान लाई हूँ, दादी

ने शोभा के पिता की छठी की पूड़ियां खाई थी और उसकी मां के विवाह के पिछौड़े में लाल 'रंगवाली' (लाल बुंदकियां रखना) की थी, वह कुछ रिश्ता न होने पर भी उससे सगी दादी का सा स्नेह करती थीं। दादी कहती है कि दुख-सुख में साथ नहीं लगूंगी तो कब लगूंगी। पधान दादी उसे सगी पोती ही मानती थी और जब कि वह पड़ोस में रहती थी उनकी हर संभव मदद करती हैं।[५५]

पधान दादी शोभा के नौकरी ढूंढने, जाने के लिए जब पैसे देने के लिए घर ले जाती है, तब बहू खेत पर थी और पति पुत्र भी नहीं थे। जब वह घर में अकेली थीं उन्होंने शोभा को ले जाकर सांकल चढ़ा दी हाथ में छिलुका जलाकर वह शोभा को एक अंधेरी कोठरी में ले गयी। पुआल के गद्दे को उठाकर अपने हाथ में थोड़ी सी मिट्टी हटाकर एक डालडा का टीन निकाला उसमें कई गुदड़ों में छिपी दुअन्नी, चवन्नी, अठन्नी, चांदी के रुपये निकालकर शोभा की गोद में अपना सम्पूर्ण बैंक दे दिया। गिने तो साठ रुपये निकले, दादी ने शोभा के आंचल में बांध दिये और कहा लौटाने की चिंता मत करना, भगवान ने चाहा और जिंदगी रही तो अगले साल तीरथ यात्रा को जाऊँगी इसी विचार से रख छोड़े थे। ईश्वर के नाम पर रुपया है, इससे तेरा कल्याण ही होगा बेटी, धर्म के नाम वह धर्म के काम में ही लगाती है। यहां पर पंधान दादी द्वारा पराजैविक आर्थिक रूप से शोभा की मदद होती है।[५६]

जिस मोह की डोर को वह प्राणपण से तोड़कर सतीश के घर से चली आई थी। सतीश और सविता को देख, फिर उसे घेरने लगा था वह हृदय के विचार धिक्कार कर मन ही मन युगल दम्पत्ति पर शुभकामनाओं की झड़ी लगा दी। सविता की मांग का सिंदूर अक्षय हो, उसकीगोद सन्तान, धन-सम्पदा से परिपूर्ण हो इस प्रकार सच्चे प्रेम का परिचय दे उसके सुखी गृहस्थ जीवन की कामना करती है।[५७]

अभी कुछ ही दिन हुये थे शोभा के रानी जी के यहां आये, वह उसे कई बहुमूल्य साड़ियाँ दे चुकी थीं। चाइनीज शू मेकर चींग ली स्वयं आकर उसके पैरों का नाम ले

गया था, नैनीताल का प्रसिद्ध ड्रेसमेकर हरिश्चन्द्र तीन दर्जन ब्लाउज सींकर ले आया था। शुद्ध घी, दूध और मक्खन की भी बंगले में कोई कमी नहीं थी, फिर रानी जी स्वयं अपने सामने बैठाकर उसे खिलाती थीं। वह उनके कार्य करने हेतु नियुक्ति हुई थी, पर रानी जी उसे बेटी की तरह ही प्रेम करती थी और उसका हर प्रकार से खयाल रखतीं हैं।[५८]

मंजरी शोभा से रानी जी का साथ छोड़कर अपने साथ चलने के लिए कहती है तो शोभा उदास स्वर में कहती है -'एक ही सहारा है। वह है रानी जी... वे तो देवी हैं, उनके स्नेह की डोर को तोड़ने का साहस नहीं होता जिस ममत्व से उन्होंने मुझे अपनाया है, शरण दी है, उससे कैसे सम्बन्ध तोड़ूं? और वह उन्हें छोड़कर नहीं जाना चाहती, वह उनके प्रेम को समझती है।[५९]

शोभा मंजरी से रानी जी के विषय में बताती है, कि मैंने कई बार एकान्त में उन्हें रोते देखा है, पर मुझे देखते ही आंसू पोंछकर हंसकर पूछती है, 'ठीक हो, बा रात को नींद आया? मेरी नींद के लिए चिन्तातुर वह स्नेहमयी देवी रात भर करवटें बदलती रही होगी, यह मैं उन भींगी आँखों को देखकर ही समझती हूँ। पर न जाने किस मौन अभिशाप से अभिशप्त वह नारी अपना दुख शिव के विष की भाँति स्वयं ही पी लेती है। मैं उन्हें छोड़कर चली जाऊंगी तो उनकी क्या दशा होगी, मंजरी?[६०]

मंजरी शोभा से कहती है कि यदि तुम उस दिन कायरों की तरह घर छोड़कर नहीं आती, तो घर की आज स्थिति इतनी खराब नहीं होती। तब शोभा कहती है, कि मौसी आज जीवित तो हैं, यदि मैं उस समय तुम्हारा कहना मानती तो वे क्या इस भंयकर आधात को सहन कर सकती? क्षणिक आवेश में की गयी, उस छति की पूर्ति क्या मैं कभी कर सकती थी, तुम्हारी वह विशाल हवेली बिक जाती, भारत के एक भावी राजदूत तुम्हारे परिवार के चिर शत्रु बन जाते, फिर मौसी को जो मैं बचन दे चुकी थी, उस विश्वासघात का गुरुत्तर बोझा मैं कैसे वहन कर सकती? मंजरी तुम्हारे भाई को सदा सुख और वैभव में रहने का अभ्यास है, मुझसे

विवाह कर उन्हें चिर दरिद्रय, लांच्छना और अपमान वरण करने पड़ते, अच्छी नौकरी यदि उन्हें न मिलती तो? शोभा अपने सच्चे प्रेम का त्याग कर अपने प्रेमी सतीश और उसके परिवार को बर्बादी से बचाने के लिये अपने वचन का पालन कर उसे छोड़कर चली जाती है।[६१]

शोभा को सतीश की विमान दुर्घटना के विषय में पता चलता है, तो वह रानी जी से छुट्टी मांगती है, तो वे उसे स्वयं लेकर दिल्ली गई और उस सरल बालिका को रानी जी के रौबीले व्यक्ति के प्रभाव के कारण कोई उन्हें रोकने का प्रयास नहीं करता। रानी जी शोभा को प्रेम करती थी इसलिए वह दुख की बेला में उसके साथ आई थी।[६२]

अस्पताल में रुकने के लिए कोई सुविधा नहीं थी, फिर भी उन लोगों को रात बहुत हो जाने के कारण अपने क्वार्टर में जगह ही नहीं देता बल्कि चाय और खाने पीने का प्रबन्ध कर तीन चार कम्बल और तकिया देकर उनकी मदद करता है।[६३]

(सुरंगमा)

लक्ष्मी अपनी माँ को अत्यधिक प्रेम करती है, उसके साथ एक रात सोने के लिए वह मादाम के हजार-हजार बेंत भी सह सकती, वह किसी की भी परवाह नहीं करती।[६४]

रौबर्ट एक अनजान स्त्री की बिना किसी स्वार्थ के मदद करता है और उसे सहारा देने के लिए अपनी बहन से कहता है जब वह इसके लिए तैयार नहीं होती है तो शायद उसने वैरोनिका के सम्मुख घुटने टेक दिये थे। वह कहता है वैरोनिका...... आई..... वेग।[६५]

वैरोनिका लक्ष्मी को अपने घर में रखती है और उसके दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुयें, कपड़े इत्यादि लाकर देती है और जब वह रोती है वैरोनिका उसे ढांढस बधांती हुई कहती है कि तुम्हें भय नहीं होना चाहिए। शायद ईशू ने जानबूझकर तुम्हें मेरे पास भेजा है। आज तक चार सौ निन्यानवे शिशु पृथ्वी पर लाई हूँ, पांच सौ पूरे करने से पहले शायद वह मेरी कठिन परीक्षा लेना चाह रहा है। तुम्हें अब कहीं नहीं जाना होगा। तुम मेरे पास ही रहोगी।[६६]

अंधकार ही में वैरोनिका लक्ष्मी का हाथ थामकर कहती है ''तुम्हारी अवैध संतान का भविष्य अब भी संभाला जा सकता है मैं जानती हूं यह एक अत्यन्त ही अभद हृदयहीन प्रस्ताव है, पर तुम रौबर्ट से विवाह कर लो लक्ष्मी'' जब कहती है कि वह शादी की मूर्खता नहीं करेगी किसी भी पुरुष को देखते ही अब मेरे हाथ पैर ठण्डे पड़ जाते हैं।

तब बैरोनिका उसें समझाती है कि उसका कभी प्रश्न नहीं उठेगा इसका मैं तुम्हें बचन देती हूं रौबर्ट संत है - ए सेन्ट पर्सनीफाइड, तुम्हें वह केवल पति का संरक्षण ही नहीं देगा तुम्हारी भावी संतान को अपना नाम देगा लक्ष्मी, पिता का वात्सल्य देगा, पिता की छत्रछाया देगा, एक अवैध संतान को पिता का नाम देगा वह भी उस स्त्री की जिसके विषय में वह ज्यादा कुछ नहीं जानते थे अपने आप में बहुत बड़ा पराजैविक सामाजिक मूल्य है।[६७]

जब माइक की मृत्यु हुई तब उसका शरीर बैड-सोर के भयानक प्राणों से छलनी हो चुका था, दुर्गन्ध के भय से त्रस्त हो कभी-कभी मुझे वैरोनिका की उपस्थिति में ही नाक पर रूमाल धरना पड़ता, पर वैरोनिका उस मांस के लोथड़े पर भी जान छिड़कती थी। सुबह उठकर उसे 'बेडपेन' देती, स्पंज करती, कपड़े बदलती, दाढ़ी बनाती फिर अपनी ड्यूटी पर जाती। कभी-कभी उसे लौटने में देर होती तो माइक अपनी.. विकृत चीख से पूरा मुहल्ला गुंजा देता मैं झल्ला उठता पर उसकी सहनशीला जननी के चेहरे पर मैंने कभी झुझलाहट की एक शिनक भी नहीं देखी, यह एक मां का अपनी संतान चाहे वह सुन्दर हो या कुरूप वह उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय होती है और यहां पर वैरोनिका के माध्यम से पराजैविक सामाजिक मूल्य सृजित हुआ है।[६८]

बैरोनिका अपूर्व सुन्दरी थी, एक से एक बांके जवान, उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते थे, किन्तु उसके उस अमानुष पुत्र का पिता बनने का साहस एक भी नहीं संजो पाया। जब माइक की मृत्यु हुई तब उसका यौवन जा चुका था। उसने अपूर्व सुन्दरी होते हुए भी दूसरा विवाह नहीं किया।

यह एक मां का अपनी सन्तान चाहे वह सुन्दर हो या कुरूप वह उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय होती है और यहां पर बैरोनिका के माध्यम से पराजैविक सामाजिक मूल्य सृजित हुआ है।[६९]

रौबर्ट लक्ष्मी हो अपनी बहन के पास छोड़ने जाते समय घर पहुंचने से पहले उसे कुछ रुपये एक लिफाफे में रखकर थमा देता है और कहता है कि वैरोनिका की माली हालत खस्ता ही रहती है, मैं तुम्हें बराबर खर्चा भेजता रहूंगा और वह रुपये भेजकर वह उसकी आर्थिक रूप से मदद करता है।[७०]

गोवा पहुंचने पर रौबर्ट को बराबर उसकी कायरता धिक्कारती रही, क्योंकि उसने लक्ष्मी और उसकी अजन्मा सन्तान का भार ग्रहण करने का आश्वासन देकर ही उसका हाथ थामा था, जिसे वह नहीं भूला था। उसने लक्ष्मी से कहा मैं एक-दो दिन में ही फिर गोवा लौट जाऊँगा, पर जाने से पहले मैं पूरा प्रबन्ध कर जाऊँगा कि इस नादान बच्ची ने मुझे डैडी कहकर पहचाना है, वह जीवन-भर मुझे इसी नाम से पहचानती रहे। इस प्रकार रौबर्ट अपने कतव्य का पालन करता है।[७१]

रौबर्ट वापस गोवा लौटने से पहले पूरा प्रबन्ध कर जाना चाहता है, क्यों कि वह चाहता है, कि जिस नादान बच्ची ने उसे डैडी कहकर पहचाना है, वह जीवन भर इसी नाम से पहचानती रहे यहां पर वह अपने कर्तव्य का पालन करता है और वह उससे प्रेम करता है।[७२]

लक्ष्मी को ढूढ़ता हुआ गजानन जोशी रोबर्ट के घर पहुंचता है तो लक्ष्मी उस पाशविक वृत्ति के व्यक्ति के साथ जाने के लिए तैयार हो जाती है क्योंकि वह जानती है कि इस व्यक्ति के लिए संसार का कोई भी कुकृत्य असम्भव नही है और वह यदि उसके साथ नहीं गई तो वह ऐसा नाटक खड़ा कर देगा कि वैरोनिका की वर्षो की प्रतिष्ठा मान-सम्मान

एक पल में धूल में मिल जायेगा वह यह नहीं चाहती। इसलिए उन भले लोगों का किसी प्रकार अहित न हो सके इस लिए उसके साथ चली जाती है।[७३]

पंडित जी गजानन को वैश्याओं के कोठे से जाने को कहते हैं और कहते है, अगर रियाज ही करना है तो किसी मन्दिर में बैठकर करो, नहीं तो एक दिन तुम्हारा भी यही हाल होगा। ये बदजात छोकरियां सगी साली सरहजों की तरह छेड़ने लगेंगी। गजानन के प्रति पंडित जी का प्रेम और कला के प्रति लगाव ही हे जो उसे वहां से जाने को कहते हैं।[७४]

गौहर जान गजानन से स्नेह करती थी इसी से उसे उस बस्ती में नहीं रहने देना चाहती और उसे प्रबोध रंजन की बेटी को गाना सिखाने को कहती है और वह चाहती है कि उसका किसी भी प्रकार अनिष्ट न हो पाये। इसी से वह उसे अच्छे कार्य में लगाना चाहती है।[७५]

सुरंगमा अपने पिता को उसके अविवेकी आचरण शराबी होने के बाद भी उसे बहुत प्रेम करती है वह उसे नशे में होने पर हाथ पकड़ पलंग पर लिटाती और उसकी देखभाल करती है और बिखरे बालों में अगुलियां फेर पूछती, कैसी तबियत है बाबा, चाय पियेंगे।[७६]

मीरा की सहेली सुरंगमा की मां को अपने मामा के यहां कलकत्ता भेज उनके इलाज का प्रबन्ध बिना किसी स्वार्थ के करती है और उसकी आर्थिक रूप से मदद भी करती है और उनके रहने का प्रबन्ध अपने मामा के घर में करवाती है। [७७]

लक्ष्मी रौबर्ट को बहुत प्रेम करती थी इसीलिए वह बीमारी के समय में भी बड़बड़ाती जा रही थी, "मैं हूँ तुम्हारा पति... " जिसे सुनने के लिए सुरंगमा को कान सटाने पड़े। लक्ष्मी का रौबर्ट के प्रति ऐसा प्रेम जिसे उसने कभी अपने जुबान से नहीं कहा था।[७८]

मीरा सुरंगमा की सहेली है और उसके प्रति चिन्तित रहती है तभी तो वह सुरंगमा को आगाह करती है कि उसे और दिनकर की नैनीताल यात्रा को लेकर लोग कैसी-कैसी बाते करने लगे हैं। वह सुरंगमा से कहती है, कि दिनकर के शत्रु भी कम नहीं हैं आते ही सुना

तो सोचा तुझे जाकर बता आऊ.... "यू हैव टु बी वैरी केयरफुल वैरी-वैरी केयरफुल... आज कल लोग जेबों में टेप लिये घूमते है समझी?" मीरा अपनी सहेली को बहुत प्रेम करती है उसे उसके साथ असीम सहानुभूति है। इसी से वह उसे सावधान करती है।[७९]

सुरंगमा जब मिनी के जन्म दिन पर नहीं जाती है तब दूसरे दिन ड्राइवर उसकी चिट्ठी दे जाता है "आप मेरे जन्म दिन पर नहीं आई ना, इसी से मुझे बुखार आ गया आज मैं नही आ पाऊँगी।" संध्या को बैंक से लौटी तो उसका उस कोठी में पैर न रखने का दृढ़ संकल्प स्वयं ही विखर गया। ज्वर में पड़ी मिनी की ममता उसे रह-रहकर खीचने लगी। बड़ी उलझन के बाद वह उससे प्रेम करती थी, इसी लिए उपहार का पैकेट थाम उसे देखने पहुंच ही जाती है।[८०]

(कालिंदी)

अन्ना का भाई उसे अपने साथ शहर ले जाता है क्योंकि वह अपनी भानजी के भविष्य को संवारना चाहता है और अपनी बहिन को भी अपने साथ ले जाता है।[८१]

कालिंदी विवाह नहीं करना चाहती, किन्तु अम्मा बहुत परेशान रहती हैं और दो वर्ष बाद मामा रिटायर होने वाले थे। मामा-मामी को यह रिश्ता बेहद पसन्द था और वह उनका दिल नहीं दुखा सकती थी। इसलिए वह हां कह देती है।[८२]

कालिंदी विवाह में दहेज के कारण बारात लौटा देती है। वह स्वयं डाक्टर थी और अर्पूव साहस दिखा दहेज की ऊँची रकम अदा करने का तीव्र विरोध करती है। एक पढ़ी लिखी लड़की होकर दहेज जैसी कुप्रथा के विरोध और लालची बारातियों को लौटा देने के कारण पराजैविक सामाजिक मूल्य सृजित हुआ है।[८३]

बारात लौटाने के पश्चात कालिंदी मामा के स्नहे विगलित निष्पाप चेहरे को देखकर जब पश्चाताप में डूब जाती है कि ऐसे देव तुल्य मामा को उसने कष्ट दिया जो उसे बहुत प्यार करते हैं तब उसके मामा उसे कहते हैं - पगली कहींकी मैं अगर तेरी जगह होता तो मैं

भी शायद यही करता, तूने वही किया जो मुझे करना चाहिये था- तेरा साहस मुझे गर्व से भर गया है, पर बेटी यह संसार क्या ऐसे साहस को सराह पाता है? मामा ने उसकी सराहना कर सच्चे प्रेम और एक अच्छे सामाजिक व्यक्ति होने का परिचय दिया है।[८४]

यहां पर शिवानी ने भाई बहिन के बीच प्रेम दर्शाया है। कैसे-कैसे कल्पना के महल बनाये थे देवेन्द्र ने कन्यादान कर, वह पहले शीला और दीदी को लेकर जायेगा बनारस वहां गंगा नहा कर फिर जायेंगे तिरुपति, कन्या कुमारी, रामेश्वरम। उसके बाद दीदी को चारोधाम करा, वे पहाड़ चले जायेंगे। वर्षो से अवहेलित पड़े खड़हर पैतृक गृह को सर्वथा नवीन रूप देकर सावरेंगे, जिस गृह में उसकी बाल्य स्मृतियां, ईंट, चूने गारे के साथ रिसी बसी धरी थी, उन्हें खोद-खोद कर निकालेगा वह और फिर समस्त सुख सुविधाओं से भर देगा, गीजर गैस, सब कुछ और फिर दीदी से कहेगा दीदी याद है तुझे? यहीं तू कैसे आंखे धुये से लाल कर, बांज के ठंठ जला डालडा के टिन में हमारे नहाने का पानी गरम कर अंगुली डुबो-डुबो कर देखती जाती थी कि पानी गरम हुआ या नहीं । अब तुझे अंगुली नहीं डुबानी होगी - गीजर लगा दिया मैंने यहां पर देवी अपनी बहिन और भांजी को बहुत प्रेम करता था और उनकी छोटी से छोटी आवश्यकता को पूरा करने तथा उन्हें हर सुख-सुविधा देने का प्रयास करता है।[८५]

यहाँ पर एक बहिन का अपने भाइयों के प्रति प्रेम परिलक्षित होता है और वह उनके लिए ईश्वर प्रार्थना करती है - परीक्षाफल लेकर तीनों भाई लौटते तो बेचारी अन्ना जाखन देवी के वरदायी मन्दिर में दीया जला मन्नतें मानती 'हे देवी तीनों के गणित में १०० में १०० आयें, नहीं तो बाबू जिन्दा गाड़ देंगे।'[८६]

छोटे भाई की मृत्यु का समाचार सुन, वह संसार विरक्त अघोरी ऐसे अचानक उपस्थित हो जायेगा यह किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था। यहां तक कि बूढ़ी आमा ने भी नहीं सोचा था, कि उनका यह अघोरी ज्येष्ठ पुत्र आकर अपने अनाथ अबोध भतीजों का मार्ग-दर्शन

करेगा। वे ही अपने साथ पूरे परिवार को हरिद्वार उठा ले गये थे। जो व्यक्ति सब कुछ छोड़कर संसार विरक्त हो गया था। फिर आकर अपने भाई के पुत्रों के प्रति कर्तव्य पालन कर उनकी सहायता करता है।[८७]

देवेन्द्र का दोस्त एल्फी जो विक्टोरिया को बहुत प्रेम करता था। उसकी शादी किसी दूसरे व्यक्ति से हो जाती है वह फौज में था। वह विक्टोरिया को शराब पीकर बेहद पीटता था। फिर उसे टीवी हो गया और मायके पटक गया। तब एल्फी उससे बराबर मिलने जाता रहा, डाक्टरों ने कहा, भुवाली लेजाने पर शायद बच जाये। उसके मां-बाप उसे भुवाली भेजते या उसके आठ भाई बहिनों को पालते? तब एल्फी ही अपना घर द्वार बेचकर उसे भुवाली ले गया।[८८]

बसंत की पत्नी बीमार है, वह उसके लिए कहीं नहीं जाता, क्योंकि वह लाचार थी, करवट भी नहीं बदल पाती है न अपना उघड़ा बदन ढक सकती है। इतनी हैसियत नहीं है कि नर्स रख सके। इसी से पलंग के बीच की मूंजकाट नीचे चिलमची रख देता है और फारिग हो जाने पर उठा कर बाहर फेंक आता है। वह पति का पत्नी के प्रेम और कर्तव्य को निभाता है।[८९]

देवेन्द्र और बसंत उस मनहूस होम में अपने मित्र एल्फी को देखने पहुंचे तो उन्हें बड़ा दुख होता है। अंधेरे धुप कमरे में , झूला सी कैंपकौट पर पड़े मित्र के कंकाल को पहचान भी नही पायें- अपने दोनों सींक से हाथ टेकर एल्फी ने उठने की व्यर्थ चेष्टा की पर उठ नहीं पाया।

'यह क्या हाल बना रखा है तूने एल्फी' देवेन्द्र का गलारुध गया। पर एल्फी उस हालत में भी हंसना हंसाना नहीं भूला था 'कोल्डरिन ली उसने मित्र का प्रशन पूरा किया। उन लोगों ने उसे अपने साथ चलने को कहा और उनकी देखभाल कालिंदी करेगी वह छुट्टी आ

रही है और वह उनके साथ चले। यहां पर सच्ची मित्रता और प्रेम ही है तो वह अपने बेसहारा मित्र को साथ ले जाने की बात करते हैं।[९०]

जब एल्फी देवेन्द्र और बसंत के साथ नहीं जाता तब वे उसकी आर्थिक रूप से कुछ मदद करते हैं।[९१]

अन्नपूर्णा ने दो गरीब देवदूत से बालकों जो उनके जूते, चप्पल रखा कर बैठे थे उनकी मां जो बहुत गरीब थी उन्हें कुछ रुपये देती है – जब वह रुपये नहीं लेती तो अन्ना कहती है तूने मुझे आमा कहा है और जबरन नोट उसकी मुट्ठी में थमा देती है । इनके लिए मेरी ओर से कपड़े बनवा देना और खूब जलेबी खिला देना। गरीब बेसहारा की आर्थिक रूप से मदद करती है। वह पैसा अन्ना ने मन्दिर में भगवती को चढ़ाने के लिए रखा था जिसे उसे अच्छे कार्य में लगा दिया।[९२]

सरोज का पति उसे शादी के बहुत समय पश्चात लेने आता है। तब कालिंदी सरोज से कहती है कि यदि तेरे पति ने तेरे लिए विदेश में, विदेशी मेम का तोहफा रखा होगा तो, आजकल यही तो हो रहा है, सारोज सोच समझ कर जाना। नही ये ऐसा कभी नहीं कर सकते। यह भारतीय नारी का विश्वास है वह स्वयं भी पति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित रहती है। यह भारतीय प्रेम का अदभुद नमूना है।[९३]

कालिंदी की सखी शादी के बहुत समय पश्चात उसका पति उसे लेने आता है तब कालिंदी उससे कहा था कि यदि विदेश जाकर तेरे पति ने तेरे लिए किसी विदेशी मैम का तोफा रखा है तब तू क्या करेगी? कालिंदी की सखी सरोज जो अपने पति से बहुत प्रेम और अटूट विश्वास करती थी, वह कहती है कि वह किसी और का नहीं हो सकता। सरोज का अपने पति पर यह अटूट विश्वास भारतीय नारी का विश्वास है।[९४]

सरोज का पति जब उसे लम्बे समय बाद उसे लेने आता है तब पिता भेजने से मना कर देते हैं, तब ही पिता के सामने सदा पीपल के पत्ते सी थरथराने वाली संकोची सरोज

गजब कर बैठी वन्य हरिणी सी छलांग लगा, एक पल में सिर झुकाये पति के पास जाकर खड़ी हो गई और बोली मैं भी चलूगी आपके साथ, यहां एक पल भी नहीं रहूंगी। और वह पति के साथ जाकर अपने प्रेम और कर्तव्य का पालन करती है।[९५]

सरोज की भाभी (नलिन बोज्यू) जब भी कभी किसी लड़की की शादी होती है तो उसे स्वाग्यकांक्षिणी कन्या को अपने विदेशी श्रृंगार प्रसाधन से सभी को निश्वार्थ भाव से संवार कन्या का रूप अपादमस्तक बदल डालती है।[९६]

सरोज जब तैयार होकर बाहर निकली और उसने पिता के पैर छुये तो दुर्वासा से क्रोधी पिता ने सिर पर हाथ रखा, वह मुंह से कुछ नहीं बोल सके। पुत्री की विदा का क्षण उन्हें पहली विदा के क्षण से भी अधिक दुर्वह लग रहा था। पिता का पुत्री के प्रति प्रेम था जो उन्हें चिन्तित कर रहा था।[९७]

पिरीमामा समाज द्वारा बहिष्कृत रोगियों का इलाज करते हैं। कई बार वह नागा बाबाओं के दल के साथ जाना चाहते हैं पर फिर नहीं जाते क्योंकि वे चले गये तो मरीजों को कौन देखेगा और वे वैरागी न बनकर उनकी सेवा निश्वार्थ भाव से करते हैं।[९८]

कालिंदी के विवाह के समय दहेज के कारण लौटाई गई बारात के पश्चात एक दिन अचानक वह वर स्वयं ही उस सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता जाहिर कर अपने पिता के कृत्यों के लिए क्षमा मांगने पहुंच गया, मैं अपने मृत पिता की शपथ लेकर कहता हूं, डैडी ने उस दिन, मुझे आपसे भी अधिक आहत किया था। बस डैडी ने इतना ही लिखा था, कि उन्होंने मेरा रिश्ता कुमांयू की एक सुयोग्य सुरुचि सम्पन्न सुन्दरी डाक्टर से तय किया है, मुझे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, साथ में आपका चित्र भी था। मैंने चापलूसी न कभी की है न कर रहा हूं पर आपका चित्र देखकर संसार के किसी भी पुरुष को कभी आपत्ति नहीं हो सकती, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि आप मुझसे घृणा न करें, मैंने कभी किसी के साथ अन्याय नहीं किया है।[९९]

अकेली बिना किसी को बताये अन्ना कालिंदी के पास पहुंचती है। किसी दैवी शक्ति ने ही पुत्री की दुर्वह वेदना उस तक पहुंचा दी थी। अन्ना बिना किसी को बताये ही नाइट बस से चली आई थी। मन बहुत घबड़ा रहा था अगर देवी को बताती तो वह अकेली नहीं आने देता फिर वह अकेली ही आना चाहती थी। मां अपनी सन्तान के दुख दर्द को बिना कहे ही समझ लेती है। अन्ना को पुत्री के दुख का अभास पाते ही कालिंदी के पास पहुंच जाती है।[१००]

(भैरवी)

दिल्ली से आई पर्वतारोही दल की टुकड़ी अचानक अधंड में फस गई थी। तेज शिलावृष्टि हो रही थी। राजेश्वरी ने यह भी भूलकर कि कमरे के भीतर उसकी रूपवती राजकन्या बैठी है और दीवानखाने में जाते ही एक साथ चौबीस तरुण आँखे उसे देख लेंगी, बरसते आकाश और गरजती शिलावृष्टि के नीचे खड़े बारह कमनीय चेहरे देखकर उसका सुप्त मातृत्व जाग गया। उनकी वर्दी अब इतनी अधिक फूल गई थी कि राजेश्वरी को लगा, दूसरा प्रबल झोंका आते ही बारह के बारह छोकरे हवा में उड़ जायेंगे। परदेशी लड़के इतनी रात को क्या वह द्वारा से लौटा देगी? वह उन्हें अन्दर आने देती है और भयंकर तूफान में उन अपरिचितों को अपने उस घर में शरण देती है। [१०१]

जब चन्दन पति से मिलती है, तो उसे पता चलता है कि उसकी शादी हो चुकी थी और वह एक बच्चे का पिता बन चुका है फिर वह जिस मार्ग से आई थी वह चुपचाप फिर उसी मार्ग से निकल गई। माया दी ने ठीक ही कहा था.... यह चेहरा देखकर तो कोई भी पुरुष तेरे सात खून माफ कर देगा भैरवी, फिर वह तो तेरा रूप पिपासु पति है।

दयालू न्यायधीश ने सचमुच ही उसके सातों खून माफ कर दिये थे। किन्तु वह उसकी बसी बसाई गृहस्थी को बर्बाद न कर स्वयं ही चली जाती है।[१०२]

(गैंडा)

सुपर्णा वेद से कहती है कि राज तुम्हें दो कौड़ी की नौकरी के लिए छोड़कर यहां रुक रही है, उसे समझाओं और अपने साथ ले जाओ, इस पर वेद रो पड़ता है। सुपर्णा का कोमल द्रविण चित्त सहानुभूति के गह्वर से अवरुद्ध हो गया, सुपर्णा ने अपने सुकोमल हाथों से गैंडे के चेहरे से उसके दोनों लोमश हाथ हटाने की चेष्टा की। जीवन में पहली बार नारी की सहज, निष्कपट सहानुभूति का अर्थ शीतल स्पर्श पाकर उसके मायावर में आंसू आंखों ही मैं धमक गये। उन गोरे हाथों की लम्बी अंगुलियों को थामकर वह रुंधे गले से कहने लगा, "मैं उसे बहुत प्यार करता हूँ, सुपर्णा मैं उसके बिना नहीं जी सकता।" क्योंकि वेद राज से बहुत प्रेम करता है फिर भी और उसी की खुशी के लिये उसे छोड़कर चला जाता है।[१०३]

राज सुपर्णा के बच्चों के साथ रहती थी। बच्चों के प्रति प्रेम में राज के व्यवहार में कहीं भी बनावट नहीं थी। 'सु' के दोनों बच्चों पर उसका प्रेम जितना ही अकपट था उतना ही था उदार।[१०४]

राज के मर जाने पर वेद जब वापस विदेश जाता है, तब जाने से पहले वह राज की सब चीजें गरीबों को बांटने के लिए सुपर्णा को दे जाता है।[१०५]

(रथ्या)

बसन्ती का मनीआर्डर जब उसकी बुआ के लिए आता है तब विमल उससें बसन्ती का पता अपनी डायरी में उतार लेता है। उसी वर्ष वह सर्वश्रेष्ठ अध्यापक का राज्य पुरस्कार ग्रहण करने लखनऊ गया, तब विस्मृत की न जाने कौन सी सनक उसी पते पर उसे खींच ले जाती है। आर्थिक तंगी होने के बावजूद दिल्ली बसन्ती के पास उससे मिलने चला जाता है।[१०६]

पिछले तीन वर्षो में विमल न अपने दो पुत्रों के लिये गर्म कोट बनवा सका था, न पत्नी के लिए गर्म सलूका। उधर बेचारी को दूसरे पुत्र के जन्म के पश्चात न मेवे ही खिला सका, न पंजीरी इसी से इधर उसे बराबर मन्दज्वर लगा रहता था। गांव की बड़ी-बूढ़ियों के कहने

पर दोनों पुत्रों के लिए कोट का कपड़ा खरीद उसने दशमूल की सामग्री खरीदी, चाय के बंडल, रेवड़ी-गजक में ही पुरस्कार का वृहत् अंश निकल आया। इसी से चौराहे पर बैठकर एक मोची से उसने पुराने जूतों में नया हाफसोल लगवा, उनका कायाकल्प कर लिया था। अपने खर्चों में कटौती कर विमल अपने बच्चों और पत्नी के लिए कपड़े और दवा का प्रबन्ध करता है।[१०७]

विमल जब बसन्ती के बदले हुये व्यवहार को देखता है तब उसे अपनी सीधी-साधी पति के प्रति समर्पित अपनी पत्नी का ख्याल आता है। जिसमें विमल के पेट में हल्का सा दर्द होने पर बौरा सी जाती है। कभी काली मिर्च डली चाय बना लाई थी, कभी आग में भुने मुनक्के। दिनभर न बिना कुछ खाये पिये वह पति के पीछे छाया सी डोलती रही थी।[१०८]

(पाथेय)

जब तिला को अपने पति के विषय में बृद्ध सौम्य डा० उसे बड़े स्नेहाक्त स्वर में सावधान कर बताते हैं, कि माँ समझ लो मैं तुम्हारा पिता हूँ, बड़े दुलार भरे स्वर में बताया "इस रोग में, संयमी मनुष्य भी विवेक खो बैठता है, फिर तुम दोनों की तो अभी कच्ची वयस है। नारी से शारीरिक सम्पर्क इस रोग के लिए घातक है। तुम्हें स्वयं भी बचना होगा उसे भी बचाना होगा - क्योंकि ऐसा सम्पर्क तुम्हें भी इस रोग की छूत अनायास ही दे सकता है और उसके लिए तो यह निर्घात मृत्यु ही सिद्ध होगी।" तिला के ससुर और सोना माशी उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते और शादी के पहले तिला को कुछ नहीं बताया गया था। पुत्र की ऐसी हालत के बावजूद पिता वंशधर की कामना रखता है किन्तु डाक्टर उसे स्नेह पूर्वक सचेत करते हैं।[१०९]

प्रतुल तिला से बहुत प्रेम करता था इसीलिए वह एक दिन रक्तवमन होने के बाद तिला से कहता है, कि तुम आज से सोना माशी के कमरे में सोना उसका क्षीण स्वर अश्रुसिक्त था। जब तिला ने रोकर पूछा कि "क्या अब मैं तुम्हें अच्छी नहीं लगती? क्यों कहा

तुमने ऐसा'' तब प्रतुल कहता है ''पगली तू तो मुझे कितनी अच्छी लगती है, यह भी क्या मुझे बताना होगा? अच्छी लगती है तिला बहुत अच्छी तभी तो कह रहा हूँ।'' वह चाहता है कि कहीं उसके कारण तिला भी बीमार न हो जाये उसे चिन्ता थी क्योंकि वह उसे बहुत प्रेम करता था।[११०]

तिला अपने सखी को बताती है कि वह कल्याण हाउस जो मुझे पहली दृष्टि में बेहद मनहूस लगा था, वह सहसा मेरे लिए ताजमहल बन उठा मैं जानती थी, कि स्वर्णधर में छलकते अमृत की वह घूंट, मेरे लिए क्षणस्थायी ही रहेगी। किन्तु जब तक अमृत है, क्यों न छक कर अघा लूँ। आश्चर्य होता है कि हम दोनों के निर्दोष हृदयों में शैशव की निर्दोष अकपट प्रेम की कैसी स्निबधता थी, कभी किसी भी क्षण हमारे बालसुलभ हृदय वासनादग्ध नहीं हुये पता नहीं विधाता ने हमें इस संयम का अपूर्ण दान देने का आग्रह किया था। या स्वयं हम दोनों का विवेक ही हमें कवच सा सेंत रहा था।[१११]

प्रतुल की मृत्यु के बाद अपने बहशी ससुर से बचकर भाग रही थी तब वह एक अपरिचित व्यक्ति से मदद मांगती है, वह उसे अपने घर ले जाता है और वहां जॉन और उसकी पत्नी मारिया उसे ढांढस बंधाते उसकी मदद करते हैं।[११२]

जॉन अंकल ने ही तिला की मदद की और उसे उसके घर तक पहुँचाया। मिलन में उस देवतुल्य व्यक्ति को भूल गये। जब तटस्थ हुये तो वह किसी देवदूत सा ही अपना कर्तव्य पूरां कर तिरोहित हो गया था।[११३]

तिला को उसकी निन्तान बुआ ने दुर्लभ दान मिला था उसी की वजह से एम०ए० कर लन्दन यूनीवर्सिटी से डाक्टरेट ले पायी थी, वहीं ओरियंटल स्टडीज स्कूल में लेक्चरर हो गयी थी, वह आज जो कुछ भी थी अपनी बुआ की वजह से थी और अंतिम समय में उन्होंने अपनी पूरी सम्पत्ति तिला के नाम कर दी थी।[११४]

शिवशंकर जो कि सम्पन्न इंजीनियर थे उनकी पत्नी की बेटे के जन्मते ही मृत्यु हो गई थी, इसी से उन्होंने माँ-बाप बनकर छाती से लगाकर पाला था और इसी से विवाह नहीं किया कि सौतेली माँ इसे कष्ट देगी।[११५]

विनायक जब मर जाता है तब तिला वहां से किसी को बिना बताये चली जाती है, कई रातों तक फिर वह सो नहीं पाई कायर की भाँति क्यों भाग आई थी मैं? उसे शोक विह्वल पिता के प्रति क्या कोई कर्तव्य नहीं था? पूरे दस दिनों तक मैं अपनी देहरी पर दीया जला कर रख आती थी। किन्तु पाथेय प्रदीप जलाकर मेरा अपराधी चित्त शांत नहीं हुआ फिर एक दिन जाकर विनायक के पिता को अपने साथ ले ही आई। विनायक के पिता ने कहा कि तुम तो मेरी कोई नहीं हो बेटी क्यों ले जाना चाहती हो मुझे?आपकी बहू हूँ मैं अब आपको मेरे साथ चलना ही होगा मन ऊबेगा तो चले आइयेगा। इस प्रकार से उनसे कोई भी रिश्ता न होने पर वह उन्हें अपने साथ ससुर मानकर ले आती है और उनकी देखरेख करती है।[११६]

(पूतोंवाली)

शिवसागर भले ही पार्वती को प्रेम न करते हो पर वह उन्हें बहुत प्रेम करती थी। तीव्र ज्वर की अचेतावस्था में पति की कठोर गर्जना उसे मधुर लगी और वह खाना बनाती है। वह उन्हें सच्चे हृदय से प्रेम करती है।[११७]

पार्वती और शिवसागर मिश्र अपनी संतान से बहुत प्रेम करते हैं किसी भी तरह अपने गहने बेचकर पेट काटकर ही अपने बेटे को आई०आई०टी० में पढ़ने भेजा था, यहां पर माता-पिता अपनी संतान के प्रति प्रेम और त्याग के साथ बच्चों की सारी जरूरतों को अपनी जरूरतों को नजरअन्दाज कर उनकी पूर्ति करते हैं और उन्हें योग्य बनाते हैं।[११८]

शिवसागर मिश्र की पत्नी जब मृत्यु के मुंह में जाने से बच जाती है, तब वह यौवन में किये गये एक-एक अक्षम्य अपराध पूरा प्रायश्चित कर रहे थे। पार्वती को दुर्बलता के कारण उठने में परेशानी होती थी वे ही सहारा देकर उसे उठाते हाथ मुंह धुलाते, नहा धोकर चाय बनाते फिर दलिया बना, अपने हाथों से खिलाते और कौर के साथ क्षमा मांगते चले जाते।[११९]

छुटके को माँ के हाथ के बने गोंद-मेवे के लड्डू बेहद पसन्द थे। बीमारी में भी आधी रात तक जागकर पार्वती ने लड्डू बनाये, मठरी बेसन का लट्ठा और खोरमा पूरी कनस्तरी ही भरकर वह अपने छोटे बेटे जिसे वह बहुत प्रेम करती थी उसके यहां ले जाती है। मां का प्रेम है कि बच्चे चाहे कितने बड़े क्यों न हो जायें उसके लिए हमेशा नन्हें बच्चे ही रहते हैं।[१२०]

(बदला)

त्रिभुवन नाथ बहुत व्यस्त रहते थे, कभी-कभी पत्नी के लिए भी समय नहीं निकाल पाते। जब सोने के कमरे में जाते तो पत्नी गहरी निद्रा में डूबी मिलती कभी-कभी उसका सुकुमार-निष्पाप चेहरा देखकर उन्हें पश्चाताप भी होता। बेचारी! कितना कम समय मिला है उन्हें उसके लिए जिसने दुख-सुख में निरन्तर उनकी छायानुगामिनी बन पूरे तीस वर्ष गुजार दिये थे न कभी कोई उपालम्भ न कभी कोई याचना।[१२१]

रत्ना अरुण को ढूंढने कहाँ-कहाँ नहीं भटकी! उसके मित्रों के पास गई, उसकी एक ममेरी बहन पटेल नगर में रहती थी, वहाँ भी गई पर अरुण का कुछ पता नहीं लगा। सात-आठ दिनों में ही रत्ना का दमकता चेहरा श्रीहीन हो गया था न वह ठीक से खा पी रही थी न किसी से बोल रही थी। वह गरीब लड़के से प्रेम करती है उसके पिता अरुण को पसन्द नहीं करते फिर भी वह उसी से विवाह करना चाहती है और उसे जगह-जगह ढूढ़ती है।[१२२]

(कृष्णकली)

रोजी पन्ना से जब नन्हीं बच्ची को पालने के लिए कहती है तो वह मना कर देती है क्योंकि वह नहीं चाहती कि जिस दलदल में वह है उसमें वह एक निर्दोष बच्ची को भी उसी दलदल में डुबा दे।[१२३]

पन्ना बच्ची के पालन पोषण के लिए दलदल के वातावरण से दूर रहकर निर्जन से स्थान जहाँ मौत का -सा सन्नाटा लगता था वहां रहती है वह नये जीवन की सृष्टि के लिए बहुत सी पीड़ायें यातनायें भी सहती।[१२४]

कली जिनके घर में रहती थी उसे गृहस्वामिनी बहुत प्रेम करती थी और उसकी पसन्द का भी ध्यान रखती थी। जबकि वह तो उनकी कोई सगी सम्बन्धी भी नहीं थी।[१२५]

प्रवीर कली को बहुत प्रेम करता था इसीलिए जब उसे अपनी बीमारी के विषय में खबर देकर बुलाती है तो वह महीनों पूर्व पवित्र अग्नि को साक्षी बनाकर लिये गये सात फेरों की शपथ भूलकर जहां जाना था वहां न जाकर कली से मिलने पहुंच जाता है।[१२६]

(दो सखियाँ)

हरदयाल ने अपनी हड्डी तोड़ मेहनत से सम्पत्ति जोड़ी थी। वे उन उद्योगपतियों में से थे जो लोटा डोर लेकर घर से निकले थे और अपनी चतुर व्यवसाय बुद्धि से करोड़ों का वारा-न्यारा करने में सक्षम हो जाते हैं। उनकी एक ही इच्छा थी इस अटूट सम्पत्ति को किसी सत्कार्य में लगा दें। उनके पुत्र के नाम का एक अस्पताल और एक देवालय।[१२७]

पुत्री की मृत्यु के बाद हरदयाल ने अपनी सम्पत्ति दान कर ट्रस्टियों को सौंप दी। आलीशान कोठी उस कन्या विद्यालय के नाम कर दी जहां कभी उनकी पुत्री पढ़ती थी और स्वयं बिना किसी को अता-पता दिये 'आश्रय' में चले गये।[१२८]

'आश्रय' के सभी लोग गुरविंदर को पति की हत्यारिन होने और सजा काटने के कारण, उसके जो मित्र थे वो भी शत्रु बन गये थे किन्तु सखुबाई ने उसे उसके गहन नैराश्य से बाहर खींचने की चेष्टा की थी और वह उसे बहला फुसला कर खाना खिलाती और यदि उसने खाना नहीं खाया तो वह भी नहीं खायेगी ऐसी धमकियां देकर खिलाती। रात को भी वह पार्श्व में चुपचाप लेटी गुरविंदर से कभी कुछ नहीं पूछती केवल हाथ बढ़ाकर उसकी हथेली मुट्ठी में बांध देती, जैसे कह रही हो- घबरा मत गुरविंदर मैं तेरे साथ हूँ।[१२९]

आनंदी की मृत्यु होने पर सखुबाई एकदम बुत बन गई उस शांत भव्य चेहरे को एकटक देखती रही और अपनी प्राण प्रिया सखी के आदेश का पालन कर उसे उसने कहा था "तू रोना नहीं मास्टरनी" मुझे बड़ा दुख होगा। वह रोई नहीं पर सपने की एक-एक बात उसने पूरी की। सिरहाने तुलसी का गमला, कमले पर लड्डू गोपाल, मुख में तुलसी दल और फिर कानों के पास मुंह सटाकर स्थिर निष्कंप कंठ से उसने कहा "ओ नमो वासु देवाय ओ नमो वासुदेवाय। चौकीदार को शहर भेज उसने वैसा मोटा पुष्प हार मंगा आनन्दी के गले में डाल दिया। आनन्दी और सखुबाई का आपस में कोई रिश्ता नहीं था फिर भी उनमें अटूट मैत्री और आपस में प्रेम था।[१३०]

(कस्तूरी मृग)

नन्हे के पिता को जब कुष्ठ रोग ने घेर लिया था तब सभी इष्ट-मित्र दूर हो गये थे तब एक फूफा जी ही थे जो उन्हें आत्मीयता से हर दूसरे-तीसरे दिन मीलों इक्के पर चलकर उनकी कुशलता पूछने चले आते थे।[१३१]

(रतिविलाप)

अनुसुइया ने अपने पुत्रवधू धर्म का निर्वाह किया। ससुर के आज्ञा देने पर कि यदि वह उन्हें छोड़कर जाना चाहे तो जा सकती है पर वह नहीं गई। 'तुम निश्चय ही अनु

को अपने साथ ले जा सकते हो। हरसुख, मेरा अब इस पर कोई अधिकार नहीं रहा। उनका संयत कंठ एक क्षण को रुध गया था, अनु बेटी, तुम अपने मामाजी के साथ जाना चाहो, तो आज ही जा सकती हो। तुम्हारा हाथ-खर्च नियमित रूप से तुम्हारे पास पहुंच जायेगा।[१३२]

अनुसुइया के ससुर ने उसे विकृत समाज से बचाने के लिए वह उससे कहते हैं, कि तुम यह घर छोड़कर यदि अपने घर जाना चाहो तो जा सकती हो। इसमें मेरा ही स्वार्थ अधिक है। तुम्हें अभी हमारे कुटिल समाज की घृणात्मक मनोवृत्ति का अनुभव नहीं है। मेरा वैभव, तुम्हारा कच्ची उम्र का वैधव्य, तुम्हारा सौन्दर्य कभी भी हम दोनों पर घातक हथगोला फेंक सकता है। ऐसा गोला मनुष्य को एक-बार ही जलाकर उसे प्राण नहीं लेता, जीवन भर के लिए उसे विकृत कर तड़पने के लिए छोड़ जाता है, अनु बेटी; समाज तो सगे भाई बहिन के एकांतवास को भी अच्छी दृष्टि से नहीं देख सकता फिर दुर्भाय से मैं विधुर हूँ और तुम विधवा, एक दिन... मैं क्रोध से कांपती बीच में ही टोक उठी थी, 'पिता जी कोई भी ऐसी नीचता नहीं कर सकता है यह सब आपके मन का वहम है।'

'काश ऐसा ही होता बेटी; उनकी करुण हंसी में वर्षास्नात हवा की झोके सी करुण आर्दता थी। कल बड़ी रात तक बाग में घूमता रहा, लौटते समय मैंने सुना मेरे ही नमक हराम भ्रत्य मेरे ही गले पर छुरी फेर रहे थे और कह रहे थे जानबूझ कर ही तो रंडुऐ बुद्ढे ने पागल लड़के को छत से से ढ़केल दिया, जिससे उम्र भर सुन्दरी जवान बहु के साथ गुल्छर्रे उड़ा सके। पूरी जायजाद भी तो लिख दी है पाटन के पटरानी के नाम।[१३३]

पिता जी जब नौकरानी के साथ घर छोड़कर चले जाते हैं तो वह पत्र लिखकर अंनु से क्षमा मांगते हैं और कहते हैं कि ईश्वर तुम्हें सुखी रखे तेरा सब कुछ तुझे ही दे गया हूँ। इसके बिना एकपल भी मेरे जीवन का सार्थक नहीं है ऐसी स्थिति में तेरी छत के नीचे हम दोनों का रहना उचित नहीं है और न ही वांछनीय है। इसी से तेरे शेयर, पासबुक सब तुझे पहले ही सौंप चुका था।[१३४]

(किशनुली)

इस उपन्यास में काखी द्वारा कितने ही शाल-दुशाले, तिब्बती आसन, नम्दे, मृगचर्म प्रायः ही उनकी पथरीली छत पर पहाड़ी क्षणिक धूप में सुखाये जाते, पर काखी के औदार्य ही के कारण कभी किसी को उनसे ईर्ष्या नहीं हुई न जाने कितने बबासीर के रोगी, उनसे आ-आकर मृगचर्म मांग ले जाते। 'बबासीर की एक ही रामबाण औषधि है यह पन्याणीज्यू, वैदजी ने कहा है, इसे बिछाकर बैठो तो शत्रु-सम अर्श चुटकियों में दूर।'

चटपट काखी याचक को मृगचर्म का टुकड़ा निकालकर थमा देती हैं।[१३५]

एक दिन काखी उग्र रणचंडी बनी पगली को अपने घर ले आयीं। काखी ने तो कभी खाज से गले लावारिश कुत्ते को भी अपने आंगन से नहीं दुरदुराया था।[१३६]

काखी पगली को अपने घर ले आयीं, जब मैंने उनसे पूछा कि आप इसे क्या अपने घर में रखेगीं तब काखी ने कहा क्या इसे इसका सर्वनाश कराने राह के चौराहे पर छोड़ दूं। खुद ही आकर मेरे आंगन में पसर गई है, तो साफ जाहिर है भगवान ने इसे यहां भेज दिया है। आज तक जिसने संतान-सुख नहीं दिया, उसने आज स्वयं ही मेरी रीती कोख भर दी और काखी की आंखे छलछला उठी थीं।[१३७]

दिन भर पगली नहीं लौटी तो संध्या होते ही कोखी अनमनी हो गयी वह द्वार थामे उदास खड़ी थी। मेरे कुछ पूछने पर उनका गला भर आया। ' दिन भर की भूखी-प्यासी छोकरी न जाने किस-किस के द्वार से दुरदुराई जा रही होगी।' अंधेरा हो गया था मुझे विवाह के रतजगे में जाना था असल में काखी को बुलाने ही मुझे भेजा गया था। तू नहीं चलेगी काखी मैंने पूछा? 'नही' अब उसने कहा और आंखे पोछ लीं। अपनी मां से कह देना मेरे सिर में दर्द है। मैं समझ गई वह जाती भी कैसे? बेचारी वह तो पगली किसना के जाने का मातम मना रही थी।[१३८]

मेरी आबाज सुन, काखी भी भाग कर बाहर आ गई। 'मैं जानती थी, यह लौट आयेगी। मैंने भैरवनाथ का 'उचैणा' (मनौती) माना था। हाय-हाय, यह क्या गत बना ली है तूने! अरी किस पापी ने यह पत्थर मार दिया तुझे, नाश हो उसका ठठरी उठे अभागे की।'

काखी उसे चूमती-चाटती सहला रही थी, जैसे मृत बप्सा गाय को उसकी बछिया मिल गई हो।[१३९]

अपने भोले मासूम चेहरे को काखी की ओर उठा, पगली ने पूछा, 'मुझे मारोगी तो नहीं इजा? उसके उस निर्दोष करुण प्रश्न के साथ-साथ स्वत: स्फूर्त वह मां का सम्बोधन, काखी को वहीं ढेर कर गया, 'देखी रही है, बिना किसी के सिखाये, मुझसे इजा कहा है इसने, इजा... ।' काखी ने उसे जोर से छाती से चिपटा लिया, 'अरी मारूं तेरे दुश्मनों को, चल जल्दी तेरे कपड़े बदल दूं।' चोट पगली को कम लगी थी और रो रही थी काखी।[१४०]

(कृष्णवेणी)

कृष्णवेणी उपन्यास में नायिका धनी परिवार की थी किन्तु वह भास्करन जो निर्धन था उससे प्रेम करती है यह वास्तव में प्रेम इन सब बातों से ऊपर होता है जात-पात पैसा आदि इस प्रकार यहां वेणी ने पराजैविक सामाजिक मूल्य का सृजन किया है। और वह जैसा भी था उसे उसी रूप में प्रेम किया।[१४१]

वेणी ने भास्करन का भविष्य देखा तो उसमें थी दोनों हाथों की झड़कर दो अधूरी मुट्ठियां मात्र रह गई, होंठ विहीन उसका चेहरा भीभत्स बन गया था जैसे कटहल का छिलका। वेणी ने एक प्रकार से आत्म हत्या ही की थी। वह जीते जी भास्करन से न मिल पायी तो क्या मृत्यु के बाद तो वह उसी के साथ रहेगी। वह भास्करन को बहुत प्रेम करती थी और अब उसका सूक्ष्म शरीर शिवानी से मिला तब उसने कहा था अगली बार भास्करन को लेकर आऊँगी।[१४२]

(अतिथि)

माधव बाबू ने अपने दो भतीजों को पढ़ाया-लिखाया, विवाह किया, तीन भतीजियों का कन्यादान किया, उनके बेटों की नौकरियां लगवाई, बेटियों के वर ढूढ़े, यहां पर उनका परिवार, रिश्तेदारों के लिए किये गये कार्य को सामाजिक कार्यों की श्रेणी में रखा जायेगा।[१४३]

जब जया विदा हुई तो अम्मा अपनी सारी कटुता भूल-विसर कर, जया को छाती को लगा जोर से रो पड़ी, बंटी बच्चों की तरह सिसक रहा था। ताई ऐसी शोक विह्वला अपनी कोख की जायी की विदा में भी न हुई थीं। मां अपने बच्चे से कितनी भी नाराज क्यों न हो पर वह सदैव उसके लिए चिंतित रहती है। सदैव उनकी ही कुशल की कामना करती है और ताई उसे अपने भी संतान से ज्यादा प्रेम करतीं हैं। [१४४]

माधव बाबू जया को बहुत स्नेह करते थे, उसके लिए सदैव चिंतित रहते थे जिनती ही बार त्याग कर निरुद्देश्य होने की इच्छा तीव्र होती उतनी ही बार नवीना पुत्र वधू का कमनीय, भोला चेहरा उनका कलेजा कचोटने लगता। उन्होंने तो उस मासूम लड़की के प्रति सबसे बड़ा अन्याय किया था, केवल अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए ही तो खतरनाक जुआ खेला था। अब उसकी सुरक्षा करना उनका सबसे बड़ा कर्तव्य बन गया था। माधव बाबू के परिवार के लोग जया के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते, उन्होंने अपने मित्र की पुत्री के साथ अपने बेटे का विवाह कराया था, इसलिए अब वह उनकी जिम्मेदारी थी। वे अब उसकी रक्षा और उसका किसी भी प्रकार से अनिष्ट न हो इसके लिए सदैव प्रयास करते थे और चिंतित रहते थे।[१४५]

परिवार के मोह की बेड़ियां काट कर वे देश सेवा का व्रत ले पाये थे और यह नवीन दल उन्होंने कभी स्वयं भिक्षान्न जुटाकर उदरपूर्ति की थी। प्रचार-प्रसार से वे हमेशा दूर रहे, आज भी उन्हें दूरदर्शिनी पट पर अपनी प्रति छवि देखने की कोई लालसा नहीं थी, किसी भी पुरस्कार या नाम की आशा से उन्होंने देश सेवा नहीं की थी, वे सच्चे देश सेवक थे। यहां पर निस्वार्थ भाव से देश सेवा अपने देश के प्रति कर्तव्य पालन किया गया है।

तब भी समस्यायें आज की क्षुद्र -संकीर्ण समस्यायें नहीं थी, वेतन वृद्धि से राजकोष के रिक्त होने का न भय था, सबसे बड़ी बात देश में कंगाल-भिक्षुक बन, विदेशी सत्ता के सम्मुख झोली फैलाकर भींख मांगना नहीं सीखा था। समाजवाद की अन्त:सार-शून्यत: ने उन जैसे निस्वार्थ देश सेवियों को भयत्रस्त नहीं किया था, जनता जानती थी कि देश के सभी कर्णधार, वास्तव में साफ-सुथरे निष्ठावान देशसेवक हैं।[१४६]

उन्हें याद है कि कैसे उन्होंने अपने साथियों के साथ महीनों वन-अरण्यों में नमक की डली से सूखी रोटी खाकर, देश की लड़ाई लड़ी थी।

माधव बाबू सच्चे देश भक्त थे, वे देश के लिए कभी अपने सर काट कर हथेली पर धर सकते थे, जिसके लिए अपने परिवार का मोह काट फक्कड़ बन हाथ में लुकाठी लिए निकल पड़े थे। [१४७]

(माणिक)

नलिनी के लिए उसकी बहिन रम्भा का बेटा बिन्नू तो उसके कलेजे का टुकड़ा था, रम्भा के पास किसी भी बात की कमी नहीं थी, फिर भी बेटे के दामी पब्लिक स्कूल का पूरा खर्चा नलिनी ही उठाती थी, यही नहीं उसके स्कूल लेजर, दर्जनों गर्म पेंट, कम्बल, उसक स्कूल के विदेशी पादरियों के लिए क्रेट भरे मौसमी फल भेजने का पूरा कर्तव्यभार जिस औदार्य से नलिनी ने निभाया था वह शायद कोई मां भी नहीं निभा सकती थी। [१४८]

(उपप्रेती)

नन्दी और रमा का पति पन्द्रह दिन चलते-चलते एकदम निस्प्राण से हो गये थे आधी रात को टिमटिमाती बत्ती देखी तो पैरों में नयी शक्ति का संचार हुआ, निकट आने पर यायावर, खूंखार, तिब्बती लामाओं के पास पहुंचे, बचपन में मां से सुना था कि तिब्बती हूंण आदमखोर होते हैं। मैं नन्दी को पीठ पर लादे था, मूर्च्छित होकर गिर गया। फिर पूरा महीना

उन्होंने मृत्युंजयी तिब्बती जड़ी-बूटियों के चमत्कार कुछ उनकी उग्रतेजी जौ की शराब 'च्यंग' ने और कुछ .उनके निष्कपट स्नेह ने उनके तन और मन के घाव भर दिये, यहां उन्होंने अपरिचितों को सहारा देकर निष्कपट भाव से उनकी सेवा की है।[१४९]

(कैंजा)

रोहित की मां पगली थी और वह रोहित के जन्म होते ही मर गयी थी। अविवाहिता नन्दी ने उस अनाथ बच्चे को बड़े स्नेह और प्यार से पाला तथा पिता का आभाव खटकने नहीं दिया था। एक से एक खिलौने, मनपसन्द पुस्तकें, जूते और मुंह मांगी मिठाइयाँ, छोटी से छोटी उसकी आवश्यकतायें पूरी करती थी। [१५०]

एक बार गदाधर भट्ट अपने अकर्मण भतीते के विवाह का प्रस्ताव लेकर शास्त्री जी के पास उनकी पुत्री नन्दी का हाथ मांगने गये, जब उन्हें उसके घोर वैधव्य योग के विषय में पता चला तो वे चुपचाप खिसक गये थे। लाख दुराचारी हो पर है तो सगा भतीजा, उन्हें अपने भाई के उस कुपुत्र के प्रति एक अजीब लगाव था।[१५१]

सुरेश भट्ट को नन्दी की कुण्डली के वैधव्य योग के विषय में पता चला तब भी वह उसके विवाह का प्रस्ताव लेकर नन्दी के घर पहुंच गया और उसने कहा कि मैं आपकी कन्या से विवाह करना चाहता हूँ, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।[१५२]

नन्दी के पिता के साथ घूम कर लौट रही थी तभी उसने रजतगिरि - सी अचल पड़ी उस दीर्घ देह को देख दोनों चौंक पड़े थे। हवा के झोकों में झर-झर कर चार पांच बुंरुश उसकी चौड़ी छाती पर गिरा दिये थे। उलझे-बिखरे, केश-गुच्छों पर एक बड़ा टोकर-सा बुरुंश आकर ताज सा अटक गया था। ओफ! कितना सुन्दर लग रहा था निदर्य! एक क्षण को उस मातृ पितृहीन अभागे के लिए नन्दी का कोमल हृदय करुणा से छलक उठा था और कण्ठ में उठ गई सिसकी उसका गला सा घोंटने लगी थी। पिता उस दिन साथ न होते तो शायद वह वहां बैठ, उसके बालों से फूल निकालने लगती और शायद-कुछ और मूर्खता भी कर बैठती।[१५३]

नन्दी जब गांव पहुंच शादी कर, रोहित को उसके पिता से मिलवाने ले जाती है तब घर पहुंचते ही सरत बिरादरी की समवेत सहानुभूति ने उसका दुःख सचमुच हल्का कर दिया, कोई दूध ले आया, कोई चाय। दूर के रिश्ते की स्नेही ताई तो अपना - बोरिया-बिस्तर लपेट उसके यहां सोने को भी आ गई थी। वह उसकी कोई सगी सम्बन्धी नहीं थी, केवल उस गांव की बिरादरी की ही थी फिर भी सभी ने उसके साथ सगे सम्बन्धियों जैसा व्यवहार किया और उसकी मदद की।[१५४]

जब पगली प्रसव-पीड़ा से छटपटा रही थी और एक अवैध सन्तान को जन्म देने वाली थी, तब उत्तेजित भीड़ बन्द द्वार की दरार से नन्दी को सहानुभूतिपूर्ण स्वर में अनुभूति नुस्खे थमा रही थी।

''अरे कहो, रस्सी पकड़ दर्द झेलती रहे।''

''अरी, ले यह भभूत टेक दे छोकरी के माथे पर।''

''सतिया धराया या नहीं मालदारिन? सब बंधन खोल दे - चोटी, गले की माला, बटन।''

पसीना-पसीना हो रही नन्दी का उतरा चेहरा देख लग रहा था, दर्द जच्चा को नहीं, स्वयं उसे ही उठ रहे हैं।[१५५]

उत्सुकता के साथ पूरी भीड़ अन्दर घुस गयी और पगली के पुत्र का जन्म पूरे सरल ग्राम का आनन्द बन गया था। क्षमाशील नवजात अवैध शिशु की जननी के कलंक, उसकी नानी के कलुषित और सुरेश भट्ट के जघन्य अपराध को भूल-बिसर कर रह गये थे। पगली पूरे गांव की बेटी थी और उसका पुत्र पूरे गांव का पौत्र।[१५६]

सुरेश भट्ट नन्दी से प्रेम करता था और नन्दी भी किन्तु वह वैधव्य योग के कारण आजीवन अविवाहिता रहने का निश्चय किया था किन्तु वह रोहित को उसका पिता

से मिलाने के लिए जिस चित्त विकार से मुक्ति मांगी थी आज उसी दिव्य धरा पर मत्था टेक उसी प्रेमी से चिर-मिलन का वरदान मांगा।[१५७]

(शमशान चंपा)

चंपा की बुआ रुक्की ने उसकी सगाई में पूरी व्यवस्था की थी उसने अपनी भाभी पर किसी प्रकार का आर्थिक भार नहीं पड़ने दिया था इस प्रकार उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने पर मदद करती है।[१५८]

चंपा रात को बीहड़ मार्ग से मि० सेन गुप्ता के साथ नहीं जाना चाहती किन्तु दूसरे ही क्षण उसे खयाल आता है कि कोई रोगिणी उसकी प्रतीक्षा में बिना औषधि के अचेत पड़ी है, इसका ध्यान आते ही उस कर्मठ डाक्टरनी का कर्तव्य बोध जाग उठा और वह उनके साथ चली जाती है।[१५९]

चंपा के बिना बताये जाने के बाद उसकी नौकरानी चांदमनी जो कि स्वामीभक्त थी और उसे प्रेम करती थी, किसी के भी कहने पर घर नहीं गयी और उसका पिता उसे अंगोछे में बांधकर रोटी और लोटा भर रस दे जाता था। उसे ही खा-पीकर वह बरामदे में पड़ी रहती, वह इसलिए अपने घर नहीं जाती कि अगर दीदी आ गई तो इतनी दूर उसे खबर देने कौन जायेगा।[१६०]

(ग) पराजैविक मानविकी मूल्य -

शिवानी की कृतियों में मूल्यांकन गवेषणा की प्रक्रिया में अनुसंधित्सु ने पाया है कि शिवानी का वैचारिक धरातल तथा संवेदनात्मक आधार मूल्यों के प्रति सहज रूपेण आग्रही है। इसीलिए उनकी कृतियों में जीवन मूल्यों से सम्बन्धित समस्त सन्दर्भ परिवेक्षित होते हैं। जैविक मूल्यों की विविध रूपाकृतियों से उनका रचना संसार सम्पन्न है। अधोप्रस्तुतियों में इस तथ्य का अनुसंधानपरक प्रस्तुति कर इस प्रकार है -

(चौदह फेरे)

शिवानी के औपन्यासिक कृतियों में पराजैविक सामाजिक मूल्यों के रूप में विलुप सामग्री संग्रहीत है। वस्तुतः उपन्यास के कथ्य कामर्य ही मूल्याग्र ही होता है। शिल्प के सौन्दर्य के माध्यम से चेतना को उज्जवल करने वाला यह उदाहरण दृष्टव्य है -

ऊँचे नारियल और ताड़ के वृक्षों से घिरा 'नन्दी' अपने असंख्य कक्ष -गवाक्षों की जगमगाती बत्तियों से किसी जंगी जहाज सा लगता था। दूर से किसी भड़कीले होटल सा दिखता वह अनुपम अन्तुंग सौंध, बंगला के कुशल शिल्पियों की चतुर कला का उत्कृष्ट नमूना था। कल्पते में एक से एक भड़कीले प्रसाद हैं दमकीली अदालिकायं हैं। किन्तु नन्दी का सौन्दर्य वास्तव में मौलिक था। सुना है किसी फ्रेंच इंजीनियर को मोटी रकम देकर कर्नल ने नन्दी का नक्शा बनवाया था। वह एक आलीशान अद्दालिका नहीं हिन्दूकला के इतिहास के किसी सुवर्ण युग की जीवन्त झांकी थी। कहीं पर दक्षिण के महाबलिपुरम् के गुरूद्वार पर अंकित थी, कहीं पल्लव शैली के ऊँचे शिखरों को जावा और अन्नाम के मन्दिरों का रूप देकर, गगन चुम्बी, मोहक मरोड़ो में मोड़ दिया गया था। दक्षिण की प्राचीन तक्षण शिल्पकला बंगाल के कुशल आधुनिक शिल्पियों की चतुर अंगुलियों में पुनः प्राणवान हो उठी थी। कला मर्मन पाण्डे ने रंगीन पत्थरों को जोड़ जोड़ कर ऐसे अनूठे मेहराव और कंगूरे बनवा दिये थे कि सोलहवी शताब्दी की भवन निर्माण कला भी फीकी पड़ जाती थी। एक खुले प्रकोष्ठ में एक छोटा सा कमरा था जिसमें चारों ओर जाली सी झिलमिल खिड़कियां थी और पूरा फर्श मोजेइक था यहां कला सौन्दर्य का नमूना परिदृष्ट है।[१६१]

रेक्सी प्रायः ही अपने रंग -तुलिका बटोरकर नन्दी में आ जाता और दिन भर स्क्रेच करता रहता है। रेक्सी के माध्यम से कला के प्रति प्रेम दिखाकर पराजैविक मानविकी मूल्य को दर्शाया गया है। [१६२]

मालकिन की ऐसी हालत है मैं अकेली जान हूँ कहाँ-कहाँ देखूँ, क्या-क्या करूँ? बहादुर से अब कुछ होता नहीं मुझे भी लिवाने भतीजा कई बार आ चुका है कहता है – चाची अब तेरी उमर क्या नौकरी की रह गई है? जानती हूँ लली पर जहाँ सुख में मालकिन के साथ रही, वहाँ दुख में उन्हें छोड़ दूँ। यहां पर मानविकी मूल्य है क्योंकि वह घर की बहुत पुरानी नौकरानी है वह चाहती तो जा सकती थी उसका भतीजा कई बार उसे लिवाने आया था उनका साथ देना अपना धर्म समझती थी और इस वृद्धावस्था में अकेले छोड़कर नहीं गई। [१६३]

काम, क्रोध, द्वेष से ऊपर उठ जाना पराजैविक मानविकी मूल्य की श्रेणी में आता और नन्दी इस सबसे ऊपर उठ चुकी थी। इसलिए यहां पराजैविक मानविकी मूल्य है। कैसी माँ? जानती हो नादान लड़की यहाँ कोई किसी की माँ और किसी की कोई पुत्री नहीं है। 'मुझे अपनी माँ से मिलना है' बच्ची की जिद से अपने वाक्य दुहराती अहल्या का चेहरा खीझ और क्वान्ति से लाल पड़ गया। 'अहा, इस आश्रम के प्रांगण में राग द्वेष, काम-क्रोध सब धूनी में झोंककर प्रवेश करता है। [१६४]

जब अहल्या से मल्लिका मिलती है और तो वह उसे अपनी कहानी सुनाती है कि केसे वह मिसेज डटा बनी कैसे होस्टल खुला और किस प्रकार वह उन पेशेवर युवतियों की आण्टी बन गई। इस प्रकार मल्लिका सत्य बोलकर पराजैविक मानविकी मूल्य का सृजन करती है। [१६५]

(मायापुरी)

गोदावरी के पति इंजीनियर थे, पर ईमान के पक्के। कभी हराम का पैसा नहीं छुआ। उनके नीचे के ओबरसियर कार में घूमते , पर वे अपनी बग्घी में ही सन्तुष्ट थे। यहां पर ईमानदार इंजीनियर ने अपने धर्म का पालन का पराजैविक मानविकी मूल्य को सृजित किया है। [१६६]

उस्ताद अपनी लम्बी सरस अंगुलियां अमृत-वृष्टि कर आमंत्रित अतिथियों को पीलू के उतार-चढ़ाव में सराबोर कर उठीं कुशल सपेरे की बीन की भांति सरोद ने सबको मस्त नाग सा झुमा दिया पीलू उस्ताद का प्रिय राग था फिर आज उनके दिल का दर्द संगीत में बिलख रहा था।

उस्ताद ने आंखे बन्द कर पीलू को फिर छेड़ा और छेड़ा .... उनके दिल की हर दबी सिसकी हर आह सरोद के तारों में तैर गई, जैसे वह पीलू नहीं, अजमल की मौत का मर्सिया था।" जब सरोद वादन समाप्त हुआ तब किसी के मुंह से कुछ देर तक बोल भी नहीं फूटा। फिर तालियों की गड़गड़ाहट से शामियांना गूंज उठा । लेडी बॅक ने अपने हाथ से प्लैटीनम का बहुमूल्य कंकण उतार कर उस्ताद के हाथ में दे दिया। बोली 'ओ इट बाज सुपर्व। यह सरोदवादन आलौकिक था। [१६७]

फिर चन्दाबाई का गायन आरम्भ हुआ उम्र के साथ गायकी की मिठास चली गई थी। पर विधान ने उन्हें लोंच दे दी जो वर्षों के नियमित रियाज से मिलती है। वह उनकी अखण्ड तपस्या का पुण्य फल था। उनके सधे गले से ली गई प्रत्येक तान स्वर-ताल और लय श्रोताओं को मुग्धकर देती। उनकी घिर आये बदरा, नहीं आये घनश्याम' सुनकर रसिक सुजन कभी-कभी रो पड़ते। हाव भाव के बार-बार 'नहीं आये घनश्याम' गाती साठ वर्ष की चन्दाबाई मानो बीस वर्ष की तन्वी तरुणी बन जाती। संगत करता तबलची झूम उठता संगीत वाले मुशताक की अंगुलियाँ गाई हुई तानों को सारंगी पर दुहराती। 'नहीं आये घनश्याम' कह हाथ कभी कान पर रख, कभी उठते गिरते वक्षःस्थल परक भी इधर कभी उधर, बिल्कुल दृष्टि से खोये घनश्याम को ढूढ़ती चन्दाजान - शून्य सी हो संगीत में तन्मय हो जाती। यहां पर भी कला के माध्यम से पराजैविक मानविकी मूल्य सृजित है। [१६८]

गांव में एक व्यक्ति मौलावक्स जो चूड़ी पहनाने आता है और उसका शोभा के परिवार के साथ कोई रिश्ता न होने पर मानवता के नाते उसके दुख से दुखी होता है और

उनसे अपने यहां आने को भरे गले से कहता है बेटी ऐसे कब तक गुजर होगी, तुम नैनीताल आ जाओ मेरी दुकान में तीन कमरे हैं, मैं तेरी चाची सुलेमान और बहु एक कमरा चौका मैं तुम्हारे लिए खाली करवा दूंगा। वहां दुर्गा को डाक्टरनी को भी दिखा सकती हो, फिर खुदा के दुआ से मैं दो पैसे कमा लेता हूँ। सुलेमान भी नेक बेटा है जो कुछ कमाताहै मेरे हाथ में धर जाता है। तुम्हें कोई तकलीफ नहीं होगी। मौलावक्स जो कि अपने जाति धर्म का भी नही था सिर्फ सामान्य सा परिचय था जिससे वह उन्हें अपने घर रहने और उनकी आर्थिक रूप से मदद करने को कहता है। यह केवल वह मानवता के नाते कहता है और उनकी मदद करना चाहता है।[१६९]

शोभा नौकरी की तलाश में रिश्ते के मामा के यहां पहुंचती है जिनकी पत्नी रूक्की तेज तर्रार स्वाभाव की थी, घर को हमेशा अस्त व्यस्त रखती थी पर शोभा ने काठ के बरामदे को झाड़ पौंछकर साफ बना लिया था। यहीं नहीं पिस्सुओं भली मैली क्वीनी भी शोभा के आने से स्वच्छ और सुन्दर बन गई थी। कृतज्ञता से कूं-कूं करती वह उसके पैरों के पास पड़ी रहती। कमरे के गूदड़ों को यथाशक्ति साफ-सुथरा कर शोभा के दक्ष हाथों ने चमका दिया था। वह उनके यहां रहती है और उनके घर का खाना-पीना, साफ-सफाई भी करती है।[१७०]

सतीश शोभा को ऐसे देखता है जैसे भक्त अपने देवता की मूर्ति को देखता है। शोभा की यह तेजोमय मंजुल मूर्ति उसके लिए सर्वथा नवीन थी। वह उठ खड़ा हुआ हृदय में क्षणभर में आई वासना उसे स्वयं धिक्कार उठी।

फिर वह उसके स्वाभाविकता से घर पहुंचाने को हाथ थाम लेता है और उसका हृदय उद्वेग रहित और निश्चिंत हो गया था। शोभा की अश्रुपूर्ण पवित्र आंखों का सन्देश उसमें दृढ़ता का संचार कर गया। वह दोनों सरल भोले बालकों से 'ईष्टलिन' तक पहुंच गये।

सतीश शोभा को बहुत प्रेम करता था और अपनी प्रेमिका को देव रूप में देखता है, यह प्रेम का चरम है। उसमें काम, वासना जैसे विकार नहीं रह जाते तब पराजैविक मानविकी मूल्य का सृजन होता है। और वह कहता है कि केवल तुम्हारी मंजुल मूर्ति ही मेरा पाथेय होगी। शोभा के कांपते हाथों को श्रृद्धा से अधरों से लगा लिया।[१७१]

(सुरंगमा)

बैरोनिका रौबर्ट और लक्ष्मी की शादी गिरजा घर में करवा कर जब उन्हें भेजती है। तब वह रौबर्ट से कहती है मैं जानती हूँ कि तुमने मेरे लिए कितना बड़ा त्याग किया है। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम इस त्याग की पावनता को अक्षुण रखोगे। वह अपने सच्चे धर्म का पालन कर पराजैविक मानविकी मूल्य का सृजन करते हैं।[१७२]

'नहीं वह किसी की पत्नी नहीं है। फिर मुझे दृढ़ विश्वास है बॉबी कि तुम्हारा संस्पर्श भी अजन्मे शिशु के भविष्य को संवार देगा' बाइबिल की शपथ रखाकर कहता हूँ, लक्ष्मी तुम्हारा हाथ पकड़ने पर भी किसी प्रकार की कामना-वासना ने मुझे रुद्ध नहीं किया। बैरोनिका चाहती है, तुम्हें पढ़ा-लिखा कर वह तुम्हें आत्मनिर्भर बना दे, तब तक तुम्हारी शिक्षा का तुम्हारी सन्तान के भरण पोषण का भार मैंने सहर्ष स्वीकार किया है।उस अनजान स्त्री को पढ़ लिखा कर आत्म निर्भर बनाना और जो सन्तान उसकी भी नहीं है उस अजन्मे शिशु का भार सहर्ष स्वीकार करने में रौबर्ट और बैरोनिका द्वारा पराजैविक मानविकी मूल्य का सृजन हुआ है।[१७३]

सुरंगमा पांच वर्ष की हुई तो बैरोनिका बड़े आडम्बर से उसे उस कान्वेन्ट में डाल आई, जहां लखनऊ के ऊँचे अफसरों की पुत्रियाँ पढ़ती थी। लक्ष्मी ने दवे स्वर में आपत्ति भी की थी, "वहां की तो फीस भी ऊँची है आप कहें तो मैं अपने कालेज के नर्सरी स्कूल में डाल दूँ।" पर बैरोनिका ने कहा कि सुरंगमा हिन्दी स्कूल में नहीं पढ़ेगी फीस की चिन्ता तुम्हें नहीं करनी होगी, क्या उसका डैडी प्रत्येक माह उसके नाम मनीआर्डर नहीं भेजता? रौबर्ट की पुत्री

न होने पर भी वह उसे नियमित रूप से पढ़ाई का खर्च भेजता है। शिक्षा में योगदान देकर रौबर्ट द्वारा पराजैविक मानविकी मूल्य सृजित हुआ है।[१७४]

बैरोनिका लक्ष्मी को भी उतना ही प्रेम करती थी जितना अपने सगे भाई रौबर्ट को वह उससे सत्य भी कहती है कि जिस दिन मैंने तुम्हारे सम्मुख रौबर्ट से विवाह का प्रस्ताव रखा, उस दिन मेरे मन में पाप था। बैरोनिका लक्ष्मी और सुरंगमा को बहुत प्रेम करने लगती है और उससे सत्य बोलकर पराजैविक मानविकी मूल्य का सृजन करती है। [१७५]

मैंने तुमसे एकदिन बाईबिल की शपथ खाकर कहा था कि तुम्हें देखकर किसी भी विकार ने मुझे त्रस्त नहीं किया। पर अनजाने में ही, बहुत बड़ी भूल कर गया था जिस दिन गिरजाघर में तुम्हारा कांपता हाथ पकड़कर मैंने शपथ ली थी, वह शपथ शायद मेरे मुंह से ही नहीं निकली थी, निकली थी हृदय के कोने से। जिस दिन मैं तुम्हें लेकर पहली बार घर गया था, लक्ष्मी एकदम पागल हो गया था, लक्ष्मी एकदम पागल जानती हो, किस ममन्तिक चेष्टा से मेने अपने को रोका? मेरे भीतर जैसे कोई शैतान बैठा मुझे उकसा रहा था। प्रत्येक बार तुम्हारा स्पर्श मेरी समस्त शिराओ को झनझना रहा था। जब मैं तुम्हें लेकर दुबारा लखनऊ लौटा, तब ही मुझे लगा कि मैं अब अपने को अधिक छल नहीं सकता। तुम मुझसे बहुत छोटी थी, फिर परिस्थितियों ने ही तुम्हें मेरी पत्नी बनाया था। तुम पर मेरा कोई अधिकार नहीं हो सकता था, तुम्हें केवल पति की मान्यता देने की शपथ मैंने गृहण की थी, पर जितनी ही बार मैं तुम्हें देखता मेरा अविवेकी स्थाई पाशविक चित्त अपने अधिकारों की मांग से मुझे पागल बना देता- इसी से मैं भाग गया, यह जानकर भी भाग गया लक्ष्मी कि मां की तरह मेरा पालन पोषण करने वाली मेरी बहन के लिए मेरा पलायन एक ऐसी चोट होगी जिसे यह शायद सह नहीं पायेगी। रौबर्ट सत्य बोलकर पराजैविक मानविकी मूल्य का सृजन करता है।[१७६]

रेल के डिब्बे में एक अनाथ बालक को देवदूत से सहृदय गुरू ने विधिवत गंडा बांधकर अपना शर्गिद बना लिया था और संगीत की जिन दुरूह गलियों से पार करा कर,

उन्होंने उसे संगीत की जिसे सर्वोच्च सोपान की ऊँचाई पर खड़ा कर दिया वहां से नीचे झांकते ही उसका सर चकरा गया। उस्ताद वली मुहम्मद के कठोर अनुशासन ने उसके कण्ठ के खरे सोने को कठिन रियाज की आग में तपाकर निखार दिया था। खरज भरन की सुदीर्घ कठिन रज्जूबन्धन में उस्ताद उसे घण्टों बांधकर छोड़ देते। उसी बन्धन ने उसे लचीले सुकुमार कण्ठ के उस उद्भुद माधुर्य में अभ्यस्त नट के पैरो की-सी ही आडिग स्थिरता ला दी थीं, एक से एक दुरुह अप्रचलित राग रागिनियों को वह हवा में गेंद की भांति उछाल फिर सधी तत्परता से हथेली पर साध लेता। टप्पा गाने बैठता स्वयं वली मुहम्मद झूमकर उसके दोनों हाथ चूम लेते, अनाथ बालक को दुरुह संगीत गायन कला के माध्यम द्वारा पराजैविक मानविकी मूल्य का सृजन है। [१७७]

उस तरुण गायक को जब कलकत्ते के एक प्रसिद्ध संगीत जलसे में गाने का सुअवसर मिला तब संगीत के गुणी पारखी उस कण्ठ से कलावती, चन्द्रकोस, कौशीकान्हाड़ा, नारायणी जैसी कठिनता से पकड़ में आने वाला कठिन राग-रागनियों का अद्भुद प्रस्तुतीकरण सुनकर झूम उठे। निश्चय ही वह कोई शापभ्रष्ट गन्धर्व था। स्वरलय उसकी मुट्ठी में बन्द थे खटके, कण और मुरकियां जिस स्वाभाविकता से उसके कण्ठ कें फिसल उसकी गायकी का एक सर्वथा मौलिक श्रृंगार कर जाती थी। [१७८]

पंडित जी जब नृत्य सिखाते तो झुकी कमर एकदम सतर हो जाती और वह नांच सिखाने खड़े होते तो लगता वह बूढ़ा जानकी प्रसाद नहीं, स्वर्ग से सद्य:वतरित कोई नृत्यारता अनुपम सुन्दरी अप्सरा है -

आवत श्याम लचकि चले

मुरली अधर धरे

मुरली ऐसी बजी के

मन को हरे

आवत श्याम......

वह नवावजान से कहते कि हाथ में मुरली न हो फिर भी देखने वाले को उसकी अनदेखी तान हिरन सा मोहक बांध ले। मुरली ऐसी बजी-मुरली ऐसी बजी' कह वह काल्पनिक मुरली थाम इधर-उधर विभ्रान्त दृष्टि से देखते स्वयं नृत्य विभोर होकर सुधबुध खो बैठते। नृत्यकला के माध्यम से पराजैविक मानविकी मूल्य सृजित है।[१७९]

(कालिंदी)

अन्ना ने अपने ससुराल से वापस आने पर पिता ने उसे दादी के लाख मना करने पर दूसरे दिन से खड़िया पाटी थमा दी। धीरे-धीरे उसने नवीन जीवन के उलझे ताने स्वयं सुलझा लिये विवाह से पूर्व ही वह पिता के साथ काशी जाकर मध्यमा की परीक्षा दे आयी थी अब उसने साधिकार पिता के सचिव का कार्य संभाल लिया, दादी बड़बड़ाती रहती एक तो लड़की का भाग्य ही खराब है उस पर बाप रही सही कसर पूरी कर रहा है अरे क्या पौरोहित्य सिखायेगा आज तक किसी स्त्री को पौरोहित्य करते सुना है न बिनने फटकने में मन है लड़की का न सिलाई-बिनाई में, धाधरी गले से बंधी है न जाने कब दर्द उठ जाये पर इसे खड़िया पाटी से ही फुरसत नहीं, अरे क्यों दिमाक खराब कर रहा है उसका? पर अन्ना तो अपनी समवयसिनी लड़कियों के मानसिक स्तर से बहुत ऊपर उठ चुकी थी। सहृदय पिता ने उसे बांहों में उछाल विपुल व्योम में त्रिशंकु सा लटका दिया था। जहां की नसीम शून्यता में दिन-रात विचरण करती वह अनन्त तारिकाओं में गमनशील स्वाभाव विकार, वर्ण प्रभाव उसके उर्ध्वगामी तोरण दंड-वक्र अनुवक्र, ग्रहों का नक्षत्रों के साथ समागमन सप्तर्षियों का संचार उसे क्रमशः बटलोही में भदकती दाल को चलाने से कही अधिक रोचक लगने लगा पर पिता उसे आढ़क द्रोण कुडव नाडिका, पारकाष्ठ, कला एवं ऋतु की परिभाषायें समझाते और वह अपनी विलक्षण स्मृति के सहारे दूसरे ही दिन बालशुक की तत्परता से रहकर. पिता को सुना देती तो वे गदगद हो कर कहते मैं जानता था अन्ना मेरा समराशिगत लग्न, गुरू और शुक्र तुझे ऐसा ही वैदुष्य सम्पन्न बनायेगे। तू एक

दिन वेदांत शास्त्रज्ञा बनेगी बेटी। समाज की परवाह ना कर अपनी पुत्री को पढ़ा लिखाकर विदुषी बनाते हैं।[१८०]

बैजनाथ की सर्वोत्तम मूर्ति को भगवती ने देखा तो वह निर्वाक खड़ी ही रह गई। सामान्य सी खंडित होने पर भी आकृति के निर्भीक उभार में पैरों की दृढ़ता में महिमामय मुख की रेखाओं में कैसा अदभुद तेज था। कौन रहा होगा इसका मूर्तिकार क्या यह भव्य स्मित् मोनालिसा के विश्वविख्यात स्मित से कुछ कम था? फिर भी इस अरण्य में अनाघ्रात पुष्प सी अवहेलित पड़ी इस मूर्ति की ओर हमारे कला मर्मज्ञों का ध्यान अब तक क्यों नहीं गया? दीदारगंज की यक्षिणी तो विदेशों में आयोजित भारत उत्सव में न जाने कितनी बार जा कर अपनी यश पताका फहरा आई पर धातु में उकेरी गई जीवन्त प्रतिमा में जो विजय का अनोखा उल्लास है स्मित भंगिमा में जो आध्यात्मिक गरिमा का तेज है, पाप के ऊपर पुण्य की विजय का जो अमर सन्देश है उसे क्या हमारी कलांध आंखे कभी नहीं देख पायेंगी? कालिंदी को लगा वह मूर्ति केवल निष्प्राण मूर्ति नहीं है, अपने में बहुत कुछ समेटे खड़ी है केवल अपना भार अपना आयतन ही नहीं पहाड़ के कठिन मौसमी आघातों को रहने की अद्‌भुत क्षमता अपने सृष्टा का अपने अनामा मूर्तिकार का समग्र जीवन उस युग का समस्त ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य लिए भगवती खड़ी है। कौन रहा होगा ऐसा दिव्य शिल्पी कुमाऊँ का माइकेल एंजिलों जो बिना अपने हस्ताक्षर किये ऐसी भव्य मूर्ति बनाकर स्वयं कालर्गत में अदृश्य हो गया।[१८१]

एक दिन चड़ी को एकान्त में बिरजू मिल जाता है, वह चड़ी को सब कुछ सच-२ बताता है, गांव वालों के लिए तो मैं भाई का हत्यारा हूँ, मक्कार गुंडा, लोफर तुझसे कसम खाकर कहता हूँ कि चड़ी उसने फिर भावेवेश में आकर कालिंदी के दोनों हाथ पकड़ लिये। मैंने गिरूवा की हत्या नहीं की और लछूआ भण्डारी की बेटी को लेकर जो सब कहते हैं वह भी झूठ है क्या? मत पूछ चड़ी मत पूछ मैं तुमसे झूठ नहीं बोल सकता-तो क्या यह

बात सच है? वह एक क्षण को गूंगा बन गया फिर रुधे कंठ से उसने अपना जघन्य अपराध स्वीकार कर लिया। [१८२]

(पाथेय)

प्रतुल मेधावी तो था ही, कण्ठ भी था उतना ही मधुर। वादविवाद में उसे कोई पराजित नहीं कर पाया, उस पर गणित में तो उसका लोहा, उसे अध्यापक भी मान गये थे सरस्वती जैसे स्वयं प्रसन्न हो सदैव उसके जिहाग्र पर बैठी रहती। यह अतिमानस का प्रतीत है। [१८३]

विनायक के पिता मृत्यु से पहले, एक दिन जिद कर कचहरी जाकर अपना बिल बना गये थे, अपनी पूरी सम्पत्ति अपना फार्म हाउस पत्नी के गहने सब कुछ मेरे नाम कर गये थे। इतने बड़े ऋण का मैं वहन नहीं कर सकती थी, पर उनसे कुछ कहती तो उन्हें दुख होता। इसी से अभी जाकर उनके फार्म हाउस की चाबी उनके विपत्ति के सखा राधवन शास्त्री को सौंप आई हूँ अब आप ही रहेंगे यहाँ, मैंने यह फार्म हाउस आपके नाम ट्रान्सफर कर दिया है। उनके शेयर, बैंक की सम्पत्ति यूनिट सबका ट्रस्ट बना, उसी हास्पिटल को दे दिया जिस कुटिल रोग ने उनके इकलौते पुत्र के प्राण लिये, शायद उनका वैभव किसी ऐसे ही अभागे रोगी की यंत्रणा कुछ कम कर सके। तिला उनकी सम्पत्ति अच्छे कार्य में लगा देती है यह धर्म का कार्य है। इस प्रकार तिला अपनी मिली हुई सम्पत्ति का सदुपयोग मानवता के हित में करती है। [१८४]

(बदला)

रत्ना आत्मविभोर होकर नाच रही थी, भौंहों को खींच बार-बार कटाक्ष निक्षेपण करती विलासपूर्ण चकरधिन्नियाँ खाती, विचित्र रूप से शारीरिक चेष्टाओं का प्रदर्शन करती, दक्ष फिरकियों में लट्टू-सी घूमती अंत में मृत्तिकाघट सिर पर रख वह कांसे की थाली

पर नाचती-थिरकती कुछ क्षणों को जैसे मंच पर रहकर भी तिरोहित हो गई थी। कैसी अद्भुद कला प्रवीणता थी। लग रहा था वह क्षण-भर में व्याप्त होकर क्षण-भर में छोटी बनी जा रही, कभी निकट कभी दूर कभी आकाश में उछलकर सुनहरा बिन्दु बनकर खो जा रही थी और कभी चक्रनृत्य में उसकी सुराहीदार ग्रीवा ही जैसे धड़ से विलग होकर दायें-बायें घूम रही थी। नृत्यकला के माध्यम से पराजैविक मानविकी मृल्य सृजित है।[१८५]

(कृष्णकली)

पार्वती की अंगुलियाँ जावा की नर्तकियों की कलात्मक अंगुलियों सी थी। जिन्हें डिकी ने कठिन परिश्रम से गढ़कर विलक्षण चरक ने जिसने आज तक असंख्य अभिशप्त रोगियों को जीवनदान दिया था, उसने पार्वती की उन झड़ चुकी कलात्मक सुघड़ अंगुलियों को बनाकर विधाता को भी पिछाड़ दिया था।[१८६]

डा० पौद्रिक चाहती तो झूठ कह सकती थी कि तुम्हारी जिस बच्ची को मरी समझकर गाड़ने गई थी, वहीं फिर जी उठी। एक ही दिन तो उसे देख पाई थी, फिर नवजात शिशु प्राय: सब एक से ही नहीं होते? ऐसे ही घने बाल उसके भी थी, और ऐसी आँखे। पर मैं तुमसे झूठ बोलकर इसके प्राणों की भीख मांगने नहीं आयी हूँ। इस प्रकार डा० पौद्रिक पन्ना को उस बच्ची के विषय में सत्य बता देती है।[१८७]

डा० पौद्रिक पन्ना द्वारा उस बच्ची को अपना लेने पर कृतज्ञता से विह्वल आनन्दानुभूति को कुछ कहकर इस स्वर्णिक क्षण को नष्ट नहीं करना चहाती थी। ऐसी अनुभूति उन्हें पहले कभी नहीं हुई थी जबकि टोग से नुची-खुची बीभत्स बन गई, रोगड़ियाँ नवीन अंगों की बनावट से स्वयं ही आश्चर्य स्तब्ध हो, कृतज्ञता से उस जीवनदात्री के चरणों में लोट पोट हो गई थी। [१८८]

मैगी एक आदर्श क्रिश्चियन है, उसका पेशा चाहे जैसा हो पर वह हर इतवार को गिरजाघर जाती है, और कहती है हफ्ते में उन दो मनहूस रातों में जब मेरी एक सांस भी

अपनी नहीं रह जाती, मैं समय निकालकर बाइबिल पढ़ ही लेती हूँ। वह सच्ची क्रिश्चियन और अपने धर्म का पालन करती है। [१८९]

(कस्तूरी मृग)

जनाब गुलाम मुहम्मद, मेरे संगीत गुणग्राही पिता के परम मित्रों में थे कश्मीर के अतीद्रिंयवादियों की संगीत शैली के प्रमुख गायक जनाब गुलाम मुहम्मद साहब स्वयं संतूर बजाकर अपना सूफियाना कलाम पेश करते तो मजलिस में आयी एक से एक ख्याति प्राप्त पेशेवर गायिकाओं की गर्वोन्नत अहंकारी ग्रीवायें जेसे कट-कट कर जमीन पर बिछ जातीं। केवल हारमोनियम और करताली के माध्यम से प्रदर्शित छंदबद्ध गायकी में उस दिव्य कंठ के ईर्षणीय ऐश्वर्य की दपदपाहट का झाड़फानूस, महफिल के टिमटिमाते दीयों को श्री हीनकर, एक ही फूंक में बुझा देता। जैसा ही तृप्त कंठस्वर, वैसा ही स्वत: संज्ञान गायकी। बाबा फरीद, बुल्लेशाह की रचनाओं को गाते गाते वे कभी स्वयं रोने लगते। इधर मेरे पिता की रूपसी गोपिकायें रोते-रोते बेदम हो जातीं और उधर चिक के पीछे बैठी मेरी अम्मा।[१९०]

पटना की प्रख्यात गायिका चन्द्रावली की पौत्री राजेश्वरी बाई जो नन्हे के पिता की रक्षिता थीं का गायन सुनकर मेरे जी में आ रहा था कि उठकर बाहर चला जाऊँ किन्तु जा नही सका। उस विलक्षण गायिका की लौह बेड़ियों ने मुझे कसकर बांध लिया था वह दिव्य कंठ मुझे अम्मा के अपमान से बहुत दूर लिये जा रहा था। जोग राग उसके अपरूप सौन्दर्य में सहसा मूर्त हो उठा था। मैं सब कुछ भूल गया मेरी रग-रग में मेरी खानदान का रक्त तेजी से दौड़ने लगा मेरी आंखे स्वयं मुंद गई। राग के विस्तार अंश में वह शांत संयमित स्वर किसी निर्दिष्ट घराने के बंधन में नहीं बंधा था। लगता था सौन्दर्य सृष्टि ही उसका एक मात्र लक्ष्य था। गायन कला के माध्यम से पराजैविक मानविकी मूल्य सृजित है। [१९१]

(माणिक)

अवकाश प्राप्ति से पहले ही वह अपनी यह 'वाटिका' बनवा चुकी थी। देखने वालों को कभी-कभी आश्चर्य भी होता था कि नलिनी मिश्रा जैसे शुष्क महिला अपनी इस कोठी का ऐसा अद्भूत नक्शा बनाया कैसे होगा! वह नक्श उसी के उर्वर मस्तिष्क की उपज था। छोटी बहन रंभा ने तो यह भी कह दिया था, "जीजी लगता है, तूतांखा मेन के पिरामिड का ही नक्शा उतार लाई हो।" दूर से देखने पर 'वाटिका' सचमुच ही पिरामिड सी ही लगती थी। चारों ओर विशाल शिलाखंडों को शिलोच्चय, मेहराबदार दरबाजे और गुम्बदनुमा छतरी। वास्तव में 'वाटिका' की प्रतीकात्मक एवं अलंकरण कौशल की छठा दर्शनीय थी। उस पर अंडाकार छत पर चार मीनारें खड़ी करवा नलिनी ने एक अनेखा ही प्रयोग किया था। फारसी परम्परा के उन गुम्बदों की बनावट, मेहराबदार आले, कला की घुमावदार गोलाइयों की गति को ऐसी अद्भुत अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए नलिनी मिश्रा ने रात-रात भर बैठकर जिमेर, कुमार स्वामी, ब्राउन आदि भारतीय कला के रसविज्ञ पंडितों की कितनी पुस्तकें छानी हैं, यह उसके सिवा कौन जानता था।

पांच वर्षो के कठिन परिश्रम के पश्चात कोठी बनकर तैयार हुई थी। उसने स्वयं ही नक्शा तैयार किया था और यह अति मानस का परिचायक है। [१९२]

(कृष्ण वेणी)

कृष्ण वेणी उपन्यास में नायिका प्रखर बुद्धि की थी और वह आंखे बंद कर किसी का भी भविष्य देख सकती थी यह अति मानस का परिचायक है। अतः यहां पराजैविक मानविकी मूल्य है। जब कालेज में चर्चा चल रही थी कि कलकत्ता में बम गिरने वाला है और परीक्षायें भी नहीं होगीं किन्तु उसने जिस प्रकार माधू मांझी की मृत्यु देखी थी। [१९३]

ठीक उसी प्रकार हुआ। इस उपन्यास में एक बार नहीं बार-बार उसने

भविष्यवाणियां की जैसे उसके ननिहाल में सामान्य सा अपेंडिक्स का ऑपरेशन था किन्तु वेणी ने उनकी मृत्यु की भविष्यवाणी कर दी थी। [१९४]

कृष्ण वेणी ने एक दिन अनाड़ी घोड़े के जीतने की बात बतायी तो पिता को यकीन नहीं आया किन्तु उन्होंने वही घोड़ा रेस में जीता था।[१९५]

वेणी ने छोटे मामा के लिए देखा था कि वे मोटी-मोटी रस्सियों से बंधे हैं और उन्हें उन रस्सियों से बांधना भी असम्भव लग रहा है। जब मां रांची के पागलखाने में रेखा था जिस प्रकार वेणी ने बताया था कि वह लोहे के सीखचे पकड़े खड़े हैं उनका निचला वदन एकदम नंगा है। यह बात एकदम सत्य निकली थी।[१९६]

भास्करन ने वेणी का पोट्रेट क्या बनाया था लगता था वेणी ही अपनी लम्बी ग्रीवा को मराली सा मोड़, शो केश में बैठ गई है। भास्करन के द्वारा कला के माध्यम से मानविकी मूल्य सृजित हुआ है।[१९७]

एक बार कालेज में एक ठग मास्टर फोर्टीन के विषय में भी उसने भविष्यवाणी की थी कि वह बुरी तरह पीट-पीट कर निकाला जायेगा और उसके यहां कुटिया में से शराब की बोतलें उसने देखीं थी। उसकी यह भविष्यवाणी भी सत्य सिद्ध हुयी थी।[१९८]

यह सभी भविष्यवाणियां कृष्णवेणी ने की थी। उसने इन घटनाओं को घटने से पहले ही देख लिया था और यह अति मानस की स्थिति है।

(कैंजा)

नन्दी रामलीला में राम बनती वह जोगिया वस्त्र धारण कर अपनी असली लम्बी जटाओं का या उसके स्वर-भंग होते मीठे बचकाने कंठ-स्वर का। चौदह वर्ष के कठोर बनवास का दण्ड था, वह लक्ष्मण सहित वनगमन को जाने लगती को देख दर्शकों के साथ-साथ, शास्त्री जी भी आंखे पोछने लगते हैं। तबला ठनकता, हारमोनियम पर गदाधर भट्ट की वादननिपुण अंगुलिया थिरकती और अपने उस्तादी गले से वे मींठी चौपाई के माध्यम से, रंगमंच पर धीमी

मंथर पदचाप से अवतरित हो रहे, दशरथ नन्दन का परिचय देते -

कलकपोल कुंडल श्रुति लोला।

चिबुक अधर सुन्दर मृदु बोला।।

कुमुद बंधु कर निंदक हासा।

भृकुटि विकट मनोहर नासा।।

भाल विसाल तिलक झलकाहीं।

कल बिलोकि, अलि अवलि लजाहीं।। [१९९]

सुरेश भट्ट एक दिन नन्दी के सामने कहता है कि मैं जानता हूँ नन्दी, 'कौन कुटिल खलकामी मौसम''। कहकर अपने समस्त अपराध स्वीकार कर लेता है और सत्य कहता है।[२००]

सुरेश भट्ट अपने अंतिम समय में अपने समस्त अपराध स्वीकार करता है, इन हाथों ने एक पगली ही नहीं और भी कितनी पतिताओं को अलिंगन-पाश में बांधा है, फिर भी तुम्हें इस बाहुपाश की कामना है। मुझसे कुछ भी नहीं छूटा है, मर्डर, रेप ... वह बच्चों की तरह सुबकने लगता है। इस प्रकार वह अपने अपराधों को स्वीकार करता है और नन्दी इन सबके बावजूद उससे प्रेम करती थी और उससे विवाह करना चाहती थी।[२०१]

(शमशान चंपा)

धरणीधर की दर्शनीय अट्टालिका की दिव्य छटा इहलौकिक नहीं लगती थी। लगता था, उसकी सृष्टि केवल व्यवहारिक प्रयोजन के लिए नहीं की गई है। एक सोपान पर पग धरते ही निर्माणकर्ताओं का स्थापत्य-चातुर्य, सूक्ष्म सौन्दर्यबोध आंखों के बोध को बांध लेता था। दूर से देखने पर 'धरणी भवन' एक विशाल नेपाली मंदिर-सा ही लगता था।

चीनी पगोड़ा सी बहुमंजिली ढालू छत पर नक्काशीदार टोढ़ो पर यत्न से टिकाई गई थी। उन टोढ़ों की नुकीली धार हांथी गर्वीली सूंड की ही भांति ऊपर को उठी थी। बरसाती को पार कर बड़े गोल कमरे में प्रवेश करते ही अतिथियों को लगता, वे किसी श्रेष्ठ ऐतिहासिक बिहार में पहुंच गये हैं। कलात्मक गढ़न के चैत्यगवाक्ष, अनेक द्वारों की भित्ती, स्तंभों में उत्कीर्ण मूर्तियों की छटा वास्तव में दर्शनीय थी। प्रत्येक कलाकृति में एक प्रकार की ऐतिहासिक सूक्ष्म प्रतीकात्मकता और सांकेतिकता पारखी आंखों को बरबस बांध लेती थी। भवन की कलात्मकता में पराजैविक मानविकी मूल्य है।[२०२]

सन्दर्भ सूची

१ - हिन्दी उपन्यास और जीवन मूंल्य - डा० मोहिनी शर्मा

२ - सागर लहरें और मनुष्य - उदय शंकर भट्ट पृष्ठ १७६

१ -	मायापुरी	शिवानी	पृष्ठ ३७
२ -	वही	,,	पृष्ठ ३८
३ -	वही	,,	पृष्ठ ३८
४ -	वही	,,	पृष्ठ ४७
५ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ १७
६ -	वही	,,	पृष्ठ १८
७ -	वही	,,	पृष्ठ १९
८ -	वही	,,	पृष्ठ २१
९ -	वही	,,	पृष्ठ ३८
१० -	वही	,,	पृष्ठ ८७-८८
११ -	वही	,,	पृष्ठ ९४
१२ -	कालिंदी	,,	पृष्ठ १५६
१३ -	रथ्या	,,	पृष्ठ ८
१४ -	पाथेय	,,	पृष्ठ ११९
१५ -	वही	,,	पृष्ठ १३१

१६ -	पूतोंवाली	"	पृष्ठ १५-१६
१७ -	कस्तूरी मृग	शिवानी	पृष्ठ १३
१८ -	रतिविलाप	"	पृष्ठ १४
१९ -	शमशान चम्पा	"	पृष्ठ ६-७
२० -	शमशान चम्पा	"	पृष्ठ १०८-१०९
२१ -	अतिथि	"	पृष्ठ १७५
२२ -	कृष्णकली	"	पृष्ठ ६
२३ -	उपप्रेती	"	पृष्ठ २६-२७
२४ -	कालिंदी	"	पृष्ठ २५
२५ -	कैंजा	"	पृष्ठ ३३
२६ -	चौदह फेरे	"	पृष्ठ २३
२७ -	वही	"	पृष्ठ २४
२८ -	वही	"	पृष्ठ २४
२९ -	वही	"	पृष्ठ ५६
३० -	वही	"	पृष्ठ ६६
३१ -	वही	"	पृष्ठ ६७
३२ -	वही	"	पृष्ठ ७३
३३ -	वही	"	पृष्ठ ८४

३४ -	चौदह फेरे	शिवानी	पृष्ठ १०६
३५ -	वही	''	पृष्ठ १०६
३६ -	वही	''	पृष्ठ ११३
३७ -	वही	''	पृष्ठ ११७
३८ -	वही	''	पृष्ठ १३९
३९ -	वही	''	पृष्ठ १४३
४० -	वही	''	पृष्ठ १४६
४१ -	वही	''	पृष्ठ १४८
४२ -	वही	''	पृष्ठ १५६
४३ -	वही	''	पृष्ठ १५९
४४ -	मायापुरी	''	पृष्ठ ६
४५ -	वही	''	पृष्ठ ७
४६ -	वही	''	पृष्ठ १४
४७ -	वही	''	पृष्ठ २७
४८ -	वही	''	पृष्ठ ३०
४९ -	वही	''	पृष्ठ ३५
५० -	वही	''	पृष्ठ ३६
५१ -	वही	''	पृष्ठ ३८
५२-	वही	''	पृष्ठ ६२

५३ -	मायापुरी	शिवानी	पृष्ठ ६७
५४ -	वही	,,	पृष्ठ ७८
५५ -	वही	,,	पृष्ठ ८२
५६ -	वही	,,	पृष्ठ ९०
५७ -	वही	,,	पृष्ठ ९८
५८ -	वही	,,	पृष्ठ ११५
५९ -	वही	,,	पृष्ठ ११७
६० -	वही	,,	पृष्ठ १२८
६१ -	वही	,,	पृष्ठ १२९
६२ -	वही	,,	पृष्ठ १५५
६३ -	वही	,,	पृष्ठ १५८
६४ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ २५
६५ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ ३०
६६ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ ३४-३५
६७ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ ३६
६८ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ ३९
६९ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ ३९
७० -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ ४६-४७
७१ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ ५७

७२ -	सुरंगमा	शिवानी	पृष्ठ ५७
७३ -	वही	"	पृष्ठ ६३
७४ -	वही	"	पृष्ठ ७३
७५ -	वही	"	पृष्ठ ७८
७६ -	वही	"	पृष्ठ ८४
७७ -	वही	"	पृष्ठ ९१
७८ -	वही	"	पृष्ठ १००
७९ -	वही	"	पृष्ठ १५६
८० -	वही	"	पृष्ठ १५६
८१ -	कालिंदी	"	पृष्ठ १८
८२ -	वही	"	२२-२३
८३ -	वही	"	पृष्ठ ३१
८४ -	वही	"	पृष्ठ ३५
८५ -	वही	"	पृष्ठ ४०
८६ -	वही	"	पृष्ठ ४९
८७ -	वही	"	पृष्ठ ६०
८८ -	वही	"	पृष्ठ ६२
८९ -	वही	"	पृष्ठ १०८
९० -	वही	"	पृष्ठ ११०

९१ -	कालिंदी	शिवानी	पृष्ठ ११७-११८
९२ -	वही	"	पृष्ठ १४३
९३ -	वही	"	पृष्ठ १४६
९४ -	वही	"	पृष्ठ १४८
९५ -	वही	"	पृष्ठ १४९
९६ -	वही	"	पृष्ठ १५४
९७ -	वही	"	पृष्ठ १७१
९८ -	वही	"	पृष्ठ १७२
९९ -	भैरवी	"	पृष्ठ ७३
१०० -	वही	"	पृष्ठ १३२
१०१ -	गैंडा	"	पृष्ठ २२
१०२ -	वही	"	पृष्ठ २३
१०३ -	वही	"	पृष्ठ ३५
१०४ -	रथ्या	"	पृष्ठ २३
१०५ -	वही	"	पृष्ठ २४
१०६ -	वही	"	पृष्ठ ४३
१०७ -	पाथेय	"	पृष्ठ ११६-११७
१०८ -	वही	"	पृष्ठ १२१
१०९ -	वही	"	पृष्ठ १२२-१२३

११० -	पाथेय	शिवानी	पृष्ठ १३१
१११ -	वही	"	पृष्ठ १३६
११२ -	वही	"	पृष्ठ १३६-१३७
११३ -	वही	"	पृष्ठ १३८-१३९
११४ -	वही	"	पृष्ठ १४२
११५ -	वही	"	पृष्ठ १५२
११६ -	पूतोंवाली	"	पृष्ठ १५-१६
११७ -	वही	"	पृष्ठ १९
११८ -	वही	"	पृष्ठ २५
११९ -	वही	"	पृष्ठ ३५
१२० -	बदला	"	पृष्ठ ५५
१२१ -	वही	"	पृष्ठ ६०
१२२ -	कृष्णकली	"	पृष्ठ ११
१२३ -	वही	"	पृष्ठ ४६-४७
१२४ -	वही	"	पृष्ठ १२२
१२५ -	वही	"	पृष्ठ २०८-२०९
१२६ -	दो सखियाँ	"	पृष्ठ ३८
१२७ -	वही	"	पृष्ठ ३९
१२८ -	वही	"	पृष्ठ ४७-४८

१२९ -	दो. सखियाँ	शिवानी	पृष्ठ ६१
१३० -	कस्तूरीमृग	,,	पृष्ठ २८
१३१ -	रतिविलाप	,,	पृष्ठ १५
१३२ -	वही	,,	पृष्ठ १६-१७
१३३ -	वही	,,	पृष्ठ २९-३०
१३४ -	किशनुली	,,	पृष्ठ ४०
१३५ -	वही	,,	पृष्ठ ४३
१३६-	वही	,,	पृष्ठ ४३
१३७ -	वही	,,	पृष्ठ ४५
१३८ -	वही	,,	पृष्ठ ४८
१३९ -	वही	,,	पृष्ठ ४९
१४० -	वही	,,	पृष्ठ ४९-५०
१४१ -	कृष्णवेणी	,,	पृष्ठ २५-२६
१४२ -	वही	,,	पृष्ठ ४२
१४३ -	अतिथि	,,	पृष्ठ १३
१४४ -	वही	,,	पृष्ठ १०७
१४५-	वही	,,	पृष्ठ १३२
१४६ -	वही	,,	पृष्ठ १९०-१९१
१४७ -	वही	,,	पृष्ठ १९१

१४८ -	माणिक	शिवानी	पृष्ठ ३९
१४९ -	उपप्रेती	,,	पृष्ठ २८-२९
१५० -	कैंजा	,,	पृष्ठ ९
१५१ -	वही	,,	पृष्ठ १८
१५२ -	वही	,,	पृष्ठ १९
१५३ -	वही	,,	पृष्ठ २१
१५४ -	वही	,,	पृष्ठ २५
१५५ -	वही	,,	पृष्ठ ३१
१५६ -	वही	,,	पृष्ठ ३२
१५७ -	वही	,,	पृष्ठ ३५
१५८ -	शमशान चम्पा	,,	पृष्ठ ३१
१५९ -	वही	,,	पृष्ठ ४४
१६० -	वही	,,	पृष्ठ ८९
१६१ -	चौदह फेरे	,,	पृष्ठ ५
१६२ -	वही	,,	पृष्ठ २३
१६३ -	वही	,,	पृष्ठ ६७
१६४ -	वही	,,	पृष्ठ ७४
१६५ -	वही	,,	पृष्ठ १५०

१६६ -	मायापुरी	शिवानी	पृष्ठ ७
१६७ -	वही	,,	पृष्ठ ४३
१६८ -	वही	,,	पृष्ठ ४३-४४
१६९ -	वही	,,	पृष्ठ ९५
१७० -	वही	,,	पृष्ठ १०६
१७१ -	वही	,,	पृष्ठ १५३
१७२ -	सुरंगमा	,,	पृष्ठ ३७
१७३ -	वही	,,	पृष्ठ ४१
१७४ -	वही	,,	पृष्ठ ५१
१७५ -	वही	,,	पृष्ठ ५१-५२
१७६ -	वही	,,	पृष्ठ ५६-५७
१७७ -	वही	,,	पृष्ठ ६८
१७८ -	वही	,,	पृष्ठ ६९
१७९ -	वही	,,	पृष्ठ ७३-७४
१८० -	कालिंदी	,,	पृष्ठ १५-१६
१८१ -	वही	,,	पृष्ठ ११५
१८२ -	वही	,,	पृष्ठ १३५-१३६

१८३ -	पाथेय	शिवानी	पृष्ठ १४३
१८४ -	वही	"	पृष्ठ १५३
१८५ -	बदला	"	पृष्ठ ५२
१८६ -	कृष्णकली	"	पृष्ठ २
१८७ -	वही	"	पृष्ठ १०
१८८ -	वही	"	पृष्ठ १२
१८९ -	वही	"	पृष्ठ ३६
१९० -	कस्तूरी मृग	"	पृष्ठ ११
१९१ -	वही	"	पृष्ठ १५
१९२ -	माणिक	"	पृष्ठ १२
१९३ -	कृष्णवेणी	"	पृष्ठ १५
१९४ -	वही	"	पृष्ठ १७
१९५ -	वही	"	पृष्ठ १८-१९
१९६ -	वही	"	पृष्ठ २०
१९७ -	वही	"	पृष्ठ २५
१९८ -	वही	"	पृष्ठ ३३
१९९ -	कैंजा	"	पृष्ठ १७-१८
२०० -	वही	"	पृष्ठ २२
२०१ -	वही	"	पृष्ठ ३९
२०२ -	शमशान चंपा	"	पृष्ठ ९

पंचम अध्याय

उपसंहार एवं उपलब्धि

परिशिष्ट

(क) उपजीव्य ग्रन्थ

(ख) उपस्कारक ग्रन्थ

(ग) पत्र-पत्रिकायें

उपसंहार एवं उपलब्धि

मूल्यबोध एक सर्जक प्रतिक्रिया है। यह ठीक है, कि मूल्यों की स्थिति साहित्य मात्र में मिलेगी, पर उनके जैसी सजग प्रतीति आधुनिक काल में है, वैसी शायद इसके पूर्व में नहीं थी। पहले बंटवारा था, साहित्य और नीतिशास्त्र के बीच मूल्यों की रचना साहित्य में होती थी और उनकी व्यवस्था नीतिशास्त्र में। आधुनिक साहित्य मूल्यों की रचना तो करता ही है, उनकी व्यवस्था में भी उसकी रुचि विकसित हुई है। यह एक प्रकार से अतिरिक्त दायित्व उसने अपने ऊपर लिया है। यदि आधुनिक साहित्य का अर्थ हम नई कविता से लेते हैं तो कहा जा सकता है कि मानवीय स्वातन्त्रय का अहसास इस युग में तीव्रतर हुआ है। अनेक प्रकार के राजनैतिक तन्त्रों में राज्य की शक्ति जितनी उच्श्रृखिल होती गई है, उतनी ही अधिक चिन्ता मानव स्वातन्त्र की रचनाओं के बीच हुई है, न केवल रचनात्मक साहित्य में बल्कि आलोचनात्मक साहित्य में भी और अनेक प्रकार के गोष्ठी सम्बादों और सेमिनारों आदि में भी स्वाधीनता के सम्बन्ध में भी चर्चा मुख्य रूप से होती है। स्वतन्त्रता का मूल्य इन रचनाकारों ने दायित्व के साथ जोड़ा है। मानवीय स्वातन्त्र और दायित्व अविच्छिन्न मूल्य के रूप में माने गये हैं। दायित्व का अनुभव वही करेगा जो पहले स्वतन्त्र होगा और इन दोनों की अन्तर प्रक्रिया में रचनात्मकता की संभावना है, जो मानवीय वैशिष्टय का प्रमुख आधार है और फिर इस रचनात्मकता में से आस्था विकसित होती है। साहित्य आस्थामय बनता है और फिर स्वयं नई आस्थाओं को जन्म देता है।[1] इस रूप में स्वातन्त्र में दायित्व रचना और आस्था आधुनिक साहित्य के विशिष्ठ मूल्य कहे जा सकते हैं जो एक दूसरे से अनिवार्य रूप में जुड़े हुये हैं। मूल्यों के जांचने की प्रक्रिया रचना का सहज धर्म है और विघटन साहित्य में मूल्यों का नहीं होता। समाज के मूल्य बदलते रह सकते हैं और उस मामले में साहित्य के प्रति रुचियां भी बदलती रह सकती हैं। व्यास, कालीदास, टॉलस्टॉय, इलियट, निराला और शिवानी इनमें से किसी भी रचनाकार के मूल्य अपनी रचना के सम्बन्ध में

नहीं बदलते। विघटन का प्रश्न सामाजिक सन्दर्भों में हो सकता है। साहित्य के सम्बन्ध में मूल्यों का अन्वेषण और पुनरानवेषण होता है। मूल्य व्यवस्था प्रधानता धर्म शास्त्र पर नीतिशास्त्र का दायित्व है। आधुनिक साहित्य में मूल्यों की व्यवस्था इस मामले में भले हो कि वहां उस पर सजग बहस होती है पर किसी 'कोड' के रूप में मूल्य व्यवस्था को परिकल्पित करना रचना के विकासशील प्रक्रिया के विरुद्ध होगा। उदाहरण के लिए आधुनिक काल की शायद सबसे प्रसिद्ध और प्रतिनिधि रचना इलियट का 'वास्टलैण्ड' जिसमें प्रधानता चित्रण मूल्यों के ध्वंस का है और रचना का पक्ष केवल व्यंजित है वर्णित नहीं। इस रूप में कहना होगा कि आधुनिक साहित्य में मूल्यबोध और उसकी अस्मिता की गहरी प्रतीत है।

मनुष्य के कल्याण के सम्बन्ध में हम सबकी अलग अलग धारणायें होती है, इस लिए हमें कैसा मनुष्य बनना चाहिए उसके लिए क्या आधार चुनना चाहिए, इसकी भी अलग-अलंग मान्यतायें हो सकती हैं, जैसे आप परिवेश से यदि परम्परा लें, साहित्य ले, जीवन ले, साधनायें लें, तो यह दृष्टिगोचर हो सकता है। कि कोई समाज भौतिक उत्कर्ष को ज्यादा महत्व देता है, कोई दूसरा समाज भौतिक उत्कर्ष को महत्व देते हुए भी, इसी जीवन् में अपने को समेट कर नहीं रखता और इसी जीवन के भौतिक उत्कर्ष की सार्थकता को भी उसके अलौकिक या पारलौकिक मूल्यों के आधार पर निश्चित करता है। अतः अलग-अलग दृष्टियां अलग-अलग मूल्यों को जन्म देती हैं। सामाजिक परिस्थितियां या भौगोलिक परिवेश भी इन्हें किसी सीमा तक प्रभावित करते हैं। अति हिम शीतल प्रदेश के या मरुस्थल के या समशीतोष्ण के जीवन में सुख के साधन एक नहीं हो सकते और उस अन्तर के कारण व्यवहार में भी अन्तर आता है। उसके कारण दृष्टि में भी थोड़ा फर्क आयेगा। लेकिन मोटे तौर पर यह मान्य होगा, कि इन अन्तरों के बाबजूद सामान्य तौर पर मानव सुखी हो, स्वयं व्यक्ति के रूप में नहीं समाज के रूप में सुखी हो और सुख केवल विषयों के भोग तक सीमित न हो, प्रत्युत सुखानुभूति का धरातल इन्द्रिय से अतेन्द्रिय की ओर अग्रसर होता हुआ, विस्तृत सन्दर्भ और विपुल आयाम ग्रहण करताहो।

साहित्य के द्वारा मूल्य-सृजन होता है। किन्तु साहित्यकार जिन मूल्यों को स्वयं स्वीकार करता है या साहित्य में प्रतिपादित करता है, वे सदैव उसी के गढ़े हुये नहीं होते हैं। बड़े चिन्तकों से दार्शनिकों से बड़े समाज कर्मियों से साहित्यकार को मूल्यों की धारा प्राप्त होती रहती है, साहित्यकार जितना बड़ा चिन्तक अथवा दार्शनिक होगा उतने ही बड़े और नये मूल्यों का सृजन कर अपने दायित्व का निर्वाह कर सकेगा। इस प्रकार स्पष्ट हे दर्शन, चिन्तन, साहित्य का अभिन्न और उसको उदात्तता प्रदान करने वाला अंग है लेकिन सब समय समस्त साहित्यकारों से ये अपेक्षा नहीं की जा सकती कि हमारे आधुनिक साहित्यकारों ने या विश्व के साहित्यकारों ने भी जिन मूल्यों के विशेष रूप से प्रतिष्ठित करना चाहा है। उसमें एक बड़ी बात जो समझ में आती है, उसको बहुत से लोगों ने स्वाधीनता या बुद्धि की स्वतन्त्रता कहा है। इसे अननुगामिता (नानकनफर्ममिटी) कहा जा सकता है। अर्थात् पुराणों ने जो कुछ कहा है उसकी जांच पड़ताल की जाये और उसके बाद ही स्वीकार किया जाये।

साहित्य में जहां 'मूल्य' शब्द का प्रयोग होता है, तो उसका आशय मानवीय 'मूल्य' होता है। वे मान्यतायें वे सिद्धान्त, वे गुण अपनी अन्तर्निहित आर्हता या क्षमता के कारण मनुष्य को अच्छा मनुष्य बनाती हैं, मानव मूल्य है। साधारण तौर पर मूल्य व्यक्ति के गुणों को ही नहीं कहना चाहिये; जब तक व्यक्ति के गुणों का प्रभाव समाज तक नहीं होता और सामाजिक सम्बन्धों में व्यक्ति के आचरण के वे मूल्य प्रस्फुटित नहीं होते तब तक उनको ठीक-ठीक मूल्य मानना मुश्किल होगा। पुराने समय में इसको धर्म कहा जाता था। मैं सिर्फ यह बताना चाह रही हूं, कि मूल्य शब्द नया हो सकता है, लेकिन इस मूल्य चेतना से जुड़ी हुई बात तो पुराने साहित्य को या पुराने भारतीय जीवन को प्रभावित करती है और उदात्तता की ओर ले जाती थी, वह धर्म चेतना थी, गीता में। जिसको दैवीय सम्पदा कहा गया है। गीता के सोलहवें अध्याय के आरम्भ में अभय, सत्वसंशुद्धि आदि छब्बीस गुण बताये गये, जिनको दैवीय सम्पदा कहा गया, योग में मानव के आधारभूत वांछनीय गुणों को यम कहा गया, ये हैं सत्य, अहिंसा, आस्तेय

और अपरिग्रह में पांचों सार्वभौम महाव्रत हैं, जाति देश काल आदि से अनवच्छिन्न यम के बाद शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, आदि को नियम बताया गया है। यम और नियम में एक भौतिक और सूक्ष्म अन्तर यह है, कि व्यक्ति अपना जीवन भीतर से कैसे जिये, इससे नियम का ज्यादा सम्बन्ध है और व्यक्ति समाज का जीवन कैसे जिये, इससे यम का ज्यादा सम्बन्ध है। धर्म के वे लक्षण या गुण जो व्यक्ति तक सीमित रहते हैं शायद आज की परिभाषा में मूल्य माने जायें या न माने जायें जैसे उदाहरण के तौर पर धृति यानि धीरज। धीरज व्यक्ति का एक बहुत बड़ा गुण है लेकिन धीरज एक बड़ा जीवन मूल्य है भी या नहीं और यह धीरज एक बेईमान आदमी में भी हो सकता है और एक डाकू में भी हो सकता है, डाकू का धीरज, और साधु का धीरज दोनों धीरज तो हें लेकिन दोनों एक बड़े जीवन मूल्य के रूप में शायद न हो क्योंकि वे व्यक्तिगत गुण अधिक हैं, व्यक्ति के वे विरोधी सिद्धान्त जो दूसरों के साथ उसके सम्बन्ध को प्रभावित करते हैं और उस सम्बन्ध को बेहतर बनाते हैं। इन्हें भारतीय दृष्टि द्वारा स्वीकृत मानवीय मूल्य कहे जा सकते है, सत् चित् और आनन्द-इन तीनों की साधना इन तीनों की उपलब्धि सबमें समान आधरभूत रूप से एक तत्व का अन्वेषण स्वीकृति यह सब हमारी भारतीय संस्कृति के आधार भूत मूल्य रहे हैं और ये सबके सब मानवीय मूल्यों से जुड़े हैं। मेरी मान्यता यह है कि वैदिक परम्परा में सबसे बड़ा मूल्य लोकहित, मानव हित है और इसी लिए प्रेम के वर्ग में आने वाले मूल्यों से अधिक महत्व श्रेय के वर्ग में आने वाले मूल्यों को उपनिषदों में दिया गया है और उनमें भी सबसे बड़ा मूल्य सत्य हैं। मेरी मान्यता है, कि जिसमें अत्यन्त भूत हित हो वह ही सत्य है और भूतहित ही यानि केवल मनुष्य हित ही नहीं मनुष्य से आगे जाकर समस्त प्राणियों के हित की बात ही वस्तुता सत्य के अन्तर्गत परिगणित होती है।

मोटे तौर पर यह स्पष्ट है कि हमारा समकालीन आधुनिक भारतीय साहित्यिक आधुनिकता के मोह में आकर बाह्यमूल्यों के व्यामोह में फंसता जा रहा है, यही कारण

है कि आज के साहित्य में आयातित और आरोपित मूल्यों को स्थापित किया जा रहा है।

शिवानी के उपन्यासों में से एक 'कृष्णकली' उपन्यास की नायिका 'कली' का चरित्र इस प्रकार का है कि उसमें भारतीय दृष्टिकोण से मूल्यहीनता को स्थिति परिलक्षित होती है। उपन्यासकार की लेखनी के कौशल ने उसे इतना महिमामण्डित कर दिया है कि उसके दुर्गुणों में भी गुणों का प्रतिभाष होता है। इस प्रकार की रचनाधर्मिता सृजन की गम्भीर प्रक्रिया से सम्प्रक्ति न हो सकेगा। हमारे बहुत से साहित्यकार मूल्यों के अर्जन के प्रतिनिष्ठावान नहीं है, प्रतिध्वनि के प्रति निष्ठावान हैं। केवल प्रतिध्वनि खोखली होती है। इसलिए साहित्यकार का जिन मूल्यों में सचमुच विश्वास है उसे उन्हें जीवन से, आचरण से अर्जित करना चाहिए और उनको अपने आचरण में प्रतिफलित करना चाहिये तभी साहित्य के लिए वे मूल्य महत्वपूर्ण होंगे, तभी साहित्य सिद्ध हो सकेगा अन्यथा वह अक्षरों का पिंजड़ा बना रहेगा।

मुक्ति बोध ने लिखा है कि वासना भी व्यक्तिवद्ध होती है और वेदना भी 'वासना और उसकी अधिकता मनुष्य को घनघोर रूप से आत्मबद्ध बना देती है। वासनाशील व्यक्ति अपने रंगीन सपनों की दुनिया में रहता है, वह निजबद्ध और आत्मग्रस्त हो जाता है, अपनी उस अहम बद्धता का वह आदर्शीकरण भी करता है।'[२] वेदना की अधिकता कष्टों तथा संकटों की बारम्बारता मनुष्य को आत्मबद्ध बना देती है, इस प्रकार आत्मबद्ध की सारी दुनिया उसे पराई प्रतीत होती है। अपरम्पार दूरियां फैल जाती हैं, एक ओर अपनी निसहायता की भावना से आत्म विश्वास का लोप होता है, तो दूसरी ओर अन्य जन पर विश्वास करने की क्षमता भी कम होती है। वेदना बुरी होती है, वह व्यक्ति को व्यक्तिबद्ध कर देती है।[३] परम्परा से ही साहित्य सृजन के मूल में मानव हृदय की ये दो प्रवृत्तियां 'वासना और वेदना' काम करती रहीं हैं। दोनों के केन्द्र में नारी रही है या तो नारी को वासना के केन्द्र बिन्दु में रखकर साहित्य सृजित हुआ या फिर उसकी वेदना को वाणी देने के प्रयास में दोनों ही स्थितियों में साहित्य सृजन में नारी की इन प्रवृत्तियों का सरलीकरण हुआ है। वासना और वेदना पर अभिकेन्द्रित साहित्य जहां अपने

वासनात्मक प्रवाह में मूल्य ह्रास की परिस्थितियों से गुजरता है, वहीं वेदना पर आभकेन्द्रित साहित्य में सहानुभूति, प्रेम, सहृदयता, परोपकार कष्टदायक शक्तियों के प्रति घृणा और विद्रोह अनुचित को उखाड़ फेकने का शिव संकल्प सर्वत्र शान्ति और सर्वत्र मंगल की प्रतिष्ठा हेतु शुभ कामना जैसे मूल्यों का अविर्भाव होता है। पहले नारी के मनोजगत की सोच और संवेदना से सम्बन्धित गुह्अ और गोपनीय तथ्य पुरुषों की लेखनी से निस्सृत होते थे, नारी का अन्तर जगत उसके सुख-दुख अल्हाद विसाद प्रेम और घृणा आदि सूक्ष्म अनुभूतियां पुरुष के हाथों में थमीं कलम के द्वारा होता था, आधुनिक काल आते-आते न केवल नारी संचेतना में क्रान्ति का उफान लेता आया प्रत्युत नारी की उंगुलियों में लेखनी थमाने अति प्रतीक्षित और आवश्यक संस्कार भी लेता आया। ऊषा देवी मित्रा के रूप में नारी उपन्यास लेखन की शुरूआत परिलक्षित हुई, शनैः शनैः कृष्णा, सोवती, निरुपमा, सेवती, ऊषा, प्रियम्बदा, शशि प्रभा, शास्त्री मैहरुन्निसा परवेज, शिवानी, ममता कालिया, मन्नू भण्डारी, मृदुला गर्ग, क्षमा शर्मा, सुधा गोयल, सोमती अय्यर, पुष्पा मैत्रेयी, चित्रा कार्तिक, चित्रा भुदगल, माणिक मोहिनी, मृणाल पाण्डेय जैसी सिद्धहस्त उपन्यासकार हिन्दी कथा साहित्य को नारी का स्वर देने लगी। अब नारी की अनुभूतियां उसके अन्तर्जगत में निगूढ अनन्त उर्मियों के प्रत्यक्षीकरण नारी के द्वारा होने लगे, उसके भोगे हुये यथार्थ के उदघाटन के लिए पुरुष लेखनी के सहारे की आवश्यकता नहीं रही और 'अपने सच को' अपनी रुचि के अनुसार नारी प्रस्तुत कर सकी। नारी पर हो रहे सदियों के अत्याचार जो विवश मौन में अथवा आंसुओं में या घुटे कण्ठ में तड़प रहे थे, उन्हें अभिव्यक्ति का अवसर मिला। उपन्यास का क्षेत्र मानव जीवन के व्यापक सन्दर्भो को स्पर्श करने वाला और यथार्थ जीवन की गत्यात्मकता के अधिक निकट होने के कारण नारी की स्थिति को यथार्थ रूप में अंकित कर सका है। जिन उपन्यासकारों ने संवेदनशील संजीदगी के साथ नारी को चित्रित करने का प्रयास किया है। उन्होंने भी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक ऊहापोहों के बीच पिसते हुये अपने अस्तित्व और आत्मरक्षा के लिए संघर्ष करते हुए नारी रूप को उजागर करने की कोशिश नहीं की है। कुछ

अत्याधुनिक नारी रूपों में निर्थकता के विद्रूप चित्रण अवश्य मिलते हैं, किन्तु उन्हें तमाम नारी पात्रों की मानसिकता नहीं कह सकते, इतना अवश्य है कि नारी कथा लेखन के साथ पुरुष, उपन्यासकारों में भी नारी के चित्रांकन में बदलाव आया। इस काल खण्ड में विरचित उपन्यासों में चित्रित नारी और परिवेश में व्याप्त मूल्यवत्ता और मूल्य क्षरण हमारे जीवन के वास्तविक अंश है और यह वास्तविकता मात्र फैशन के वशीभूत होकर नहीं बल्कि वास्तविक अर्थों में है। इनमें चित्रित सुख, दुख, हर्ष विषाद, कुंठा, हताशा, विद्रूप विसंगतियां, शोषण, उत्पीड़न वंचना आरोपित नहीं, यथार्थ जीवन के वास्तविक अंश हैं। इन स्थितियों के विरुद्ध संघर्ष के संकल्प प्रतिक्रियाओं के झंझावात न्याय के लिए प्रतिबद्धता अशुभ और अनुचित के नाश के लिए प्रतिबद्धता अपनी अस्मिता और आत्मगौरव को पहचानने के प्रयास, इस युग के लेखन विशेष उपलब्धियां हैं। सातवें दशक के उपन्यासों में नारी के जो चित्र उभरे हैं। वे छठे दशक के नारी चरित्रों से कुछ भिन्न हैं, उनमें आन्तरिक सभ्यता टेक्नोलॉजी और शहरीकरण के फोबिया के साथ आधुनिक होने के दीन संताप ने एक ऐसे नारी मनोजगत का निर्माण किया है जो आन्तरिक विसंगतियां आधुनिकता और संस्कारों के बीच कुसमायोजन, बौद्धिक असमर्थता तथा पुनसत्वहीन क्रियाशीलता के घेरे में निबद्ध है। इस दशक के नारी चित्रण में स्थापित नारी मूल्यों के मनोजगत को तहस-नहस कर डाला। एक प्रकार की निषिद्ध आक्रामकता और घृणा इन चित्रों पर हावी हो गई, ये नफरत सातवें दशक की सही पहचान है, जहां सारे मूल्य अपने अर्थ खोकर आज के परिवेश में कोई अर्थ देते हैं तो सिर्फ नफरत स्वतन्त्रता की इस छोटी या लम्बी यात्रा की यदि कोई उपलब्धि है तो एक गहरा संताप है, अनिश्चता की अंधेरी यात्रा है, अपरिचय हैं, अजनबीपन है।"[४]

वर्तमान युग मे विश्व भर के नारी मनोविज्ञान में बहुत अन्तर आया है अपने पृथक अस्तित्व और स्वतन्त्र जीवन स्तर के लिए संसार भर की नारियों ने 'वीमन लिव' जैसे आन्दोलन प्रारम्भ किये, जिनका परिणाम यह हुआ कि नारी की मानसिकता में तो अन्तर आया

ही, पुरुषों ने भी मनोविज्ञान को नये सिरे से समझने का प्रयास किया, दासता की बेड़ियों में जकड़ी नारी एकाएक स्वाधीनता के आभास से चौंधिया गई और उनके जीवन में स्वाधीनता और स्वच्छन्दता का फर्क मिटने लगा, पुरुष लेखकों ने नारी की इस मनोदशा को उसके विघटित मूल्यों के रूप में मूल्यांकित किया। रागदरबारी, अलग-अलग वैतरणी जल टूटता हुआ, सफेद मेमने, आधा गांव आदि उपन्यासों में नारी मूल्यों के विघटन का यथार्थवादी रूप देखा जा सकता है।

नारी पुरुष के दाम्पत्य सूत्रों में पड़ी गांठ तथा विवाह जैसी प्राचीन सामाजिक प्राचीन संस्था का बहिष्कार आज की नारी की युग चेतना के परिणाम कहे जा सकते हैं। पुरुष की सामन्ती वृत्ति के विरोध में उभरता नारी का स्वर अब अपने स्वतंत्र अस्तित्व को लेकर जोश खरोश से भर उठा है। आज के नारी उपन्यासों के अनेक नारी पात्र पारम्परिक नैतिक मूल्यों को अस्वीकार करते हुए अपनी वैयक्तिक मान्यताओं को आधार मानकर आचरण करते हैं, उन्मुक्त यौन सम्बन्धों के प्रति नारी की परिवर्तित मानसिकता आधुनिक उपन्यासों में देखी जा सकती है। भौतिक दौड़ में नारी भी पुरुष के साथ हिस्सा ले रही है, अतः वह स्वतंत्र रूप से व्यवसाय के क्षेत्र में उतर रही है, अब मजदूर, क्लर्क, शिक्षिता, डाक्टर, नर्स, प्रशासकीय अधिकारी, नेता, उपदेशक, चोर, डाकू, स्मगलर जैसे कोई व्यवसाय उससे अछूते नहीं रहे। इन व्यवसायों में आने पर नारी को आर्थिक स्वतन्त्रता की सुखानुभूति तो हुई है किन्तु उसके साथ ही अनेक व्यक्तिक और सामाजिक समस्याओं ने उसे घेर लिया है, जिनमें घिरी वह स्वयं को पस्त अकेली, दिग्भ्रमित तथा कुंठित अनुभव करती है। कृष्णासोवती का 'सूरजमुखी अंधेरे के' ममता कालिया का 'बेघर' मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी' तथा शिवानी का 'कृष्णकली' नारी की अंतरंग एवं बहिरंग मानसिकता का प्रभावपूर्ण चित्रण करने में समर्थ है 'सेक्स' से परे नारी की अपनी कोई व्यक्तिक पहचान है इसे स्वर देने की चेष्टा इन उपन्यासों में मिलती है। इस दृष्टि से शिवानी का कथा साहित्य रेखांकित किया जा सकता हे। कि उसमें नारी को विविध भटकावों, पतनों तथा न्यूनताओं से ग्रस्त होते हुए भी उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित दिखाया गया है। नारी केवल 'देह' की संज्ञा

ही नहीं जिसे पुरुष अपनी रुचि के अनुसार भोग सके बल्कि उस देह में अटका वह सूक्ष्म चैतन्य तत्व भी है जो अपनी निजी इच्छायें, रुचि,-अरुचि एवं आवश्यकता का बोध करा सकता है। आर्थिक मूल्यों पर यदि नारी देह उपलब्ध हो भी जाये तो भी उसकी सम्पूर्णता को पा लेना प्रत्येक पुरुष के बस कीबात नहीं नारी का अपना मनोविज्ञान है, जिसे समझे बिना पुरुष उसे सच्चे साथी के रूप में नहीं पा सकता, यद्यपि नारी उपन्यासकारों ने भी उद्दाम लालसाओं से जकड़ी नारी की यात्रा के अनेक भोग संकुल परिदृश्य प्रस्तुत किये हैं। नारी के पारम्परिक मूल्यों को नारी शोषण और दासता का कारण मानकर इन लेखिकाओं ने नारीको मूल्य हीनता के पटल पर जा खड़ा किया है। अतिभौतिकता, अतिउपभोक्तावाद तथा अतिस्वच्छन्दता ने नारी को एक मायानगरी में ले जाकर खड़ा कर दिया जहां वह अपने कुंठित सपनों की पूर्ति में सर्वस्व अर्पण तो करती है। लेकिन बदले में उसे वह परितृप्ति नहीं मिलती, जिसको प्राप्त करने के लिए उसने अपने संस्कारों सोचो तथा पारम्परिक मूल्यों के किले धराशाही कर दिये थे, वह अपने आप को मृग मरीचिका में फंसा पाती है। शिवानी के कथा साहित्य के बहुत सारे पात्र भी स्वच्छन्दता की उड़ाने भरते हैं, भोग की लिप्ता में श्लथ दिखाई पड़ते हैं बड़े से बड़े पारम्परिक मूल्य को तोड़ने की हिम्मत रखते हैं, जैसे 'कृष्णकली की कलीरथ्या की बसंती, चौदह फेरे में मलिका गैड़ा में राज,शमशान चंपा, मयूरी और जूही माणिक में रम्भा, दीना अतिथि में चन्द्रा और लीना मायापुरी की सविता तो भी शिवानी के भीतर नारी की पारम्परिक चेतना की एक सुदृढ़ मूर्ति है, जो नारी के युगीन विघटित सन्दर्भो को देखते, समझते और महसूस करते हुए भी तथा सामाजिक चक्रव्यूह में फंसी नारी की दुर्दशा का अनुभव करते हुए भी भारतीयता के प्रेम में फिट नारी की पुरातन तस्वीर को फाड़कर फेंकना नहीं चाहती है। वह नारी में संस्कार गरिमा तथा उदात्ता को बरकरार रखने के लिए आग्रही दिखाई पड़ती है।

अंत में अनुसंधित्सु इस निष्कर्ष पर पहुंचती है, कि शिवानी ने अपने कथा लेखन के माध्यम से युगीन यथार्थ को प्रस्तुत किया है। उनके कथानक में अनुस्यूत विविध पात्र

युगीन सन्दर्भो एवं परिवेशगत आयामों में विचरण करते हुए युगीन प्रवृत्तियों, आस्थाओं विस्वासों, सन्त्रासों, विघटनों, प्रवंनाओं, छलछद्मों का सुल प्रस्तुतीकरण किया है। वैविद्ध पूर्ण परिदृश्यों में मानवता के मूल्यगामी और मूल्यघाती आरोह-अवरोह उनके कथ्य और शिल्प की विलक्षणता के उदाहरण है। तत्सम शब्दावली कही-कहीं अर्थ सिद्ध के प्रयोजन में बाधक प्रतीत होती है। किन्तु यह शिवानी का भाषा कौशल ही है, जो चित्र-विचित्र चरित्रों के माध्यम से इन चरित्रों के अन्तरण और बहिरंग पक्षों को सफलतापूर्वक अनावृत कर सका। शाश्वत मूल्यों का आधार लिये उनके उदात्त चरित्र अपनी सोच तथा कृत्यों से जैविक और पराजैविक मूल्यों का निर्देशन प्रस्तुत करते हैं उन्होंने युगीन यथार्थ को ही नहीं प्रस्तुत किया है, युगीन आदर्श को भी प्रस्तुत करना चाहा है। टूटते जीवन मूल्यों के प्रति लेखिका के मन में एक दर्द प्रतिभाषित होता है, किन्तु वह जिस युग की लेखिका है, उसमें धार्मिक और नैतिक मान्यताओं में प्रचण्ड उलट फेर हुआ है। अर्थ अथवा किसी भी सांसारिक उपलब्धि के लिए नारी का देह समर्पण, आध्यात्मिक उद्देश्यों के स्थान पर अति उपभोक्तावादी मान्यताओं, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संवेदनहीनता, हर चीज के विकाऊ होने की परिस्थितियां, सतीत्व के प्रति बदली अवधारणाओं तथा विज्ञान के आलोक में अंध विश्वासों के उन्मूलन की परिस्थितियों में शिवानी क्या किसी भी लेखिका को ऐसी सुविधा उपलब्ध नहीं होने दी, कि वो नारी के परम्परागत जीवन-मूल्यों को सुरक्षित रखने का दुस्साहस कर सके। परखनली शिशुओं तथा कुंवारे मातृत्व के इस युग में शिवानी ने भारतीय मूल्यों का संरक्षण किया है, नये युगानुकूल मूल्य सृजित किए हैं तथा मूल्य - ह्रास की वास्तविकताओं का बेहिचक चित्रांकन किया है।

शिवानी की रचनाधर्मिता में मूल्यात्मक प्रभामण्डल का आलोक है। उनकी प्रायः प्रत्येक कृति का यदि गवेषणात्मक विश्लेषण किया जाये तो, जैविक, पराजैविक सामाजिक तथा पराजैविक मानविकी मूल्यों का यदि प्रत्यक्ष उपस्थिति न भी परिलक्षित हो तो भी ध्वनिश्लेष के रूप में मूल्यों का बहुआयामी अस्तित्व प्रतिभाषित होता है।

संदर्भ सूची

१ - मूल्य संस्कृति साहित्य और समय-रत्ना लाहिड़ी , पृ० २

२ - विपात्र: उपन्यास - मुक्ति बोध प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन तृतीय संस्मरण १९३६, पृ० ६०

३ - विपात्र: उपन्यास - मुक्ति बोध प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन तृतीय संस्मरण १९३६, पृ० ५९

४ - प्रगतिवादोत्तर हिन्दी साहित्यान्दोलन - रत्ना गिरिप्रदा (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) पृ० २७४-२७५

परिशिष्ट

(क)	उपजीव्य ग्रन्थ	लेखिका	संस्करण वर्ष
१-	चौदह फेरे	शिवानी	२००३
२-	सुरंगमा	,,	२००२
३-	शमशान चंपा	,,	२००२
४-	भैरवी	,,	२००१
५-	मायापुरी	,,	२००२
६-	कृष्णकली	,,	२०००
७-	कैंजा	,,	२००३
८-	गैंडा	,,	१९९८
९-	रतिविलाप	,,	२००१
१०-	उपप्रेती	,,	२००२
११-	माणिक	,,	२०००
१२-	रथ्या	,,	१९९४
१३-	पूतोंवाली	,,	१९९३
१४-	बदला (पूतोंवाली)	,,	१९९३
१५-	कस्तूरीमृग	,,	१९९३
१६-	किशनुली (रतिविलाप)	,,	२००१
१७-	अभिनय (रतिविलाप)	,,	२००१
१८-	पाथेय (मेरा भाई)	,,	२००३
१९-	अतिथि	,,	२००३
२०-	दो सखियाँ (उपप्रेती)	,,	२००२
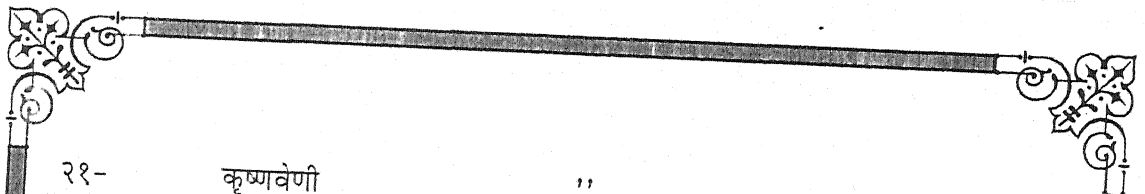
२१-	कृष्णवेणी	,,	१९९९
२२ -	कालिंदी	,,	२००३

अन्य

२३-	एक थी रामरती	शिवानी	२००३
२४-	सोने दे	,,	२००२
२५-	यात्रिक	,,	१९९९
२६-	वातायन	,,	२०००
२७-	चरैवेति	,,	२००१
२८-	आमादेर शान्ति निकेतन	,,	२००१
२९-	सुनहु तात यह अकथ कहानी	,,	१९९९
३०-	झरोखा	,,	१९९९
३१-	स्मृति कलश	,,	१९९८
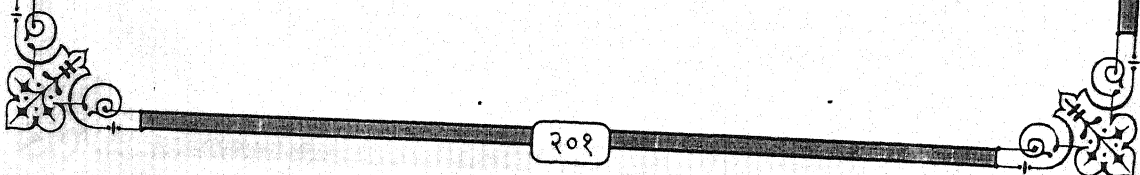
(ख) उपस्कारक ग्रन्थ

१- हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य - डा० मोहिनी शर्मा

२- संस्कृत हिन्दी कोष - वामन शिवराम 'आप्टे'

३- हिन्दी विश्व कोष - सं० श्री नागेन्द्र नाथ वसु

४- हिन्दी साहित्य कोष-भाग- प्रधान सं० - डा० धीरेन्द्र वर्मा

५- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन - डा० देवराज

६- उद्धत-आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य - डा० हुकुमचन्द्र राजपाल

७- हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन - देत्री प्रसाद गुप्त

८- भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति - श्री गौरीशंकर भट्ट

९- पूर्व पश्चिम भारतीय जीवन - डा० राधाकृष्णन

१० - स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण
(अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) उदयपुर विश्वविद्यालय - श्री हेमन्त कुमार पानेरी

११ - उद्धत - सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा - श्री रविन्द्रनाथ मुकर्जी

१२ - समाज का मनोविज्ञान - गिन्सवर्ग

१३ - समाज मनोविज्ञान, प्रारम्भिक अध्ययन - डा० एस० एस० माथुर

१४ - संस्कृति के चार अध्याय - रामधरी सिंह दिनकर

१५ - ऐतिहासिक भौतिकवाद पर एक दृष्टि व पोदेसेतनिक तथा अ० स्पीकिन

१६ - उच्चतर समाज शास्त्रीय सिद्धान्त - रविन्द्र नाथ मुकर्जी

१७ - रचना के सरोकार - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

१८ - सात्र : एक चिंतन - त्रिभुवन नारायण सिन्हा

१९ - व्यक्ति चेतना और स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी उपन्यास - डा० पुरुषोत्तम दुबे

२० - समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना सन्दर्भ - अशोक हजारे डा० माधव सोनटक्के

२१ - हिन्दी कहानी : सातवां दशक - प्रहलाद अग्रवाल

२२ - भारत में विवाह और कामकाजी महिलायें - प्रमिला कपूर

२३ - आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शिवप्रसाद सिंहा

२४ - साहित्य और युगबोध - देवेन्द्र इस्सर

२५ - उद्धत-हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन - डा० शान्ति भारद्वाज

२६ - उद्धत-हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन - डा० एस० एन० गणेशन

२७ - मूल्य संस्कृति और समय - रत्ना लाहिड़ी

२८ - विपात्र: उपन्यास - मुक्तिबोध प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन तृतीय संस्करण १९३८

२९ - प्रकृति वादोत्तर हिन्दी साहित्यान्दोलन - रत्ना गिरिप्रदा (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

३० - सागर लहरें और मनुष्य - उदयशंकर भट्ट

३१ - सूरजमुखी अंधेरे के - कृष्णा सोबती

३२- बेघर - ममता कालिया

३३ - पचपन खम्भे लाल दीवारें - ऊषा प्रियम्बदा

३४,- आपका बंटी - मन्नू भण्डारी

३५ - न्यू स्पीक - जार्ज आवेल

३६ - ब्यूमन एण्ड ट्रुथ - कर्किगार्ड

३७ - टॉमनवी स्टार्म - अगेन्स्ट हैमेनिटी

३८ - प्लेजर एण्ड बिल्शनस - शेवरलेन

३९ - लव् एण्ड लव - वर्देयक

४० - क्रियेशन - जयने

41 - The Social Stracture of values. - R. K. Mukerjee

42 - Philosophy of Values the Cultural Heritage of India - M. Harriyana

43 - Fundamentals of Ethice - W. M. Unbam

44- ".........That alone is ultimately and intrinsically valuable that leads to the Davelopment of Selves or to self realization."

Fundamentals of Ethias - W. M. Urbam

45 - The intuitive philosophy - Rohit Mehta

46 - The R.S. Perry

47 - An introduction to Social Psychology cmetheun and Co. Ltd. London 1990 - William M. C. Dougall

48 - Society ; Introductory Analysis, Maciver and Page , Macmillan and Co. London 1953

49 - Dictionary of Sociolgy and related Scinces - Hanry Pratti Fairchild and Others

50 - Outlion of Social Phychology - S. G. Hulyalkar and Others

51 - A Handbook of Social Psychology - Y. K. Young

52 - Proceeding of the American Sociological Society

53 - The Social Structure of values - Radha Kamal Mukerjee

54 - An Introduction to Social Psychology Cmetheun and Co. Ltd. London 1960 - William M.C. Dougall

55 - ".........Human nature is not inherited but developed in Society Social heritage, does not reach him through the germplasm the mediam is commumication and Social interation taking place othrough contact."

- Sociolgical Papers and Essays Kewal motwani

56 - A Room of one's Own - Woolf, page